विष्णुधर्मोत्तर पुराण में प्रतिबिम्बित एवं संस्कृति

(SOCIETY AND CULTRUE AS REFLECTED IN THE VISHNUDHARMOTTARA PURANA)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध
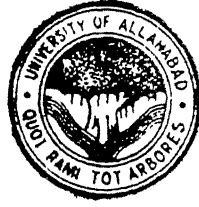
शोध-निर्देशक
प्रो० वी० डी० मिश्र
प्रोफेसर
प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोध-छात्रा
अलका तिवारी

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
1993

<u>पुरोवाक्</u>

प्राय धर्म को प्रतिगामी मूल्यो का संवाहक और पोषक मानकर इसे जनता के लिए अफीम बताया जाता रहा है । किन्तु भारतीय जीवनधारा का सूक्ष्म निरीक्षण करने पर यह विदित होता है कि अनेक सीमाओं के बावजूद धर्म ने जनसाधारण को प्रतिकूल एवं विपरीत परिस्थितियों मे आत्मबल एवं संजीवनी शक्ति प्रदान की है । साथ ही जीवन की गतिविधियों को संचालित प्रभावित कर दिशा–निर्धारित किया है । इस प्रकार धर्म ने केन्द्रीय–भूमिका का निर्वाह किया है ।

छठी शती ई0पू0 के बौद्ध–जैनादि आन्दोलन तत्कालीन परिवेश में "समय से आगे" और पूर्णतया प्रगतिशील सामाजिक आर्थिक चेतना के संवाहक ही कहे जा सकते हैं । 'अफीम' वाली अवधारणा को स्वीकार करने वालों के लिए यह बड़े आशचर्य का विषय हो सकता है कि परम्परागत धार्मिक मान्यताओं के प्रतिकार–प्रतिरोध पर आधारित एक बौद्धिक आन्दोलन की मूल अन्तश्चेतना कैसे धार्मिक हो सकती है और कैसे वह अपने उत्तरदायित्व का सफल निर्वाह कर सकता है । मध्यकालीन भक्ति–आन्दोलन तथा उन्नीसवीं–बीसवीं शती के समाज सुधार आन्दोलन इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं ।

सम्पूर्ण विश्व के पैमाने पर धर्म की क्रान्तिकारी, बहुआयामी भूमिका को बड़ी आसानी से रेखांकित किया जा सकता है । ऐसे में भारतीय चिन्तन की कोई धारा कैसे अछूती रह सकती है । प्रत्येक बौद्धिक विधा, चाहे वह आयुर्वेद हो, विधि हो, आचार संहिता हो, धनुर्विद्या ही क्यों न हो, का पृथक् अथवा स्वतत्र अस्तित्व नही था और इन्हें धार्मिक विषयों के अन्तर्गत ही समाविष्ट करना उचित समझा गया । यही कारण है कि समस्त प्राचीन भारतीय साहित्य का स्वरूप धार्मिक हो गया। किसी निष्कर्ष अथवा सिद्धान्त की पुष्टि धार्मिक मान्यताओं के आधार पर की गई ।

हमारा पुराण साहित्य इससे अछूता नहीं रहा । वस्तुतः विषयगत आधार पर इन्हें सांस्कृतिक विवरणों की अथाह निधि कहा जा सकता है । इसी को दृष्टिगत रखते हुए मैंने शोध का शीर्षक "विष्णु धर्मोत्तर पुराण में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति" चुना है । इसे सुप्रसिद्ध वैष्णव पुराण–विष्णु का अंग माना गया है । फिर भी भारतीय समाज और संस्कृति के अनेकानेक पक्षों का विशद विवेचन होने के कारण इस पुराण का अपना विशेष ऐतिहासिक महत्व है ।

शोध-निर्देशक परम श्रद्धेय गुरूवर्य **प्रो० वी०डी० मिश्र,** प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के मार्गदर्शन एवं स्नेहपूर्ण सत्परामर्शों ने विषय को बोधगम्य एवं सुकर बनाया, इस अमूल्य एव महती कृपा के प्रति आभार ज्ञापन का शब्दों में अभिव्यक्त करने में मुझ जैसी अकिंचन अपने को असमर्थ पा रही है ।

शोध-प्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण में परम पूज्य गुरूवर **प्रो० एस०सी० भट्टाचार्य,** प्राफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ने जो यथेष्ट, कृपापूर्ण सहायता दी, मैं कोटिशः श्रद्धावनत हूँ ।

जिन गुरूजनों ने यथेष्ट सस्नेह एवं सहर्ष सहायता प्रदान की उनमें **डा० जयशंकर त्रिपाठी,** पूर्व विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, ईश्वर शरण डिग्री कालेज (इलाहाबाद विश्वविद्यालय), इलाहाबाद **डा० जयनारायण पाण्डेय**, रीडर, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, **डा० हरिनारायण दूबे**, रीडर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की मैं विशेष रूप से आभारी हूँ ।

मेरे सास-ससुर पूज्यनीया **श्रीमती अन्नपूर्णा शुक्ला** एवं पितृतुल्य परमपूज्य **श्री रास बिहारी शुक्ल,** परमश्रद्धेय माता **श्रीमती आशारानी तिवारी** एव प्रेरणास्रोतस्वरूप पूज्य पिता **श्री कमला प्रसाद तिवारी** ने अपने स्नेहसिक्त आशीर्वचनों से आत्मसंवलित एवं अध्ययन प्रवृत्त किया । पति **श्री चन्द्रशेखर शुक्ल** के निरन्तर उत्साहवर्धन एवं सत्परामर्शों से प्रबन्ध की पूर्णता सम्भव हो सकी है । एतदर्थ, इनके प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ ।

मैं विद्वत-समुदाय के प्रति विशेष रूप से कृतज्ञता ज्ञापित करना परमकर्तव्य समझती हूँ जिनकी कृतियों से मैं लाभान्वित हुई हूँ ।

अलका तिवारी
(अलका तिवारी)

दिनांक : 21-12-1993

मंगलवार, इलाहाबाद

अनुक्रमणिका

****

******

***

प्रस्तावना

(अ) भारतीय पुराण साहित्य

पुराण प्राचीन भारतीय साहित्यिक परम्परा के महत्वपूर्ण अंग हैं, जिसका प्रारम्भ वेदों से होता है तथा यह ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद से होते हुये पुराण तक पहुँचता है। वस्तुतः पुराण साहित्य भारतीय साहित्य के अनोखे अंग हैं, जिसके समतुल्य ग्रन्थ अन्यत्र प्राप्त नहीं हैं। यद्यपि यूनान और इरान में इलियड और शाहनामा आदि ग्रन्थ पुराण के समतुल्य माने अवश्य गये हैं, परन्तु वे वीरों के आख्यान मात्र हैं जबकि भारत के सन्दर्भ मे प्राचीन संस्कृति के कलेवर निर्माण हेतु पुराण अनिवार्य अंग हैं। पुराण मूलतः संकलित ग्रन्थ हैं अतः इनके संकलनकर्ताओं को इनकी संरचना हेतु विशद, पूर्व पौराणिक तथा वैदिक साहित्य से भिन्न शैली अपनाना पड़ा था।

पुराणों में भारतीय जन जीवन से संबन्धित सभी पक्षों का विशद वर्णन प्राप्त होता है। धार्मिक विषय की प्रधानता तो इसमे है ही इसके साथ ही साथ पुराणो में ज्योतिष, भूगोल, राजनीति, आयुर्वेद, कला, स्थापत्य एवं शिल्प आदि का वर्णन भी प्राप्त होता है। मूलतः पुराणकारों का लक्ष्य जनता मे धार्मिक भावना का प्रचार करना था और धर्म की प्रेरणा देना था। धर्म भारत में दिखावे की वस्तु न होकर जीवन शैली का अंग है अतः जीवन का कोई भी ऐसा भाग नहीं है जो धर्म अथवा धार्मिक प्रभाव से मुक्त हो। धर्म जीवन का अन्यतम अंग है, अतः कोई भी कला अथवा विद्या जब तक धर्म युक्त नहीं है भारतीय नैतिक जीवन के योग्य नहीं। महात्मा गाँधी जैसे भारत के रचयिता ने भी धर्म के बिना जीवन की कल्पना नहीं की है। अतः पूराणो मे धर्म–शास्त्र में वर्णित अथवा अवर्णित परन्तु लोक जीवन से संबद्ध लगभग सभी विषयों का वर्णन प्राप्त होता है। पुराणों का महत्व अनेक दृष्टियों से है। धार्मिक दृष्टि से पुराणों में वेदोक्त धर्म का सरल और बोधगम्य भाषा में विशद वर्णन प्राप्त होता है। सामाजिक दृष्टि से हमे पूर्वकालिक समाज का स्वरूप पुराणों से ही प्राप्त होता है। सामान्य हिन्दुओं के जन जीवन को संचालित करने वाले आश्रमों व संस्कारों का भी विस्तृत विवरण हमें पुराणों से प्राप्त होता है। इन पौराणिक विवरणों की पुष्टि शिलालेखों, मुद्राओं और विदेशी यात्रियों के विवरणों से भी होती है। भौगोलिक दृष्टि से भी पुराण बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसमें अनेक तीर्थों का वर्णन प्राप्त होता है, जैसे – स्कन्द पुराण के काशी खण्ड में काशी के प्रत्येक स्थान और शिवलिंगों का बड़ा ही विस्तृत वर्णन प्राप्त

होता है, जिससे काशी के प्रसिद्ध स्थानों की जानकारी हमे प्राप्त हो सकती है । डा0 सम्पूर्णानन्द के मतानुसार तो अंग्रेजों ने नील नदी का पता ही पुराणों की सहायता से लगाया था ।

पुराणों मे, जन साधारण की समझ में जो आ जाये ऐसे व्यावहारिक रूप को माध्यम बनाया गया है । उनमें तर्क और बुद्धि के स्थान पर श्रद्धा और भक्ति को प्रधानता दी गई है : जैसे :

अप्सु देवा बालानाम्, दिवि देवा मनीषिणाम् ।
काष्ठ लोष्ठेषु मूर्खाणां युक्तस्यात्मनि देवता ।।

उपयोगिता की दृष्टि से पुराणों की मुख्य विशेषता यह है कि वे वेदों के गूढ़ तत्वों व रहस्यवादी वर्णनों को विस्तृत व्याख्या एवं दृष्टान्तो के साथ बड़ी ही रोचक कथा शैली में प्रस्तुत करते हैं, जिससे वह जन सामान्य की ज्ञान बोध सीमा में आ सके । जन सामान्य के हित को ध्यान में रखते हुये पुराणों ने अलौकिक वैदिक विधाओं को लौकिक कथाओं का रूप प्रदान किया । यह सत्य ही कहा गया है कि ब्रह्मा के मुख से वेद और पुराण दो वाङ्मय तत्वों का आविर्भाव हुआ । वेद निगम और पुराण आगम हैं । वेद विश्व का केन्द्राधिष्ठित तत्व है जो अति गूढ़ भूल रूप में संग्रहीत है । उसे वैदिक संहिताओं के रूप मे महार्षियों ने प्राप्त किया । पुराण विषद् व्याख्या है जो जनजीवन से सम्बन्ध रखती हैं । एक ओर यह वाड़मय पुरातन सृष्टि विद्या से अपना सम्बन्ध बनाये रखता है, दूसरी ओर यह नित्य नये–नये रूपों मे जन्म लेने और विकसित होने वाले लोक–जीवन से भी सम्बन्धित है । वेदों के कठिन और जटिल ब्राह्मण–धर्म के विरोध में सामान्य जन साधारण के लिये बौद्ध धर्म का उदय हुआ था किन्तु बौद्ध धर्म की वास्तविकता और नीरसता के विरोध में जन साधारण के लिये ही पुराणों ने पुनः हिन्दू धर्म की स्थापना की थी । ज्ञान के स्थान पर भक्ति की प्रतिष्ठा हुयी । यह लोक तत्व ही पुराणों के धर्म का विशिष्ट पथ है ।

आख्यानों के वैदिक स्वरूप को देखने से यह प्रायः स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक वाङ्मय में इन्हे विकास के लिये आवश्यक अवकाश नहीं मिल सका था तथा इनके आधार पर और इन्ही

की भाँति अनिबद्ध आख्यानों का समावेश का एक पृथक साहित्य का उत्तर काल में उदभव और विकास नितांत संभव था । 'इतिहास–पुराणाम्यां वेदं सभुववृह्येत' के रूप में जो पौराणिक शैली प्रचलित हुयी, उसके प्राथमिक प्रयास के परिणाम में अविकसित वैदिक आख्यानों को तथा इतिवृत्तों को संकलित रूप देने की चेष्टा की गई होगी । ऐसा अनुमान कर सकते हैं कि इस पौराणिक उक्ति में पुराण शब्द का तात्पर्य इसके मौलिक अर्थ आख्यान से भिन्न नहीं है । इसमें संदेह नहीं कि ऐसे आख्यानों के समाहार तथा तत्सम् अथवा तदुदभूत आख्यानों और उपाख्यानों के आविष्कार के कारण मौलिक पौराणिक संरचना के विका यथेष्ट सहायता मिली होगी । इसकी प्राथमिक विशेषता यह थी कि इन्हें पौराणिक रूप प्रदान करते समय, इनके अतीत और मौलिक तत्वों को ग्रहण करने के साथ–साथ नवोदित प्रवृत्तियों और नवीन परिस्थितियों के अनुकूल इनमें संशोधन और परिवर्तन लाने की भी चेष्टा की गई थी । पुराणों में रूपक अलंकार और अतिशयोक्तियों का बाहुल्य है और विषयों की बार–बार पुनरावृत्ति भी हुयी है । आख्यानों को दृष्टि में रखकर कभी–कभी पौराणिक की अतिशयोक्ति पूर्ण शैली को आलोचना का विषय बनाया जाता रहा है । इस सम्बन्ध में विन्टर नित्ज महोदय ने पुरूखा और उर्वशी के पौराणिक आख्यानों की ओर संकेत किया है । इस वर्णन में ऋग्वेद के अनुसार पुरूखा और उर्वशी के सहवास की अवधि चार वर्ष मानी गयी है जबकि इसके विपरीत पुराणों में इसको इकसठ हजार वर्ष माना गया है, परन्तु इस प्रकार की समीक्षा से पूर्व पौराणिक शैली की पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करना उचित प्रतीत होता है । ऐसे पौराणिक विवरणों में दो बातें मुख्य रूप से दिखाई पड़ती है । एक तो इनके स्वरूप को नयी परिस्थितियों के अनुकूल तथा जनसाधारण की इच्छा के अनुरूप बनाया गया है । दूसरे, पुराण रचयिताओं ने प्राचीन आख्यानों का विस्तार देश और काल की मानवोचित सीमा में न रखकर प्रायः 'अलोक सामान्य' के मापदण्ड से किया है । उनका लक्ष्य था वैदिक उक्ति को विस्तारदेना तथा उसे जन सामान्य मे प्रचलित करना । यह तभी संभव था जब अत्यधिक तथ्य परकता पर ध्यान न देकर अत्यधिक विस्तारीकरण के आधार पर प्रवर्धनशील बनाया जाय । पौराणिक आख्यान मात्र कपोत कल्पित कथायें मात्र नहीं हैं, क्योंकि इनके भीतर कभी–कभी भारतीय संस्कृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म तथ्य छिपे मिलते हैं, अतः जहाँ कहीं भी पौराणिक द्वारा आख्यानों के मूल रूप मे परिवर्तन अथवा परिवर्धन किया गया है वहाँ पर पौराणिक शैली के वैशिष्ट को ध्यान में रखते हुये गर्हणात्मक

समीक्षा हेतु स्थान दिखायी नहीं देता है। यहाँ स्मरणीय यह है कि पुराणों की बहुत सी बातें जो हमें असंभव लगती हैं, प्रतीकात्मक हैं। वास्तव में पुराणों का उद्‌देश्य मूलरूप से यही था कि जन साधारण में धर्म के प्रति रूचि उत्पन्न हो और उसे धर्म प्रेरणा मिले। उसका सिद्धान्त है कि जो धर्म का पालन करेगा धर्म भी उसकी रक्षा करेगा। संसार में उत्कर्ष और कल्याण धर्म पर ही आधारित है। जीवन का सर्वस्व शुभ धर्म ही है। धर्म का प्रचार ही पुराणों का लक्ष्य था।

विन्टरनित्ज महोदय का विचार है कि पुराण संकलन का प्रवर्तन एवं अनुवर्तन अल्पशिक्षित पुरोहितों द्वारा हुआ था। परन्तु इस सन्दर्भ में कुछ तथ्यों को स्पष्ट करना आवश्यक होगा। वैदिक साहित्य सभी के लिये सुग्रात्य नहीं था, अतः वेदों में वर्णित तथ्यों को आख्यान के माध्यम से प्रस्तुत करने के पीछे मूल कारण था वेद से अनभिज्ञ जन समुदाय के ज्ञान में गहराई लाना। जिस युग विशेष के साथ पुराण रचना का प्रयास किया गया, उसकी मान्यताओं और आदर्शों पर ध्यान दिया जाय तथा इस बात का भी ध्यान रखा जाय कि साहित्य की रचना कभी–कभी लेखक अथवा संकलनकर्ता की उदात्त अथवा संकीर्ण प्रवृत्ति और भावनाओं के विपरीत जन साधारण की आवश्यकताओं से प्रभावित होता है। अतः विन्टर नित्य का कथन असंगत प्रतीत होता है। वेद और पुराणों की तुलना करते समय हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि नवीन परिस्थितियों में पुराण संरचना का कार्य वेदों की अपेक्षा प्रायः कठिन था। पुराणों का उद्‌देश्य उच्च स्तर के साहित्य का परिचय देना नहीं था अपितु उच्च कोटि के धर्म मूलक और दर्शन मूलक तत्वों को सरल एवं सुग्राह्य शैली मे प्रस्तुत करना था।

आख्यान, इतिहास, कल्पजोक्ति अथवा कल्प व गाथा, इन चार विषयोंको सम्मिलित रूप से प्रस्तुत करने के पश्चात भी पुराणों को एक निश्चित साहित्य का रूप देने का प्रश्न बना रहा। इन विषयों से पुराणों की केवल प्राचीनता प्रतीत होती थी, विशिष्ट साहित्य का रूप तभी प्राप्त हो सकता था जब उसके स्वरूप को लक्षणों द्वारा व्यक्त किया जाय। इन्हीं परिस्थितियों में पुराण पञ्चलक्षणों की उत्पत्ति हुयी ––

"सर्गष्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पंचलक्षणम् ॥"

अग्नि, मार्कण्डेय, विष्णु, स्कन्द, वराह, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, मत्स्य, कूर्म, गरुण, ब्रहमण, शिव आदि सभी पुराणों मु पुराण के लक्षण के सम्बन्ध में यह श्लोक प्राप्त होता है । भागवत में इन पाँचों लक्षणों की विस्तृत व्याख्या प्राप्त होती है । सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम को संक्षेप में बताते हुये इस सहज और स्वाभाविक प्रक्रिया को सर्ग की संज्ञा दी गई है । भागवत मे कहा गया है --1.

"अथाकृत गुण क्षोभात् महत स्त्रिवृत्तोऽहम् –
भूतमातेन्द्रियार्नों सम्भवं सर्ग उच्यते ।।

सर्ग का विपरीत अर्थात प्रलय का वर्णन प्रतिसर्ग में प्राप्त होता है । पुराणों में इसे प्रतिसंचर और संख्या भी कहा गया है । नैमितिक, प्राकृतिक, नित्य तथा अप्यंकित इन चार प्रकार के प्रलयों का वर्णन भागवत में प्राप्त होता है तथा इसे संस्था कहा गया है ।[2] --

नैमिच्तिक प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः
संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धाऽस्य स्वभावतः

भागवत के अनुसार वंश का संबन्ध भूत वर्तमान के उन राजाओं व उनकी संतान परम्परा से है जिनका संबन्ध ब्रह्म से है । इस कोटि में देववंश तथा ऋषि वंश का वर्णन मिलता है ।[3] --

राज्ञां ब्रह्मसूतानां वंशस्त्रैकालिकाऽन्वयः

मन्वन्तर शब्द से पौराणिक अर्थ की दृष्टि से कालचक्र का पता चलता है । पुराणों में मन्वन्तरों का पता चलता है । भागवत पुराण में भी मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि तथा ईश्वर के अशावतार, इन छः विशेषताओं से युक्त काल को मन्वन्तर की संज्ञा प्रदान की गई है ।[4] --

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुजाः सुरेश्वरः
ऋषयोऽशावताराश्च हरेः षड्विधमुच्यते

वंशानुचरित से तात्पर्य है पूर्वोवत्त वंशों में जन्में वंशधरी सहित मूल पुरूष राजाओं का विशेष रूप से वर्णन । इसमें मनुष्य वंशी महर्षि और राजाओं की भी गणना की जाती है । जैसा कि भगवत में कहा गया है ।[5] --

"वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये ।

पुराण पंचलक्षण की परिभाषा अमरकोष में भी प्राप्त होती है, परन्तु इस ग्रन्थ में इसकी व्याख्या नहीं प्राप्त होती है । इस संदर्भ में आचार्य बलदेव उपाध्याय का मत है पंच लक्षण को सार्वभौमिक लोक प्रियता प्राप्त हुयी होगी, नहीं तो अमरकोष में व्याख्याविहीन पारिभाषिक शब्द के रूप में इसका प्रयोग नहीं होता ।

पंचलक्षण के संबन्ध में यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि क्या पंचलक्षण पुराण शैली की विशेषता थी अथवा पुराणों के प्राथमिक रूप में इनके पॉंच विषय निश्चित हो चुके थे । इस संबन्ध में यह उल्लेखनीय है कि पुराणों के प्राथमिक रूप में पॉंच विषय निश्चित हो चुके थे, परन्तु विशेष रूप सें पॉंचवे लक्ष के संबन्ध में मतैक्य नहीं था । एक प्राचीन पौराणिक विवरणानुसार पॉंचवे लक्षण के रूप भूमि संस्थान का विवरण प्राप्त होता है । अतः पुराणों के प्राथमिक रूप में पॉंच विषयों के अतिरिक्त भी विषय थे पर प्रमुखता पॉंच को ही दी जाती थी । इस प्रकार पंच लक्षण पुराणों का वैशिष्य न कि पुराण विषय का मापदण्ड । इससे पुराण संरचना शैली का पता चलता है, पुराण विषय की सीमा का निर्धारण वहीं होता है ।

पण्डित राजेश्वर शास्त्री द्राविड ने पुराण पंच लक्षण की एक अन्य परिभाषा पर प्रकाश डाला है । यह प्रचलित पौराणक पंच लक्षण की परिभाषा से भिन्न प्रतीत होती है । इसका वर्णन कौटिल्य के अर्थशास्त्र की जयमंगला व्याख्या में प्राप्त होता है [6] --

सृष्टि-प्रवृत्ति-संहार-धर्म-मोक्ष प्रयोजनम् ।
ब्रह्मभिर्विविधैः प्रोक्तं पुराणं पञ्चलक्षणम् ।।

इसके आधार पर आचार्य बलदेव उपाध्याय ने यह मत प्रतिपादित किया है कि पुराणों मे धार्मिक विषयों का समावेश प्रारम्भ में ही हो गया है, तथा इसी आधार पर हाजरा आदि विद्वानों के इस मत का खण्डन किया है कि पुराणों में धार्मिक विषयों का समावेश उत्तरकालीन पौराणिक संकलन का परिणाम है। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है जयमंगला के टीकाकार ने इस ग्रन्थ को इस संबन्ध में आधार बनाया है। उसके नाम व काल के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। यह ग्रन्थ प्राचीन तो है, पर उसकी प्राचीनता की की अवधि के संबन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता है।

श्री मद्भागवत् मे दो स्थानों पर तथा वैवर्त्त में दसलक्षण महापुराण के निर्दिष्ट है, तथा पूर्वोवत्त पाँच लक्षणों को क्षुल्लक पुराण का लक्षण माना गया है। दस लक्षण तथा पाँच लक्षण के तुलनात्मक विवेचन के पश्चात यह कहा जा सकता है कि श्री मद्भागवत के दोनों स्थलों पर दिये गये लक्षणों में मूलतः साम्य है, नामतः वैषम्य भले ही दृष्टिगोचर हो। इन दोनों स्थानों में शब्द भेद अवश्य है परन्तु अभिप्राय भेद नहीं है।

पुराणों के वर्ण्य विषय के संबन्ध में यह कहा जा सकता है कि इसका महाभारत से सबसे अधिक निकट संबन्ध है। इसमें पुराणों का उल्लेख आख्यान के अर्थ में हुआ है। महाभारत के एक उल्लेख के अनुसार पुराणों के वर्णित विषय देवताओं और ऋषियों–मुनियों की कथायें हैं, महाभारत और पुराणों के बहुत से विषय सामान्य हैं। सामान्यतया तो पुराणों के पाँच विषय बताये गये हैं और मुख्यतया यही पुराणों के पाँच विषय हैं, परन्तु उसमें भारतीय सभ्यता और संस्कृति से सम्बन्धित लगभग प्रत्येक विषय का विवेचन हुआ है। उसमें वैष्णव और शैव धर्म संबन्धी लगभग सभी विधान है। पूजा और व्रतविधियों का विवेचन हुआ है। भारतवर्ष के सभी तीर्थों का वर्णन है, और इस प्रकार पुराणों से भारत के भूगोल का विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है। लौकिक विषयों में साहित्य शास्त्र (कौंक, लक्षण आदि) नृत्य, संगीत, शिल्प आदि विषयों का भी विवेचन पुराणों में हुआ है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद,शस्त्र विद्या, वास्तु विद्या, रत्न परीक्षा आदि विविध विषय भी पुराणों में वर्णित हैं। आश्चर्य तो यह है कि धर्मशास्त्र और कर्मकाण्ड के साथ–साथ पुराणों मे

राजनैतिक विषयों का भी सम्यक विवेचन किया गया है । भारतीय जनजीवन से सम्बन्धित शायद ही कोई विषय ऐसा हो जिस पर पुराणकार ने आवश्यक निर्देश न दिया हो । उदाहरण के लिये अग्निपुराण की विषय सूची में, जिसमें 383 अध्याय है; निम्नलिखित विषय है – दशावतार वर्णन, हरिवंश वर्णन, कौरव पाण्डव, सृष्टि वर्णन, पूजा विधि, मन्त्र, संस्कार, देवालय निर्माण, शिलाविन्यास, प्रसाद, प्रतिभा, प्रतिष्ठा, जीर्णोद्धार, याजोत्सव विधि, विभिन्न पूजा विधि, तीर्थ महात्म्य, श्राद्ध कल्प, भारतवर्ष (भूगोल), ज्योतिष, काल गणना, मन्वन्तर, आश्रम, प्रायश्चित, व्रत, दान, अभिषेक, राजधर्म, युद्ध, राजकर्म, राजनीति, रत्न परीक्षा, धनुर्वेद, दाय विभाग, सूर्य चन्द्रवंश वर्णन, वृक्षायुर्वेद, छन्द शास्त्र, काव्य, नाटक, रस, नृत्य, अलंकार, व्याकरण, आसन प्रणायाम्, ब्रह्मज्ञान आदि । वास्तव में पुराण भारतीय संस्कृति के ज्ञान कोष हैं और भारतीय जन जीवन के प्रत्येक विषय का उसमें विस्तृत विवेचन किया गया है । आज भी इसीलिये पुराण हिन्दू धर्म का मूलाधार है ।

सामान्यतः पुराण शब्द का अर्थ है प्राचीन। विभिन्न ग्रन्थों और पुराणों मे पुराण शब्द की व्युत्पत्तियाँ दी हुयी हैं । निरूक्तकार ने पुराण शब्द का विवेचन करते हुये कहा है कि प्राचीन सामग्री नवीन कलेवर में पुराण होती है [7] –– पुरा नवं भवतीत पुराणम्

यही अर्थ वायुपुराण में भी पाया जाता है [8] ––

यस्मात् पुरा ह्यनितीदं पुराणं ते न तत्स्मृतम् ।
निरूक्तमस्य यो वेद सर्व पापैः प्रमुच्यते ।।

पदमपुराण में भी इसे प्राचीन परम्परा से सम्बद्ध किया गया है [9] ––

पुरा परम्परां वष्टि पुराणं तेन तत्स्मृतम्

इसी प्रकार का विवरण ब्रह्मपुराण में भी पाया जाता है ।

यस्मात् पुरा ह्यभूच्चैतत् पुराणं तेन तत्स्मृतम्
निरूक्तमस्य यो वेद सर्व पापैः प्रमुच्यते

इन पौराणिक साक्ष्यों से यह पता चलता है कि पुराण शब्द प्राचीनता का प्रतीक है ।

भारतीय वाङ्मय का कोई भी अंग जितना प्राचीन है, पुराण साहित्य भी मूलरूप से लगभग उतना ही अधिक प्राचीन है । अथर्ववेद में पुराण का उल्लेख करते हुये कहा गया है कि पुराण की उत्पत्ति चारों वेदों के साथ ही हुयी है [11] --

ऋचः सामानिछन्दाँसि पुराणं यजुषा सह
उच्छिष्टाज्जषिरे सर्वेदिवि देवा दिविक्षितः

गोपथ और शतपथ ब्राह्मण में भी पुराण शब्द का उल्लेख है और अन्य अंगों के साथ इसका भी परिगणन किया गया है [11अ] --

एवमिमे सर्ववेदा निर्मिताः सकल्पाः
सरहस्याः सब्रह्मणाः सोपानिषत्काः
ऐतिहासाः सान्वाख्यानाः सपुराणाः

वृहद्राण्यक उपनिषद् मे भी पुराण के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्वपूर्ण विवरण प्राप्त होता है [12]--

"अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद्धा वेदो
यजुर्वेदः सामवेदा अथर्वागिरस इतिहासः
पुराणं विधा उपनिषदः श्लोकाः सूत्राव्यनुव्याख्यानानि
व्याख्यानान्यस्यैवेतानि निश्वसितानि"

इसका तात्पर्य है कि जिस प्रकार ईंधन गीला होने से अग्नि से पृथक धुआँ निकलता है, उसी प्रकार ये जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वागिरस (अथर्ववेद), इतिहास, पुराण, विधा,

उपनिषद, श्लोक, सूत्र, मंत्रविवरण और अर्थवाद हैं, वे एक महद्भूत के ही निःश्वास हैं। शंकराचार्य ने इसका भाष्य करते हुये कहा है कि पुराण में जिस प्रकार अप्रयास, स्वतः ही निःश्वास निकलता है, वैसे ही इन अंशों का आविर्भाव है। छान्दोग्य उपनिषद में पुराण को पाँचवा वेद बताया गया है [13] --

ऋग्वेद विजानानि यजुर्वेद, सामते स्मापवेणं
चतुर्थमितिह्यासपुराणं पंचम वेदानां ---------

अर्थात वेदों में पाँचवे वेद इतिहास पुराण हैं।

गृह्य सूत्रों एवं धर्म सूत्रों में पुराण का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन वाड्.मय के उल्लेखों के साथ-साथ हुआ है। इन साक्ष्यों से इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता हे कि पुराणों के मूलरूप का भारत के प्राचीनतम् साहित्य के साथ ही उद्भव हुआ। पुराणों का संकलन अवश्य ही बाद में किया गया। द्वितीय श0ई0पू0 से पुराण संकलन की यह प्रक्रिया प्रारम्भ हुयी और बड़े-बड़े पुराण दसवीं शताब्दी तक संकलित हो गये। यह क्रम उसके पश्चात भी चलता रहा और कुछ पुराण मध्यकाल में संकलित हुये, परन्तु पुराण के प्राचीनतम् उल्लेखों से यह निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है कि पुराण साहित्य उतना ही प्राचीन है जितनी भारतीय सभ्यता और संस्कृति।

पुराणों के आविर्भाव की भी बड़ी रोचक कल्पना मुनियों ने की है, जैसा कि मत्स्य, स्कन्द और पद्मपुराण में उल्लेख प्राप्त होता है। तद्नुसार कल्पान्तर में पुराण एक ही था। वह धर्म, अर्थ और काम का साधन था। अत्यधिक श्लोक संख्या एवं कुछ अन्य धारणाओं के कारण यह देवलोक में ही प्रतिस्थापित रहा। कालक्रम से मंदबुद्धि मानव की ग्राह्य सीमा से यह बाहर हो गया, क्योंकि इसकी ग्राह्यशक्ति सीमित थी। अतः भगवान विष्णु ने जन सामान्य के कल्याण के लिये व्यास के रूप में अवतार लेकर इस विशाल साहित्य का संक्षेपण कर केवल चार लाख श्लोकों मे समाहित कर दिया। इस प्रकार पुराण चतुर्लक्षात्मक हो गये तथा इसी को व्यास ने 18 भागों मे विभाजित किया और इस प्रकार पुराण 18 हो गये [14] --

पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरे नव ।
त्रिवर्ग साधनं पुथं शतकोटिप्रविस्तरम् ।।
निर्दग्धेषु चलोकेषु वाजिरूपेण तै मया ।
अंगानि चतुरो वेदाः पराणं न्याय विस्तरम् ।।
मीमांसा धर्मशास्त्रं च परिगृल मयाकृतम ।
मत्स्यरूपेण च पुनः कल्पादावुदर्णवे ।।
अशेषमेतत् कथितमुद कान्तर्गतेन च ।
श्रुत्वा जगाद च मुनीन् प्रति देवान् चतुर्मुखः ।।

पुराण प्रणयन का श्रेय मुख्यतः वेदव्यास को और आधुनिक काल मे इस साहित्य निर्माण का श्रेय मुनि कृष्ण द्वैपायन को है ।

साधारणतया पूराणो की संख्या 18 मानी गयी है । आद्य अक्षरों के आधार पर इसे एक श्लोक का रूप प्रदान किया गया है । मकारादि दो पुराण मार्कण्डेय तथा मत्स्य, भकारादि दो पुराण भागवत तथा भविष्य, बकारादि तीन पुराण ब्रह्म , ब्रह्ममाण्ड और ब्रह्मवैवर्त, वकरादि चार पुराण विष्णु, वामन, वराह और वायु, अ से अग्नि, ना ने नारदीय, प से पदम्, लिङ् से लिङ्ग पुराण, ग से गरूण, कू से कूर्म तथा स्क से स्कन्द ये अट्ठारह पुराण हैं । इनमें बहुत से वैष्णव तथा कुछ शैव धर्म से सम्बन्धित हैं । महाभारत और हरिवंश से उनका अत्यधिक निकट का संबन्ध है । इनमे वायु पुराण सबसे प्राचीन प्रतीत होता है । इसका हरिवंश से बहुत साम्य है । मत्स्य में महाभारत जैसी ही मनु और मत्स्य की कथा है । कूर्म में विभिन्न अवतारों, देवताओं और राजाओं की वंशावलियाँ और महाभारत जैसी ही सृष्टि सम्बन्धी कल्पनाये हैं ।यहाँ सात द्वीपों का वर्णन है, जिसके केन्द्र में जम्बू द्वीप है तथा मध्य में सुमेरू पर्वत है । भारतवर्ष इस महाद्वीप का प्रधान भाग है । पदम् ब्रह्मवैवर्त और विष्णु मुख्यतः वैष्णवं पुराण है । भगवत पुराण भी ऐसा ही है । भागवत पुराण का संकलन बहुत बाद में हुआ है और संभवतः इसका समय 13वीं शताब्दी है । इसका दशम स्कन्ध जिसमें कृष्ण की कथा है, सबसे अधिक प्रचलित हुई है । इसी से भक्तिकाल के बहुत से धर्मों ने प्रेरणा ली, और अपनी मूल आस्थायें बनायी ।

इन अट्ठारह (18) महापुराणों के अतिरिक्त अट्ठारह (18) उप पुराण भी हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं – (1) सततकुमार (2) नृसिंह (3) नन्दी (4) शिवधर्म (5) दुर्वासा (6) नारद (7) कपिल (8) मानव (9) उषात्स (10) बह्माण्ड (11)वरूण (12) काली (13) वशिष्ठ (14) साम्ब (15) सौर (16) परशर (17) मारीच और (18) भार्गव पुराण । यहाँ ध्यान देने योग्य यह है कि भिन्न–भिन्न सूचियों में भिन्न पुराण उल्लिखित हैं । कुछ में वायु के स्थान पर शिव पुराण है तो कुछ में हरिवंश, देवी–भागवत, कल्कि और नीलमत पुराणों का वर्णन है । संभवतः प्राचीन वाङ्मय के आधार पर पुराणों के संकलन की प्रक्रिया निरंतर चलती रही और विभिन्न मत वालों ने अपने पुराण को प्रधान अट्ठारह पुराणों अथवा उपपुराणों में सम्मिलित करने के लिये ही इन सूचियों में बार–बार परिवर्तन किया ।

(ब) विष्णु धामोत्तर पुराण

यहाँ पर उल्लेखनीय तथ्य यह है कि पुराणो और उपपुराणों की इन सूचियों मे विष्णु धर्मोत्तर पुराण का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है । इस संबन्ध में डा0 व्यूलर ने अल्बरूनी की पुस्तक किताब उल हिन्द की समीक्षा करते हुये लिखा हैं कि अल्बरूनी ने दो पुस्तकों से उद्धरण दिया है तथा दोनों को ही 'विष्णु धर्म' शीर्षक प्रदान किया है । अतः इससे पता चलता है कि अल्बरूनी के समय से ही विष्णु धर्म शीर्षक से दो भिन्न–भिन्न पुस्तकें थीं । इसमें एक को डा0 व्यूलर ने विष्णु धर्मोत्तर बताया है । ऐसा प्रतीत होता है कि अल्बरूनी के संक्षिपतीकरण के कारण अथवा न समझ पाने के कारर्ण अपनी पुस्तक किताब उल हिन्द में इसे विष्णु धर्म शीर्षर्क प्रदान किया है, परन्तु यह स्पष्ट है कि उसका नाम विष्णु धर्म के स्थान पर विष्णु धर्मोत्तर है ।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण का उल्लेख नारदीय पुराण में प्राप्त होता है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह विष्णु पुराण का ही एक भाग है जैसे [15] ––

केर्शिध्वजेन चेत्येष षष्णेअंश परिकीर्तितः ।
अतः परं तु सूतेन शौनकार्दिभरादरात् ।। (17)

पृष्ठेन चोदिताः शश्वद्विष्णु धर्मोत्तराद्धयाः ।

नाना धमकथाः पुण्या व्रतानि नियमा यमाः ।। (18)

धर्मशास्त्र चार्थशास्त्र वेदान्तं ज्योतिष तथा ।

वंशास्थानं प्रकरणात् स्तोत्राणि मनवस्तथा ।। (19)

नानाविधास्तथा प्रोक्ताः सर्वलोकोपकारिकाः ।

एतद्धिपुराणं वै सर्वशास्त्रार्थसंग्रहम् ।। (20)

भागवत, मत्स्य और नारदीय पुराण के अनुसार विष्णु पुराण में 23 हजार श्लोक होने चाहिये, परन्तु इसके वर्तमान स्वरूप में मात्र सात हजार श्लोक प्राप्त होते हैं । शेष 16 हजार विष्णु धर्मोत्तर पुराण के हैं । वेंकेटश्वर प्रेस से प्रकाशत विष्णु धर्मोत्तर पुराण को वास्तव में विष्णु धर्मोत्तर पुराण का एक भाग ही माना गया है । ऐसा ही मत श्री टी0जी0 काले ने अपनी मराठी पुस्तक पुराण निरीक्षण में व्यक्ति किया है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि विष्णु धर्मोत्तर पुराण एक स्वतन्त्र पुराण है फिर भी मूल रूप से वैष्णव होने के कारण इसे विष्णु पुराण के अन्तर्गत नहीं मान लिया गया । इसीलिये इस पुराण का अलगसे उल्लेख नहीं प्राप्त होता है । सभी साक्ष्यों का सूक्ष्म निरीक्षण करने के पश्चात इस निष्कर्ष पर निश्चित रूप से पहुँचा जा सकता है कि विष्णु धर्मोत्तर पुराण का खिल है तथापि इसमें स्वतन्त्र रूप से बहुत महत्वपूर्ण विषयों का विवेचन हुआ है जो मूल विष्णु पुराण में नहीं है ।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के समय के संबन्ध में बहुत वैमत्य है । विष्णु धर्मोत्तर पुराण का उल्लेख अल्बरूनी की किताब–उल–हिन्द (1030 ई0), नारदीय पुराण (लगभग 1100 ई0), अद्भुत सागर (1168 ई0) हेमाद्रि की चतुवर्ग चिंतामणि में तथा अपरार्क ने किया है । इस प्रकार यह इन सबसे पूर्व की रचना है । अतः इसकी उच्चतम् समय सीमा निश्चित रूप से 1030 ई0 से पूर्व निर्धारित की जा सकती है ।

इसकी निम्नतम् काल सीमा का प्रश्न बड़ा ही विवादास्पद है । डा0 व्यूलर के मतानुसार

यह ग्रन्थ पाँचवीं श0ई0 के बाद का है । विन्टरनिप्स इसे 628 से 1000 के मध्य का मानते हैं । उनके अनुसार विष्णु धर्मोत्तर पुराण में ज्योतिष के जिस पैतामह सिद्धान्त का वर्णन प्राप्त होता है वह ब्रह्मगुप्त द्वारा 628 ई0 में रचित ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त पर आधारित हैं । ज्योतिर्विद दीक्षित जी इस अन्तर्साक्ष्य को स्वीकार नहीं करते हैं । उनके अनुसार ज्योतिष के दो भिन्न सिद्धान्त हैं ।

महान पुराण विद्वान आर0सी0 हाजरा के अनुसार भी यह ग्रन्थ 500 ई0 के बाद का है । डा0 स्टेला क्रेमरिश इसे छठीं सातवीं शताब्दी का ग्रन्थ मानती हैं । परन्तु इसमे प्राप्त वास्तुकला संबन्धी सामग्री के आधार पर तारापाद भट्टाचार्य इसे कुछ बाद का अर्थात 8वीं नवीं में संकलित मानते हैं । स्टेला क्रैमरिश ने इसे एक अन्तर्साक्ष्य के आधार पर शकराचार्य से पूर्व का ग्रन्थ माना है । उन्होंने कहा है कि पुराणों में उसके रचना काल तक उपलब्ध सभी देवताओं, महापुरूषों, ऋषियों और दार्शनिकों को विष्णु की परम्परा के साथ जोड़ दिया गया हे, परन्तु इसमे शंकर का नाम नहीं है । अगर शंकर इसके रचना काल तक अवतरित हो गये होते तो उन्हें वैष्णव भक्ति में अवश्य स्थान मिल जाता और उन्हें शिव का अवतार नहीं माना जाता । यह तर्क सारगर्भित है । शंकर का काल 8वीं शताब्दी के आसपास माना गया है और इस कारण यह ग्रन्थ 8वीं शताब्दी के पहले का होना चाहिये ।

डा0 काणे के मतानुसार विष्णु धर्मोत्तर पुराण का एक श्लोक पराशर स्मृति से लिया गया है, जिसका काल 500 ई0 है, अतः विष्णु धर्मोत्तर पुराण का काल 500 ई0 के पश्चात् होना चाहिये, परन्तु दोनों श्लोकों में कुछ वैषम्य हैं । पुनः परम्परा यह थी कि स्मृतियों ने पुराणों से उद्धरण लिये हैं ना कि पुराणों ने स्मृतियों से । साथ ही सम्भावना यह भी है कि दोनों ने ही किसी तीसरे स्रोत से यह श्लोक ग्रहण किया है, फिर केवल एक श्लोक की समानता के आधार पर इतना महत्वपूर्ण निर्णय नहीं लिया जा सकता । इसके लिये आवश्यक है कि उपलब्ध सभी अन्तर्साक्ष्यों की गहन समीक्षा की जाय ।

विष्णु धमोत्तर पुराण के तृतीय खण्ड में काव्य, गीत, नाट्य, चित्र, नृत्य, प्रतिमा और प्रसाद आदि ललित कलाओं का विवेचन प्राप्त होता हैं । भारतीय साहित्य के कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों

में भी इन विषयों का वर्णन प्राप्त होता है । तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि भरत के नाट्य शास्त्र, भामह के काव्यालंकार और दण्डी के काव्यादर्श में वर्णित विषयों से इनकी बहुत समानता है । नृत सूत्र का अधिकांश भाग नाट्य शास्त्र से ही प्रभावित है । रस भाव मुद्रायें आदि बहुत से अन्य विषय भी नाट्य शास्त्र से ही लिये गये हैं । विकास के जो लक्षण विष्णु धर्मोत्तर पुराण के वर्णनों में प्राप्त होते हैं उनसे ज्ञात होता है कि यह नाट्यशास्त्र के पश्चात् अर्थात् तीसरी शताब्दी ई0 के बाद की कृति है । विष्णु धर्मोत्तर पुराण की प्रहेलिकाओं और अलंकारों तथा उनकी परिभाषाओं की काव्यालंकार और काव्यादर्श से बहुत समानता है । ध्यातव्य यह है कि इसमें केवल अट्ठारह अलंकारों का विवेचन है जबकि भामह और दण्डी क्रमशः 39 और 35 अलंकारों का वर्णन करते हैं । जहाँ अलंकारों की संख्या बढ़ती है और प्रहेलिकाओं की घट जाती है । विकास की प्रकृति कुछ ऐसी रही है कि परवर्ती आचार्य अलंकारों की संख्या बढ़ाते और प्रहेलिकाओं की घटाते गये हैं । इस दृष्टि से भामह और दण्डी के ग्रन्थ बाद के हैं । भामह का काल 700–750ई0 और दण्डी का 660–680 ई0 माना गया है । इन्ही साक्ष्यों के आधार पर डा0 प्रिय बाला शाह ने इसका समय लगभग 650 ई0 से पूर्व निर्धारित किया है ।

डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल का यह मत कि गुप्त काल (320–650 ई0) में वैष्णव धर्म के उत्थान के साथ–साथ ललित कलाओं की अभूतपूर्व प्रगति हुयी, इस सन्दर्भ में बड़ा उपयोगी है । कलाओं के विविध प्रयोग निश्चित रूप से इस काल में हुये । इन प्रयोगों के तुरन्त बाद शास्त्र लिखने की आवश्यकता हुयी, फलतः विष्णु धर्मोत्तर पुराण संकलित हुआ । ललित कलाओं के सर्वांगीण विवेचन की दृष्टि से जिसमें वास्तुकला भी सम्मिलित है, पहला ग्रन्थ विष्णु धर्मोत्तर पुराण ही है । समग्रतः हम इसके संकलन का समय गुप्त काल के अन्तिम चरण 650 ई0 के आस–पास निर्धारित कर सकते हैं ।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण तीन खण्डों में विभाजित है । प्रथम खण्ड में 269 अध्याय हैं । इन अध्यायों में अनेकशः विषयों का वर्णन प्राप्त होता है । यहाँ पाताल वर्णन, भूगोल, वर्णन, भार्गव राम का चरित्र कथन, मन्वन्तरादि वर्णन, सृष्टि क्रम, ज्योतिष शास्त्र, उर्वशी पुरूखा चरित, सृष्टि क्रम, व्रत महात्म्य, श्राद्ध, दीपदानादि विधि, विष्णु पूजा अर्चना के विधान यक्ष, रक्ष, पिशाचादि

का उद्‌भव एवं सुन्दर ऋतु वर्णन उपलब्ध है [16] --

यत्र चूताग्रशा रवस्थपरिपुष्ट निनाविते-
गन्तुकायाः प्रवसिता. पान्था भूयो निवर्तिता. ।।
प्रफुल्लदाडिमाक्रान्ते ज्वलिता भवनान्तरे ।
चारूचम्पक पुस्पादय वनराजिविराजिते ।।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के दूसरे खण्ड में 183 अध्याय हैं । इसमें मुख्य रूप से राजधर्म का विवरण प्राप्त होता है । इसके अतिरिक्त इस खण्ड में तीर्थादि महात्म्य कथन, पुरूस्कार प्रशंसा, स्त्री चरित्र, चतुर्वर्ण तथा चतुराश्रम व्यवसथा, कर्म विवाद प्रतिपादन, विष्णु पूजा अर्चना विधि. गायत्री महात्म्य, ज्योतिष विद्या सहित धनुर्वेद आदि का वर्णन प्राप्त होता है । मंत्री के लक्षण से सम्बन्धि यह श्लोक दृष्टव्य है [17] —

सर्वलक्षण लक्षणो मंत्री राज्ञस्तथैव च ।
ब्राह्मणो वेद तत्वज्ञो विनीतः प्रिय दर्शनः ।।

इसके अन्तिम और तृतीय खण्ड में 350 अध्याय हैं । यही वह खण्ड हैं, जो विष्णु धर्मोत्तर पुराण को एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करता है । इसमें साहित्य सहित सम्पूर्ण ललित कलाओं का सर्वांगीण विवेचन प्राप्त होता है । इस खण्ड में गायत्री आदि छंद, संस्कृत प्राकृत भाषा विषयक व्याख्यान, इतिहास, अलंकार, काव्य नाट्‌य गीतों के लक्षण व उदाहरण, आतोदय विधान, नृत्यस्थान, अभिनय कला का विवेचन, नव रस प्रतिपाद, चित्र सूत्र, विभिन्न देव प्रतिमाओं की निर्माण विधि, मन्दिर स्थापन, मूर्ति प्रतिष्ठा विधान, व्रतादि महात्म्य, हंस गीता, विष्णु महात्म्य प्रतिपादक व्याख्यान विवेचित है । वृक्षारोपण द्वारा पूर्ण प्राप्ति सम्बन्धी यह श्लोक प्रष्टव्य है [18] --

एको यपिरोपितो वृक्षः पुण्यकार्यकरो भवेत् ।
देवान्प्रसूनैः प्रीणाति छायया चातिथींस्तथा ।।
फलै मनुष्यान्प्रिीणाति नारक्यं नास्ति पादपे ।
अपि पुष्पफलै हीने द्रुमे पान्थस्य विश्रमः ।।

जहाँ तक इस ग्रन्थ के रचयिता का प्रश्न है सभी पुराण संकलित ग्रन्थ माने गये हैं तथा इसका कोई निश्चित व्यक्ति लेखक नहीं है । इनकी रचना का रेय व्यास को दिया जाता है ।

शोध हेतु शीर्षक के चयन के संबंध में यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता हे कि यह शीर्षक ही क्यों चयन किया गया । इ संबध में यह बताना उचित होगा कि विष्णु धर्मोत्तर पुराणं वर्णित कला पर तो बहुत कार्य हुआ है परन्तु पुराण में आख्यात सम्पूर्ण संस्कृति पर एक साथ शोध कार्य हुआ है । अतः मैने विष्णु धर्मोत्तर पुराण में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृतिति" को अपना शोध शीर्षक बताया है ।

मैंने अपने शोध का आधार श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण – 1985 – नाग पब्लिशर्स– 11–ए/यू.ए. (पोस्ट आफिस भवन) जवाहरनगर –दिल्ली–7 ग्रंथ को बताया है ।

सन्दर्भ

1. भागवत पुराण
2. भागवत पुराण
3. भागवत पुराण
4. भागवत पुराण
5. भागवत पुराण
6. कौतिल्य की अर्थशास्त्र, जयमगला व्याख्या
7. निरूवत
8. वायु पुराण
9. पद्म पुराण
10. ब्रह्य पुराण
11. अर्थर्ववेद
12. गोपथ व शतपथ ब्राह्मण
13. बृहदाख्यक उपनिषद
14. छान्दोग्य उपनिषद
14. महाभारत
15. नारदीय पुराण
16. विष्णुधर्मोत्तर पुराण
17. विष्णु धर्मोत्तर पुराण
18. विष्णु धर्मोत्तर पुराण

संस्कृति, धर्म एवं समाज

विष्णु धमोत्तर पुराण में संस्कृति धर्म एवं समाज

विष्णु धर्मोत्तर पुराण समग्र रूप से वैष्णव मान्यताओं का पुराण है । जैसा कि हम सामान्य रूप से जानते हैं वैष्णव मान्यतायें जीवन के सम्बन्ध मे अनेक नियम और उपनियमों का विधान करती हैं । आज का जो हमारा भारतीयों का जीवन है जिसे शब्दों में ब्राह्मण धर्म से अनुमोदित जीवन व्यवस्था का भी नाम दिया गया है, उसमे चारो ओर से वैष्णव धर्म की मान्यतायें ओत प्रोत हैं । आज जब वेद या वैदिक धर्म का नाम लिया जाता है, जो भी ब्राह्मण वेद धर्म की चर्चा करता है वह नाम तो वेद का लेता है लेकिन अपने जिन जीवन आदर्शो पर गर्व करता है अथवा उनको उद्धत करता है अपने आचरण से उतारता है वे सारी की सारी मान्यतायें वैष्णव धर्म की है । आज विक्रम की शवी सदी में ब्रह्मण का अर्थ वैष्णव है । विष्णु पुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण, मध्य पुराण, स्कन्द लिंग पुराण आदि तीन चौथाई पुराण वैष्णव आदर्श और उनकी कहानियों से ओत प्रोत हैं । अवतारवाद की कल्पना भी वैष्णवों की है और आज अवतारवाद हमारी संस्कृति में ओत प्रोत है उसे हम किसी प्रकार से छोड़ नहीं सकते हैं । वैष्णव मान्यताओं में जीवन विधि की आचार संहिता का उल्लेख बहुत ज्यादा होता है और उसमें जो दृष्टिकोण है वो समाज के विविध वर्गों को कठोर नियमों से आवर्त करते हैं । यह विष्णु धर्मोत्तर पुराण भी अपने लम्बे विस्तार में धर्म की जो व्याख्या करता है उसके जीवन विधि की आचार संहितायें बहुत कही गयी है और समाज को मुख्य रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्गों में बॉटा गया है लेकिन यह विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि स्त्रियों के लिये बनायी गयी इस आचार संहिता का बहुत विस्तार है । इसलिये हम कहना चाहें तो कह सकते हैं कि आचार संहिताओं के व्याख्यान को देखते हुये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के अतिरिक्त पुराण की दृष्टि मे स्त्री पॉचवा वर्ण है ।

यह पुराण कुल तीन खण्डों में विभाजित है और इनमें क्रमशः 269, 183, 355 अध्याय हैं । इनमे 100 से अधिक ऐसे प्रसंग आये हैं जिनमें धर्म और संस्कृति अर्थात जीवन के आचार संहिता के व्याख्यान हैं । दूसरे अध्यायों में भी जहाँ कथायें दी गई हैं अवतारों का वर्णन हैं । उनमें भी जीवन की आचार संहिता को धर्म के रूप मे व्यवस्थापित किया गया है । संस्कृति का विस्तार जीवन की आचार संहिता से अतिरिक्त भी है और इस अतिरिक्त विस्तार में समाज का कर्म क्षेत्र

आता है। मनुष्य के दो हॉथों ने विश्व में जो कुछ कौशल किया वह सब हमारी संस्कृति का अंग है और वैदिक शब्दावली में इसे कृष्टि कहते हैं। कृष्टि का अर्थ होता है कृषि उपवन, बाग, बगीचों, पशु आदि से आबाद हो।[1] संस्कृति शब्द अंग्रेजी कल्चर का अनुवाद है। मूल रूप से जीवन की आचार संहिता मे व्यवहृत भारतीय संज्ञा कृष्टि होनी चाहिये। इसका प्रयोग बंगाल के कतिपय इतिहासकारों और हिन्दी के श्री जयचन्द विद्यालंकार ने किया है। उनकी पुस्तक का नाम ही है "भारती कृष्टि का क ख"

संस्कृति को समझने के लिये सामान्य रूप से हमें समाज की इस प्रक्रिया को जान लेना चाहिये कि हम कि भूमि पर रहते हैं। वह भूमि उपजाऊ है मूर्थल है या वहॉं सागर तट है। पहाड़ नदियॉं हैं कि नहीं। जो भूमि अन्न, अनेक प्रकार के धान्य फलों के उपवन और दूध देने वाली गायों से भरा पूरा होगा, ऐसे समाज की संस्कृति और उपजाऊ भूमि के इस वैभव से जो देश शून्य है उसकी संस्कृति मे अन्तर होगा। दोनों की आचार संहिता में भिन्नता होगी। उदारता और सहिष्णुता, परोपकार तथा अहिंसा का प्रवेश जीवन के आचार संहिता में तभी होगा जब समाज सम्पन्न होगा। समाज तब सम्पन्न होगा जब भूमि धन धान्य से सम्पन्न होगी, और भूमि धन धान्य से तब सम्पन्न होगी जब वह समुद्र से घिरी होगी, पहाड़ो एवं नदियों से घिरी होगी। ऐसा होने पर समाज के लोगों मे कोई अभाव नहीं होगा जहॉं जीवन मे सब प्रकार के भाव विद्यमान हैं। मान का अर्थ है कर्म क्षेत्र की उपलब्धियॉं, वहॉं के जीवन की आचार संहिता अर्थात आदर्शों से भरी होगी। हमारे अपने देश की संस्कृति की पृष्ठभूमि और उसका स्वरूप कुछ ऐसा ही है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण भावों अर्थात कर्म क्षेत्र की उपलब्धियों समादित ऐसे ही धर्म और संस्कृति अर्थात जीवन के कर्म क्षेत्र का विवरण देता है। यहॉं पर दो वाक्यों मे कह देना भी अनुचित नहीं होगा कि जहॉं पर अभाव ही अभाव है, वैष्णव शब्दावली में असुरो, दैत्यो या म्लेच्छों का देश ऐसी संस्कृति का मात्र पालन नहीं कर सकते जो विष्णु धर्मोत्तर पुराण में या दूसरे पुराण में कही गयी है।

इस प्रकार जीवन विधि या जीवन की आचार संहिता हमारी कृष्टि या संस्कृति है और इसकी समृद्धि से ही पल्वित धर्म हमारे सामने आता है। धर्म के संबन्ध में यह कहा गया है कि

जहाँ से अभ्युदय व कल्याण की प्राप्ति हो धर्म वहीं है – यताऽभ्युदयानिः श्रेयस सिद्धिः स धर्मः । यह एक सामान्य परिभाषा है, जिसके अन्तर्गत अनेक नियम, उपनियम.. आ सकते हैं । अभ्युदय और कल्याण व्यक्ति, समाज, राष्ट्र सबका होगा । उसी आधार पर धर्म का वृहत्‌र रूप होता जायेगा । व्यक्ति का धर्म, समाज का धर्म, राष्ट्र का धर्म । मनुस्मृति में एक स्थान पर धर्म के दस लक्षण दिखाये गये हैं ।[2] लक्षणों का यह विस्तार आचार संहिता का विषय है । इसे ही हम संस्कृति कहते हैं । धैर्य रखना, पवित्र रहना, इन्द्रिय निग्रह, क्रोध न करना आदि जीवन की आचार संहिता का धर्म है । उसे धर्म के मूल मान अभिवृद्धि होती है अर्थात हम अभ्युदय और कल्याण की ओर बढ़ते हैं । जीवन के इन आचार संहिताओं का पालन करने से हमें अपने जीवन में उसके अनुकूल शक्ति प्राप्ति होती है । प्रकारान्तर से यह शक्ति ही इस धर्म का वरदान है । ऐसा धर्म जो पूरे विश्व को अपनी उदारता में समाहित करता हो उस संस्कृति से ही उत्पन्न होगा, जिसकी संस्कृति इतनी ही सम्पन्न और विशाल होगी । इस अर्थ में भारतीय संस्कृति का व्याख्यान विष्णु धर्मोत्तर पुराण करता है ।

जीवन अर्थात व्यक्ति के जीवन में मानवीय संस्कृति की महानता कहाँ तक है उसको जानने के लिये वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित राम के जीवन की विशेषताओं को जानना चाहिये । वाल्मीकि रामायण के प्रथम सर्ग अर्थात मूल रामायण मे राम के गुणों का वर्णन करते हुये कहा गया है धर्मज्ञाता, दृढ़ प्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, प्रजा हितैषी, ज्ञानी और समाज में परोक्ष के स्वरूपों को देख सकते है । वेद वेदांगो के तत्वों को जानते है चतुर्वेद में पारंगत व चतुर हैं उनमें ऊँचा स्वाभिमान है । सज्जनों से मैत्री, अपने धर्म की रक्षा करना जानते हैं । अपने स्वजनों के रक्षक हैं । गंभीरता में समुद्र हैं, धैर्य में हिमालय के समान हैं । क्षमा मे पृथ्वी हैं, क्रोध मे प्रत्यक्ष काल हैं, वे सबके समान रूप से प्रिय दर्शन है । इसीलिये जब कैकेयी ने उनके समक्ष वनवास का प्रस्ताव रखा और कैकेयी ने मन में संदेह भी प्रकट किया कि राम इनकी बात मानेंगे कि नहीं तब राम ने कहा कि राम एक ही बात कहता हे दो तरह की बात करना उसका स्वभाव नहीं है रामो द्विर्नाभिभाषते । यह भारतीय संस्कृति का स्वरूप व आदर्श है ।[3] राम मे संस्कृति के ऐसे ऊँचे भाव क्यों हैं, यह भी हमको समझ लेना चाहिये । वे समुद्र के समान गंभीर हिमालय के समान धैर्यशाली क्यों है, क्योंकि

उनका स्वरूप आकार और शारीरिक सौष्ठव ऐसा है जो संस्कृति के इन सारे गुणों को आत्मसात करना है । राम के कंधे ऊँचे हैं भुजायें घुटने तक लम्बी हैं, छाती चौड़ी, वक्षस्थल भरा, सिर और ललाट भव्य है ।[4] सभी अंग समनुपात से है । शरीर का ऐसा सौष्ठव व शक्तिमान विग्रह ही संस्कृति के ऊँचे गुणों को आत्मासात् करता है, जो जीणशीर्ण हैं, दुर्बलता और हीनता से भरा हुआ है, उससे संस्कृति के पालन की आशा नहीं की जानी चाहिये । इसके साथ ही धन धान्य की सम्पन्नता के साथ समाज का ज्ञान सम्पन्न होना जरूरी है । जब तक उसमें ज्ञान और विद्या का प्रसार नहीं होगा उसमें संस्कृति के ऊँचे गुणों के बीज अंकुरित नहीं हो सकते । विद्या का प्रसार, ज्ञान की रक्षा के प्रति समाज का चौकन्ना होना आदि स्थितियों के सतत जारी रहने पर संसकृति पल्लवित और पुष्पित होती रहती है । इसीलिये संस्कृति के बनने में और उसके भली–भाँति स्थित होनें में पाँच शती अथवा सहस्राब्दी का समय लग सकता है । यह बात हमको ध्यान में रखनी चाहिये कि विष्णु धर्मोत्तर पुराण मे जिस संस्कृति और धर्म का विवेचन किया गया है उसकी प्राचीनता चार हजार वर्ष से कम नहीं है । यदि हम विष्णु धर्मोत्तर पुराण का रचना काल नवीं दसवीं शताब्दी मानते हैं और वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा का काल भगवान कृष्ण की कुरू क्षेत्र में धर्म की विजय मानते हैं तो भारतीय काल गणना के अनुसार यह कुल समय चार हजार वर्ष का है । भगवान के समय या उनकी प्रतिष्ठा के साथ जिस धर्म का प्रचार हुआ उसे सात्वत् कहते हैं । सात्वत् वैष्णव धर्म का पर्याय है । बाद में कृष्ण को तिल्पुरा अवतार माना गया और वैष्णव पुराणों में कृष्ण को भगवान विष्णु के अवतार के रूप मे ही चित्रित किया गया । इस प्रकार सात्वत् धर्म व वैष्णव धर्म दोनों एक हो गये यह बात ध्यान देने योग्य है कि गुप्त काल तक कृष्ण को ही विष्णु का पर्याय माना जाता था, राम नहीं थे । अमरकोष में विष्णु के पर्यायों में राम का उल्लेख नहीं है । सारभूत बात यह है कि विष्णु धर्मोत्तर पुराण में जिस संस्कृति, धर्म और समाज का आदर्श विवेचित किया है 3/4 भाग सात्वत् वैष्णव धर्म का है । 1/4 वैदिक धर्म का है ।

इस पुराण के प्रथम खण्ड में अध्याय 53 से 65 तक शंकर गीता हैं और तृतीय खण्ड 227–232 तक हंस गीता है । उन दोनों संदर्भों मे विशेष रूप से पुराण ने अपने मान्यताओं की जीवन संहिता का उल्लेख किया है, जिनमें वर्णाश्रम धर्म, सत्य का आचरण और ज्ञान के चिन्तन

को बहुत महत्व दिया गया है । मुख्य रूप से संस्कृति के जो प्रसंग इस पुराण में आये हैं इनकी सूची इस प्रकार है – (1) वर्णाश्रम धर्म (2) धर्म सर्वोपरि है, (3) धर्म युद्ध (4) स्त्री धर्म और स्त्री की प्रकृति (5) पाप और पुण्य की मीमांसा (6) वेदोत्पत्ति (7) यज्ञ (8) ब्राह्मणो का सम्मान (9) गायों की महिमा (10) विष्णु और शंकर की परस्पर एकता (11) क्रीणा, वन, उपवन और कामदेव की पूजा (12) पथिकों की सेवा के लिये मार्ग में प्रपा (पौशाला) (14) श्राद्ध कर्म (15) भाग्य और कर्म (16) दण्ड की महिमा (17) कृतज्ञता गुण की प्रशंसा (18) नदियों की महिमा ।

1. वर्णाश्रम धर्म

चारवर्णों की मान्यता भारतीय संस्कृति मे बहुत पुरानी है । पुरूष सूक्त में यह बात कही गई है । उस परम पुरूष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय जंघा से वैश्य और चरण से शूद्र उत्पन्न हुये ।[5] श्री मद भागवत गीता में कृष्ण ने कृष्टि की उत्पत्ति की । इस धारणा को दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा है कि मैंने मनुष्य लोक में वर्णाश्रम आदि प्रतिभागों की व्यवस्था करते गुण कर्म का विभाजन करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों की सृष्टि की अथवा यह कहा ये चार वर्ण अपने–अपने गुण कर्मों के कारण बन गये हैं । मैं इनका कर्त्ता हूँ और इनसे निरपेक्ष अन्यय असंसारी इनका कर्त्ता नहीं भी है ।[6] गुण कर्म अनुसार चार वर्णों की व्यवस्था मानकर और गीता दर्शन के श्लोक की व्याख्या करते हुये वर्तमान काल में अनेक व्याख्याता वर्ण या जाति को जन्म से न मानकर कर्म से मानते हैं । लेकिन वैष्णव मान्यता में यह वर्ण व्यवस्था जन्म से ही मानी जाती है । आगे यह भी कहा गया है कि मनुष्य समाज को अन्य पशुओं आदि से ऊपर उठाने के लिये इसे निरन्तर ईश्वर की ओर उन्मुख होते जायें, इन चार वर्णों की सृष्टि की गई । वर्ण सृष्टि की व्यवस्था में प्रकृति के सत रज तम ये तीन गुण ही व्यवस्थापक रहे है । सतो गुणी ब्राह्मण, रजोगुणी क्षत्रिय, सतरज से मिश्रित वैश्य तभोगुणी शूद्र । यहाँ यह भी बात ध्यान देने योग्य है कि वैष्णव को ब्राह्मण से भी ऊपर कहा गया है । वैष्णव आचार्यों की मान्यता हैं । 'विष्णु धमोत्तर पुराण' मे इन चार वर्णों के कर्तव्यों का व्याख्यान किया गया है, लेकिन जिस काल में विष्णु धर्मोत्तर पुराण की रचना हुयी होगी, जो समय निश्चित रूप से नवीं–दसवीं शताब्दी का है, अथवा यदि कहें तो इसकी पूर्व सीमा सातवीं शताब्दी नहीं दी जा सकती है इसके पूर्व नहीं । उस

समय इन चार वर्णों की व्यवस्था नहीं रह गयी थी, जिसका वर्णन पुरूष सूक्त व गीता में हैं। अनुलोम व प्रतिलोम विवाह से आने पर निकली हुयी जाति जो समाज में आ गयी थी, इसका वर्णन स्मृति ग्रन्थों में भी है। लेकिन इतिहास की दृष्टि से बाण के हर्षचरित् में किया गया उल्लेख बहुत ही महत्वपूर्ण है, जिसमें उन्होंने स्पष्ट कहा है कि उनके दो भाई ऐसे थे जो उनकी पिता की शूद्रा पत्नी से उत्पन्न संतान थे और वे बाण के अत्यनत ही विश्वासपात्र थे और साथ रहते थे। उनके समय तक संतान परम्परा पिता से मानी जाती थीं और समाज मे उनका सम्मानपूर्ण स्थान था।[7] जिस समय विष्णु धर्मोत्तर पुराण लिखा गया था उस समय ऐसी संतानों का सम्मान नहीं था तथा हेय दृष्टि से देखी जाती थी। इनकी विविध जातियों का उल्लेख इस पुराण में हुआ है। अपने वर्ण को छोड़कर नीचे की वर्ण की स्त्री का विवाह अनुलोम विवाह जाना जाता था। अपने वर्ण से ऊँचे वर्ण की स्त्री से विवाह प्रतिलोम विवाह माना जाता था। प्रतिलोम विवाह की संताने और हेय मानी जाती थीं। इन्हें शंकरवर्ण कहा गया है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण ब्राह्मणों के द्वारा आचरित कर्मों का ब्योरा अधिक देता है, इस दृष्टि से कि इनके आचरण समाज के लिये आदर्श होते थे।

इन बातों को थोड़ा विस्तार से लिया जाना चाहिये। पुराण कहता है कि अनुलोम विवाह से जो संतान पैदा होती है उनकी जाति भाता के वर्ण से मानी जाती है और जो प्रतिलोम विवाह से संताने पैदा होती हैं वे अत्यन्त ही निन्दनीय हैं। ऐसी संतानों के कई वर्ग हैं – सूत वैदेह, चांडाल, । ब्राह्मणी स्त्री के क्षत्रिय से उत्पन्न संतान सूत, वैश्य से उत्पन्न वैदेह और शूद्र से उत्पन्न संतान चांडाल। इसी प्रकार क्षत्रिय स्त्री के वैश्य से उत्पन्न – मगध, शूद्र से उत्पन्न संतान इसी प्रकार वैश्य स्त्री के शूद्र से उत्पन्न संतान आयोगव। इसके आगे इन शंकर वर्णों ने निर्मित स्त्रियों के संतानों मे शंकर से शंकर वर्णों का विस्तार बहुत है, इसे कहा नहीं जा सकता है। इनके विवाह न उत्तम वर्ण के साथ न मध्यम वर्णों के साथ हो सकते हैं। ये मनमाने ढंगों से संबन्ध स्थापित करते हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण के समय ऐसी उत्पन्न संतानों की समाज में अपनी अलग–अलग कर्मव्यवस्था थी, जैसे सूत जाति के लोग रथ के सारथी बनाते थे और मागध लोग राजाओं की स्तुति करते थे। वैदेह जाति के लाग तंत्रजीवी, वीणा संगीत से अपनी जीविका चलाते थे। पुक्कस व्याध का जीवन बिताते थे। आयोग व शिल्प और कारीगरी का काम करते थे। चांडाल का स्पर्श नहीं किया जाता था। वे भी एक तरह से व्याध का जीवन बिताते थे।[8]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण समाज में ब्राह्मण और गाय की रक्षा को सर्वोपरि मानता है अतः पुराण आगे लिखते हैं गाय व ब्राह्मणों की रक्षा में तथा स्त्री और बालक की रक्षा में, जो समर भूमि में मारे जाते हैं या स्वामी के कार्य के लिये जो अपने को बलिदान हेतु तैयार रहते हैं उनके लिये सिद्धि प्राप्त हो जाती है, मरने पर स्वर्ग गये तथं जीवित रहने पर पवित्र माने जाते हैं ।[9]

पुराण में वर्णों, आश्रम के अलग-अलग कर्मों का निर्देश किया गया है । वर्ण का तात्पर्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र से है । आश्रम का अर्थ ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ से है । मर्त्य अमर्त्य पवित्रता अपवित्रता का विचार वर्ण आश्रम दोनों के लिये समान रूप से है । इन बातों को यथा प्रसंग पुराण के तीनों खण्डों में दोहराया गया है और इस विवेचन की पुनरावृत्ति हुयी है ।

ब्राह्मण का धर्म यज़न **याजन**, अध्ययन, अध्यापन, दान देना और विशिष्ट प्रति ग्रह (विशिष्ट दान लेना) । क्षत्री का कर्म युद्ध में शौर्यपूर्वक लड़ना, धर्म युद्ध करके विजय करना और समाज में यथा अपराध दण्ड की व्यवस्था करना तथा अग्निहोत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों के लिये आवश्यक बताया गया है । वैश्य के लिये यज्ञ के साथ अध्ययन दान और प्याऊ पालन । यहाँ पर पुराणकार ने कृषि की चर्चा नहीं की है । कृषि शूद्रों का कार्य था और इस संबन्ध में उन्होंने दूसरे अध्याय में इसका विस्तार किया है । इसका वर्णन उन्होंने द्वितीय खण्ड के अध्याय 82 मे किया है ।

उन्होंने द्वितीय खण्ड के अध्याय 81-82 में वर्णों के परस्पर निषिद्ध कार्यों का भी वर्णन किया है । यहाँ उन्होंने सामान्य रूप से पूरे समाज के लिये एक सामान्य धर्म का भी निर्देश किया है । इस सर्वसामान्य धर्म में ये बातें कही गयी हैं - अहिंसा, सत्य बोलना, प्राणियों पर दया, तीर्थ यात्रा, दान, ब्रह्मचर्य, अमात्र्ज्य, देव, ब्राह्मणों, गुरू की सेवा, पितृपूजन, आस्तिकता राजा (भूपति) के प्रति सदा निष्ठा रखना और शास्त्र के अनुसार व्यवहार करना । यह सामान्य धर्म की बातें हैं जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति को पालन करनी चाहिये ।[10]

यहाँ पर उन्होंने यह भी कहा है कि अध्ययन, दान और यज्ञ करना क्षत्रिय व वैश्य दोनों के लिये आवश्यक है पर प्रजा का परिपालन क्षत्रिय का अपना विशिष्ट कर्म है । खेती और गायों की रक्षा वैश्य का विशिष्ट कर्म है । शूद्र के लिये ब्राह्मण की सेवा और शिल्प कारीगरी का काम बताया गया है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों जातियाँ जन्म से होती हैं, लेकिन जब तक ये जातियाँ वेदों का अध्ययन नहीं करती हैं, शूद्र के समान हैं ।[11] आगे यही अध्याय 81 में राजा के लिये कहा गया है कि वह समाज की शंकर वर्ण होने से रक्षा करे । यदि सारा समाज शंकर वर्ण हो जायेगा तो राष्ट्र का विनाश हो सकता है ।[12]

कृषि के संबन्ध मे पुराणकार ने विस्तार से चर्चा की है । इस पुराण के अनुसार कृषि प्रकृति की देन है । समय पर वर्षा हो, प्रकृति का उपद्रव न हो इन सबको ध्यान में रखते हुये शुभ मुहुर्त, शुभ नक्षत्र, पृथ्वी, परजन्य, वायु, इन्द्र, चन्द्रमा आदि की पूजा करके, हल व फल की पूजा करके उनके लिये कुछ आहुति देकर ब्राह्मणों की पूजा करके तब पूर्वमुख होकर नये वर्ष के आरम्भ में हल चलाते बीज को अभिमंत्रित करके खेत में वपन किया जाये । बीज बोते सयम शंख की पवित्र ध्वनि की जाय । उन्होंने यहाँ एक मंत्र भी दिया है जो बीज बोते समय पढ़ा जाय--

"प्रजापते कश्यपाय देवलाय नमः सदा ।
सदा में ऋद्धतां देवी बीजेषु च धनेषु च ।"

'द्वितीय खण्ड, अध्याय 82, श्लोक 14'

यह भी कहा गया है कि खेतों को जातने में बैलों को बहुत कष्ट नहीं देना चाहिये । जो 8 बैल रखकर हल चलाता है वह धर्म हल जोतता है । जो छः बैलों से खेती करता है वह जीविकार्थी है, जीविका चलाता है । 4 बैल से खेती करने वाला नृशंस है तथा 2 बैल से जो खेती करता है वह ब्रह्मघाती है । प्रथम बार भूमि पर हल चलाया जाय तो यह एक प्रकार से बहुत बड़ा उत्सव होता था । इसमें खेती करने वाला वैश्य ब्राह्मण और हलवाहे दोनों को भोजन करवाये । ब्राह्मण को सोने और चाँदी के पात्र में भोजन करवाना चाहिये ।[13] यह भी निर्दिष्ट किया गया है कि भूमि के स्वामी राजा का भाग देकर खेती करनी चाहिये । भागदेय कितना होना चाहिये ये तो

नहीं लिखा है । अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक के अनुसार 1/6 हिस्सा होता था । कृषि किन नक्षत्रों में आरम्भ की जाय, उन नक्षत्रों के नाम भी गिनाये गये हैं । नक्षत्रों के नाम हैं–– ज्येष्ठा, श्रवण, चित्रा, विशाखा, मूल, पुष्य, पुनवर्सु, रिक्तातिथि (4,9,14) न हो तथा भौम व शनिवार न हो ।[14]

विष्णु धर्मोत्तिर पुराण में वर्ण व्यवस्था के साथ–साथ आश्रम व्यवस्था का भी वर्णन प्राप्त होता है । यह आश्रम धर्म तीन वर्ग में विभाजित है । पहला ब्रह्मचर्य– इसके अन्तर्गत गुरूकुल में रहकर विद्याध्ययन किया जाता है । 2. गृहस्थ एवं 3. वानप्रस्थ है । ये तीनों आश्रम द्विजातियों के लिये अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, एवं वैश्य के लिये था और विशेष रूप से ब्राह्मणों के लिये है ।

गुरूकुल का विद्यार्थी बनने के पूर्व उपनयन संस्कार होता था एवं ब्रह्मचर्य व्रत की शिक्षा बालक को दी जाती थी । वह मूंज की मेखला पहनता था और मृग या बाघ के चर्म कमर में धारण करता था । पलाश, पीपल या बिल्व का दण्ड हाथ में लेता था । वस्त्र और जनेऊ कपास, रेशम या ऊन के होते थे । सम्भवतः कपास के वस्त्र एवं जनेऊ ब्राह्मण धारण करते थे, क्षत्रिय के लिये रेशम तथा ऊन वैश्य हेतु निर्धारित था । मेखला पहनना आवश्यक था । यज्ञोपवीत संस्कार के पूर्व ब्रह्मचारी अपने केशों का मुण्डन करवा लेता था, तथा यह भी लिखा हुआ है कि इन सब कार्यों के आरम्भ के पूर्व जनार्दन भगवान विष्णु की पूजा अवश्य करें । इसके बाद अध्ययन हेतु गुरू का वरण करें । गुरू उसको ही बनाये जो त्रयविध हो जैसे––

यथोक्तेषु च ऋक्षेषु त्रैविधां कारयेद्गुरूः ।
नैवाधिकारी स्याद्विना त्रैविधकेन तु ।

द्वितीय खण्ड अध्याय–85, श्लोक 28–29 ''

त्रैविध का अर्थ हैं वह विज्ञान जो ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद तीनों वेदों का निष्णात्–– विज्ञान हो । ब्राह्मवेला में अध्ययन अध्यापन कार्य किया जाता था जो सम्भवतः सूर्योदय के बाद भी

एक पहर तक चलता होगा इसके बाद गुरू की आज्ञा से ब्रह्मचारी शिक्षा हेतु जाता था और भिक्षा लाकर गुरू को निवेदन करता था, लेकिन शिक्षा गुरू के कुल में नहीं मांगी जाती थी और शूद्रों के यहाँ भी नही मांगी जाती थी। द्विजातियों के यहाँ मांगी जाती थी।[15] गुरू को अभिवादन करते समय बायें हाँथ से बाँया चरण स्पर्श करते थे और दाँये से दाँया चरण स्पर्श करते थे, और जब दायाँ चरण स्पर्श करें तब अपना नाम भी बता दें--

"गुरोस्तु वामं चरणं वामहस्तेन संस्पृशेत् ।
दक्षिणं दक्षिणे नैव स्वमनाम परिकीर्त कीर्तयेत् ।

द्वितीय खण्ड, अध्याय-86, श्लोक 311

संभवतः यह पद्धति वैष्णव आचार्यो और उनके सम्प्रदाय की थी। इसी का अनुकरण करते हुये वर्तमान में प्रचलित उपनयन पद्धति में ब्रह्मचारी अपने नामोल्लेख पूर्वक अपने गुरू का अभिवादन करता है।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के गुरूकुल आश्रम के इस संविधान का मेल वैदिक गुरूकुलों से नहीं बैठ पाता है क्योकि वहाँ पर विद्यार्थी अध्ययन करने के बाद गाय चराने जाता था गाय चराने के साथ काष्ठ भी लाता था। ऐसे उल्लेख उपनिषद् व ब्राह्मण ग्रन्थो में पाये जाते हैं।[16] प्रातः मध्याहन, सांय तीन काल में अग्निहोत्र किये जाने का विधान सर्वत्र था। वह वैष्णव सम्प्रदाय में भी था। वैदिक परम्परा के गुरूकुलों के आस-पास श्यामभाग, प्रियंगु और शष्टिक (साठी धान) अपने आप बिना जोती इसी जमीन में पैदा होते थे, जिनका चावल गुरूकुल के लोग भोजनोपयोग में लाते थे। अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक मे भी कालिदास ने सांवा चावल की मुठ्ठियाँ हरिण शावक को खिलाये जाने का उल्लेख किया है --

यस्य प्वया व्रणविरोपणभिग्ड.दीनां
तैल न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति
सोडयं न पुत्रकृतकः पद्वी मृगस्ते।

अभिज्ञान शाकुन्तलम्-चतुर्थ अंक-श्लोक 14'

गुरू से पढ़कर भोजन हेतु भिक्षा मांगने की पद्धति वैष्णव सम्प्रदाय की रही है जो महाप्रभु चैतन्य के समय तक यथावत बनी रही । इसका उल्लेख विष्णु धर्मोत्तर पुराण करता है । एक तरह से वैदिक गुरूकुल और वैष्णव गुरूकुल की यह विभेदक रेखा हे । इसका प्रसंग दक्षिण भारत मे विशेष रूप से रहा है ।

ये भी ज्ञातव्य है 20वीं शती के महाराष्ट्री विद्वान वामन शिवराम आम्टे ने भी पिता माता के न रहने पर लड़कपन में 15 वर्ष तक भिक्षा मांगकर विद्या अध्ययन किया था । गुरूकुल के इस ब्रह्मचर्य जीवन का विशेष वर्णन इस पुराण में मिलता है ।

बालक जब जन्म लेता है, वह जब विद्या पढ़ने जाता है तब तक के संस्कारों का उल्लेख है । जन्म के पूर्व गर्भाधान संस्कार । गर्भकाल के छठें या आठवें महीने में सीमन्तोनयन कर्म, जन्म होने के साथ जब तक बाल न काटा जाय, जातकर्म, उसके अनन्तर नामकरण, चूणाकर्म, चूणाकर्म के बाद यज्ञोपवीत फिर गुरूकुल के अध्ययन के लिये जाकर गुरू का वरण करना । इस प्रसंग में उन्होंने नक्षत्रों व तिथियों का भी उल्लेख किया है । मंगल और रिक्तातिथि वर्णित किया है । सीमान्तोंन्नयन क्रम में वैष्णव – मान्य नक्षत्रों को भी प्रशान्त माना है ।[17]

विद्या अध्ययन के बाद विवाह करना चाहिये । ब्राह्मण के लिये 4, क्षत्रिय के लिये 3, वैश्य के लिए 2 शूद्र के लिये 1 भार्या का विधान किया गया है । संम्भवतः ऐसा विधान इसलिये हे कि ब्राह्मण 4 वर्णो, क्षत्रिय 3 वर्णो, वैश्य 2 वर्णो की कन्या का विवाह कर सकता है । व्याह का ऐसा विधान वैष्णव मान्यता की स्वीकृति है । इसे वैदिक मान्यता के रूप मे नहीं मानना चाहिये, क्योकि प्रसिद्ध कवि याज्ञवल्वन्य की पहली पत्नी कात्यायनी थी जो उनके गूरू की कन्या थी । जब जनक की ब्रह्मसभा में तेजस्वी याज्ञवल्क्य की देखकर विदषी गार्गी उनकी ओर आकर्षित हुयी एवं विवाह का प्रस्ताव रखा तो उन्होंने कहा कि ऐसा तभी हो सकता है जब कात्यायनी अनुमति प्रदान करेगी । प्रायः एक भार्या होने का विधान ही वैदिक परम्परा में पाया जाता है । ऐसे अनेक उदाहरण हैं । कहीं – कहीं इसका अपवाद हैं जहाँ ऋषि की दो भार्या है, लेकिन मध्यकाल

तक यह प्रभाव उत्तर भारत तक हो गया था और ऐसा पाया जाता है कि सम्पन्न ब्राह्मणों की शूद्रा पत्नियाँ तो होती हीं थीं, जैसा कि वाण के पिता चित्रभानु का उदाहरण है, लेकिन उनकी संताने ब्राह्मण ही मानी जाती थीं । 10 वीं शती केपश्चात् उनकी उपेक्षा की गयी और स्मृति ग्रन्थों में इस सामाजिक परिस्थिति को लेकर नये-नये नियम जोड़े गये । भोजन के संबन्ध में कुछ विशिष्ट निर्देश इस पुराण में दिये गये हैं और वह तृतीय खण्ड के हंसगीता अध्याय 230 मे है । पुराणकार ने उस समाज के उन व्यक्तियों की सूची दी है जिनका अन्न नहीं, खाना चाहिये । ऐसे सूची स्मृतियों व अन्य ग्रन्थों में भी है और इस सूची मे कुछ विशेष नाम है जो हमारा ध्यान वैष्णव परम्परा की ओर आकर्षित करते है । ये विशेष नाम है जिनका अन्न नहीं खाना चाहिये-- नपुंसक, अभिन्य करने वाला नट, चिकित्साजीवी अथवा वैद्य जो राजा की निन्दा करे, आयुधजीवी, जो शूद्र के यहाँ यज्ञ करावे तथा जो कपड़ा बुनते व सिलते हों, नापित ।[18] जिस भोजन में केश, कीट पड़े हो, पत्नी, द्वारा जूठा हो ऐसा अन्न नहीं खाना चाहिये । उन्होंने देखा कि अगर भोजन बासी हो जाय तो उसे घी या तेल में पका कर खाया जा सकता है । गुहूँ जौ की रोटी वासी होने पर ऐसे भी खायी जा सकती है । बकरी, गाय व भैंस को छोड़कर दूसरे का दूध नहीं पीना चाहिये । गाय का बच्चा मर जाय तो उसका भी दूध नहीं खाना चाहिये । लहसुन, गाजर, प्याज नहीं खाना चाहिये ।

यद्यपि पुराण कार ने मांस न खाने की प्रसंशा की है और ये कहा गया हे कि मांस न खाने वाला स्वर्ग जाने की योग्यता रखता है जो ब्राह्मण मांस खाता हे नरक जाता है, लेकिन पवित्रता का यह आख्यसान करने के साथ ही उन्होंने कुछ पक्षियों व प्राणियों का मांस खाने का भी विधान किया है । जिन पक्षियों का मांस खाया जा सकता है वे हैं-- कपिजल, तीतर, मोर, लावक (बटेर, लावक); पक्षियों में इन्हें खाया जा सकता है, शेष को नहीं । इसके अतिरिक्त शशक, शल्यक (साही), गोह, खड्ग (गैंडा), कछुआ, पांच नख वाले प्राणियों को भी खा सकते हैं, लेकिन उनमें उनको न खाये जो दोनों जबड़ों से खाते हैं और जो एक शपा हों ।[19]

2. धर्म सर्वोपरि है

विष्णु धर्मोत्तर पुराण ने धर्म को सबसे ऊपर माना है । इस धर्म की रक्षा का भार

भगवान कृष्ण के ऊपर है जो इस सारी सृष्टि की रचना व पालन करने वाले हैं, अगर धर्म की हानि होने लगती है तो वे अवतार लेकर धर्म की रक्षा करते हैं, । यह सृष्टि धर्म के लिये ही है । गीता का प्रसिद्ध श्लोक .–

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ।।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ।।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराराणां हिमालयः ।।

इस श्लोक को यहाँ पर विष्णु धर्मोत्तर पुराण प्रथम खण्ड अध्याय 38 के आचार्य शुक्र शाल दैत्य से कहते हैं, प्रसंग यह है कि भगवान पिनाकी शिव के आदेश से भागर्वकुल उत्पन्न राम (परशुराम) तुम असुरों का विध्वंस करने आये हैं । वे विष्णु के अवतार थे और तुम इनसे पार रहीं पा सकोगे और इस प्रसंग में आचार्य शुक्र ने गीता के इस प्रसिद्ध श्लोक को दानव पर्वगाल को संबोधित किया है । उसके साथ ही वे कहते हैं कि विष्णु कभी दैत्यों, कभी पशुओं, कभी मनुष्य, कभी दूसरी योनियों में भी धर्म की रक्षा हेतु अवतरित होते हैं । इसलिये यह मेरा परामर्श है कि तुम लोग इन्द्र से अब सन्धिकर लो पर असुर तैयार नहीं हुये और युद्ध में लगे रहे और परशुराम द्वारा मारे जाते हैं । इसी प्रसंग में समुद्र मंथन की कथा भी कही गयी है । जब लक्ष्मी समुद्र मंथन में निकली तो उन्होंने भगवान विष्णु का वरण किया । उसी खण्ड के अध्याय में विष्णु और लक्ष्मी को सारी सृष्टि में व्याप्त बताया गया है ।[20] पुराणकार लिखते हैं––

लक्ष्मी पुराण पुरुष की प्रकृति हैं । उनसे कभी अलग नहीं होती हैं । इनके अनेक रूप सृष्टि में व्याप्त हैं और वे विष्णु और लक्ष्मी के प्रतिबिम्ब हैं जैसे शंकर पुरुष पार्वती प्रकृति । इन्द्र पुरुष शची प्रकृति, अग्नि पुरूष स्वाहा प्रकृति, वरूण पुरूष गौरी प्रकृति है ।

वायुश्र पुरुषोज्ञेयः प्रकृतिश्च तथा शिवा ।।
पुरुषश्र धर्म वृक्षस्तद्विश्र प्रकृतिः स्मृता ।। 6 ।।

प्रथम खण्ड,, अध्याय 41 श्लोक–6

अर्थात यह समस्त विश्व धर्म रूपी पुरुष वृक्ष की प्रकृति है, और इसी में सब समाहित है, धर्म ही सर्वोपरि है । विश्व की समस्त सम्पत्तियाँ धर्म रूपी विश्व की प्रकृति है ।[13]

इसके आगे उन्होनें पुरुष और प्रकृति के विस्तार में और भी नाम गिनाये हैं–चन्द्रमा पुरुष ज्योत्सनाप्रकृति है । यक्ष पुरुष दक्षिणा प्रकृति, दिवस् पुरुष रात प्रकृति, आकाश पुरुष पृथ्वी प्रकृति इस प्रकार विष्णु रूपी पुरुष एवं लक्ष्मी रूपी प्रकृति समस्त विश्व में ओत प्रोत है । कांति, धृति, श्री, प्रभा, निद्रा, शुभा, वाणि, सरस्वती, रति, प्रति, सितियों, गगा, तुष्टि, पुष्टि,, सुधा, मेधा, बृहस्पति सब कुछ लक्ष्मी रूपी प्रकृति का विस्तार है । इस तरह धर्म ही सर्वोपरि विराजमान है । प्रकृति की उपेक्षा करने पर हम विनष्ट हो सकते हैं । धर्म की यह सर्वोपरि स्थिति वेदांग और स्मृति ग्रन्थों में भी कही गयी है, लेकिन विष्णु धर्मोत्तर पुराण में उसे विष्णु और लक्ष्मी के ही आश्रित कर दिया है, यह विशेष बात है । मनुस्मृति में कहा गया है कि वेद धर्म का मूल है, स्मृतियाँ उससे ही प्रकट हुयी हैं । स्कृति और सदाचार आत्मा की संतुष्टि ये धर्म के मूल स्रोत है । यह कहा गया है कि मन ने धर्म के सम्बन्ध में जो कहा वह वेद में कहा जा चुका है । अतः वेद को ही धर्म शास्त्र समझना चाहिये और श्रुति तथा स्मृति मे कहे गये धर्म का पालन करता है । वह सुख और यश दोनों प्राप्त करता है । इसीलिये धर्म के चार स्तम्भ है वेद, स्मृति, सज्जनों का आचरण और आत्मा की संतुष्टि ।[21]

3. धर्म युद्ध

संग्राम धर्म की रक्षा के लिये किये जाते हैं और संग्राम करने तथा उसमें विजय प्राप्त करने हेतु धर्म की रीति व धर्म की शक्ति का सहारा लिया जाता है । प्रथम खण्ड के अध्याय 41 में शुक्राचार्य ने कहा है विष्णु धर्म की रक्षा के लिये अवतार लेते हैं । जब धर्म की ग्लानि होने लगती

है तो अधर्मो का विनाश करके धर्म की रक्षा करते हैं । इसके साथ ही युद्ध में विजय प्राप्त हेतु राजा को धर्म की रीति व शक्ति का सहारा लेना चाहिये ।

युद्ध की यात्रा के लिये दो बातें विशेष रूप से कही गयी हैं, एक तो यात्रा काल का निर्णय, दूसरा यात्रा काल में की जाने वाली शस्त्र की पूजायें । यात्रा काल के निर्णय के संबंध में द्वितीय खण्ड अध्याय 175 में बहुत विस्तार से कहा गया है । इसमें ज्योतिष के अनुसार शूद्रों की स्थिति का विशेष वर्णन किया गया है । नक्षत्रों, तिथियों, तिथि, नक्षत्र और दिन के संयोग की बातें विस्तार से की गयी हैं । इसके पूर्व अध्याय 164 से 174 तक ज्योतिष शास्त्र का ही वर्णन है । पुराणकार ने नक्षत्रों का दिनचर्या के अनुसार, कष्टकर दिन के अनुसार इनके संयोग बताकर यात्रा का मुहुर्त निदिष्ट किया है । बृहस्पति, शुक्र और बुद्धवार को प्रत्येक दिशा में यात्रा करने की बात कही है । उस प्रसंग में एक बात याद रखनी चाहिये कि भगवान राम जब लंका पर चढ़ाई कर रहे थे, तब हनुमान ने उनसे पूछा कि भगवान आप सैनिकों को युद्ध की आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करने का उचित मुहुर्त बताकर सेना प्रस्थान करने की आज्ञा दीजिये तब राम ने सुग्रीव को आदेश दिया कि आज उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र का हस्त होगा --इस समय सूर्य मध्यान्ह में है यह विजय नामक मुहुर्त होगा उस मुहुर्त में ही तुम विजय के लिये सेना का प्रयास करा दो ।[21] राम के समय से विष्णु धर्मोत्तर पुराण में ज्योतिष की मान्यताओं का विस्तार बहुत हो गया ।

युद्ध के समय शकुन देने वाली शुभ वस्तुओं का वर्णन किया गया हैं । उससे सांस्कृतिक रूचि का परिचय मिलता है ।[23] यहाँ पर अमंगल के विनाश के लिये मधुसूदन की पूजा का विधान किया गया है । शुभ सूचक शकुन है-- सफेद फूल, भरा जल कुम्भ, कमल, मछली, गायें, हाथी, हवन की जलती हुयी आग, ब्राह्मण, देव, गायिका, सोना, फल, चित्र में लिखी नदियाँ, शवयात्रा जिसमें रोदन न हो रहा हो । इस प्रसंग में नरसिंहावतार की पूजा करने की बात विशेष रूप से कही गयी है । सैनिकों को यह बात कह कर उत्साहित करना चाहिये । उसमें सैनिकों को नाम व गोत्र भी लेना चाहिये । युद्ध में विजय हो गयी तो नाना भागों की प्राप्ति होगी । वीरगति पाते हैं तो स्वर्ग मिलेगा । उस समय विजय के लिये दिखायी पड़ने वाले शगुनों का वर्णन करना चाहिये ।[24]

युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात राजा को धार्मिक आचार्यो का पालन करना चाहिये । उसे कुल स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये, भले ही वे शत्रु की स्त्रियाँ हों । उनके सतीत्व को दूषित नहीं करना चाहिये अन्यथा संसार में घोर शंकर वर्ण हो जायेगा । शत्रु के देशै में परम्परा से प्राप्त जो आचार हो उसका पालन करना चाहिये । पुत्रविहीन स्त्रियों का पालन भी राजा को करना चाहिये शत्रु के देश में हारे हुये शत्रु के प्रति भी अपमान जनक व्यवहार नहीं करना चाहिये । इस प्रकार धर्म से पृथ्वी को प्राप्त करके राजा ब्राह्मणों की मंत्रणा से उसके शासन का संचालन करें ।[25]

4. **स्त्री धर्म और स्त्री की प्रकृति :–**

विष्णु धर्मोत्तर पुराण स्त्रियों के संबन्ध में बहुत उदार नहीं है और यह अनुदारता पूरे वैदिक धर्म की है । हंसगीता तृतीय खण्ड अध्याय 322 में हंस और ऋषियों के संवाद में स्त्री धर्म के बारे में वो बातें नहीं कहीं गयी है जो वैष्णव धर्म संवृत है । संवाद के अंत में कहा गया है कि नारी की गति पति ही है । अपने पति से स्वतन्त्र होना नारी के लिये परम पाप है । जो नारी सदा अपने पति के अधीन रहती है, स्वतन्त्र भावना से रहित रहती है वह चिरकाल के लिये स्वर्ग में निवास प्राप्त करती है ।[26] इससे अतिरिक्त जो बाते स्त्री धर्म के बारे में कही गयी है उस प्रकार हंस ने ऋषियों से कहा कि विवाह में ही बन्धुओं द्वारा स्त्रीधर्म की प्रतिष्ठा कर दी जाती है वह अग्नि के समीप अपने पति की सह धर्म चारिणी बता दी जाती है । वह अपने सुन्दर स्वभाव, मन, शारीरिक सौष्ठव सोन्दर्य से सुमुखी होकर अनन्य चित्तसे पति की धर्मचारिणी बन कर सदैव पति का मुख देखती रहे । पति अगर कठोर वचन भी कहे, अपनी क्रूर आँखों से भी देखे तब भी वह प्रसन्न मुख रहे । कोई पुरुष चन्द्रमा और सूर्य के समान दिखायी पड़े तब भी स्त्री को अपने पति को छोड़कर उसे नहीं देखना चाहिये । पति दरिद्र हो व्याधि से ग्रस्त हो, दीन हो, पीड़ित हो, दैव पीड़ित हो, तब भी वह पुत्र के समान पति की रक्षा में लगी रहे । उसे काम, भाग, ऐश्वर्य, सुख में इचछा न रख के पति की सेवा में इच्छा रखनी चाहिये ।[27]

आगे नारी के गृहस्थ धर्म के संबन्ध में भी पुराणकार लिखते हैं । वह घर में रहकर अग्निहोत्र, वैश्यदेव देवता, आतिथ्य और सेवकों के पूजन भोजन का ध्यान रखती हुयी यथा न्याय

पूर्वक सभी को प्रसन्त कर तब भोजन करे । सास, ससुर की सेवा करे । इसके साथ सभी ब्राह्मणों, दुर्बलों, अनाथों, दीनों, कृपणों, का भी ध्यान रखे । नारी के लिये यही पुण्य है, हर्ष है, सनातन स्वर्ग है । स्त्री के लिये धर्म ही देवता है, बंधु है, परम भाग्य है ।

* पतिर्हि देवो नरीनां पतिर्बन्धु· पतिर्गतिः ।।
  पत्या गतिः समा नास्ति दैवतं वा यथा पतिः ।।2।।

तृतीय खण्ड, अध्याय 312 श्लोक – 21

द्वितीय खण्ड अध्याय 87 में पुराणकार ने यह व्यवस्था भी दी है – पति नष्ट हो जाय, गायब हो जाय, चला जाय, मर जाय, सन्यासी हो जाय, नपुसक हो अथवा पति से पतित हो जाय वह स्त्री पति विहीन हो जाती है । ऐसी आपत अवस्था में वह दूसरा पति वरण कर सकती है । पति के न रहने पर वह देवर से शादी, कर सकती है । देवर के अभाव में जिससे इच्छा हो उससे शादी कर सकती है । एक गोत्र में शादी नहीं की जानी चाहिये । उन्होंने स्त्रियों के आठ प्रकार के विवाह की चर्चा की है – (1) ब्राह्मण विवाह (2) दैव विवाह (3) आर्ष विवाह (4) प्राजापत्य विवाह । ये चार विवाह धर्म सम्मत माने गये हैं । चार अधार्मिक माने गये हैं – (5) आसुर विवाह (6) गांधर्व विवाह (7) राक्षस विवाह (8) पैशाच विवाह । इन विवाहों के लक्षण इनके नाम के अनुसार हैं । [28]

कन्या के बेचे जाने की बड़ी निन्दा की गयी है, और एक बार कन्यादान करने के बाद फिर उसका पिता किसी दूसरे को नहीं दे सकता । जो कन्या या केश का विक्रय करते हैं वह अनेक प्रकार के नरकों में जाते हैं ।

स्त्री के स्वभाव अथवा प्रकृति के संबन्ध में भी कुछ महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ पुराणकार ने की है । यह टिप्पणी तृतीय खण्ड के अध्याय 225 में अष्टावक्र और दिग् के संवाद में है । दिग् एक वृद्धा रूपवती स्त्री है जो कामासक्त होकर अष्टावक्र के पास पहुँच जाती है । अष्टावक्र ने उसे डाँटा और कहा मैं ब्रह्मणचारी हूँ, परदादारविवर्जक हूँ । मेरी यह. अवज्ञा तुमने कैसे की, जो यह बात लेकर मेरे पास आयी । तुम क्या करना चाहती हो । अष्टावक्र के ऐसा कहने पर दिग् स्त्री ने कहा

देखो आपके महात्मा गुरू ने मुझे आपके पास, आपको स्त्रियों का शील बताने के लिये भेजा है, और इस बहाने आपके पास आकर स्त्रियों के शील का उपदेश कर रही हूँ, सावधान होकर सुनिये। स्त्रियों का स्वभाव बड़ा चंचल होता है, वे न केवल तारुण्य अवस्था मे कामासक्त होती है, वृद्धावस्था में भी कामासवक्त होती हैं स्त्रियों की प्रकृति है कि वे अवस्था, सौन्दर्य, महानकुल, विद्वता, उदारता या शील द्वेष और धन अथवा पराक्रम मे अनुराग नही रखती वे कामभावना से ही पुरुष से प्रकम करती अनुराग नहीं रखती वे कामभावना से ही पुरुष से प्रेम करती हैं। वो कुबड़े और वामन से भी कामभाव से आसक्त होकर अनुराग कर सकती है। अग्नि काठ से कभी तृप्त नहीं होता। नदियाँ सारी समुद्र में समा जाती है किन्तु तृप्त नहीं होता। इसी प्रकार स्त्रियों के कामभाव की कोई सीमा नहीं है। स्त्रियाँ खिलवाड़ मे ही कुल का नाश कर देती हैं। धर्म को जानने वाले ऋषिवर द्वारा स्त्रियों के सतीत्व का गुणगान जिस प्रकार किया जाता है वह यह है कि वह यह है कि यदि एकांत नही है, समय नही है, उन्हें कोई चाहने वाला नहीं है तब वह सती बनी है।[29]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण की स्त्रियों के संबन्ध में यह टिप्पणी संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचायक है। "मनुस्मृति में लिखा गया है कि--

यत्र नार्यस्तु पूजन्ते रमन्ते तत्र देवता।

जो बात पुराणकार ने स्त्रियों के संबन्ध में लिखी है, पुरुष की प्रकृति के संबन्ध में भी यही बात कहीं जा सकती है। समाज में लोग बुरे और अच्छे दोनों होते हैं, लेकिन महान चरित्र के लोग भी होते हैं जो स्त्रियों में भी होता है, और पुरुष में भी। गर्हित चरित्र होना केवल स्त्रियों का स्वभाव नहीं है। पुराणकार का स्त्री के संबन्ध में ऐसा लिखना विचारणीय है, और यह ऐतिहासिक बात है कि वैष्णव लोग स्त्रियों के संबन्ध में बहुत ही संकीर्ण मनोवृत्ति वाले थे और राम की कथा के संबंध में जो यह प्रश्नवाचक चिन्ह लगाया जाता है कि राम ने सीता को द्वितीय वनवास नहीं दिया था, लेकिन जब राम को विष्णु अवतार माना जाने लगा तब सीता के द्वितीय वनवास की कल्पना वैष्णव आचार्यो ने की। ऐसा न होने पर राम को विष्णु के अवतार की कोटि में नहीं रखा जा सकता है।

आगे पुराणकार ने जीवन के लिये स्त्री की अधीनतापन का उल्लेख करते हुये कहा । ऋषिवर यह जानकारी स्त्रियों से घृणा न करो, स्त्रियाँ ही धर्म अर्थ और काम का मूल है । देखो-- जैसे लोक में अग्नि, अन्न जल मनुष्य के जीवन का कारण है, लेकिन ये मनुष्य के मारक भी हो सकते है । यह समझते हुये प्रज्ञापूर्वक उग्रता और मृदुता दोनों से दूर रहकर गृह के कार्यो में स्त्रियां को संसप्त बनाये रखना चाहिये । उनका विश्वास नहीं करना चाहिये यह विचित्र बात है । स्त्रियाँ अनर्थ का कारण हैं तथा दूसारी ओर धर्म, अर्थ और काम की साधिका भी है । अष्टावक्र को यह सुनकार स्त्रियों के चरित्र के संबन्ध में ज्ञान हो गया । वस्तुतः यह माना जाना चाहिये कि वैष्णव समाज में स्त्रीपूजा का स्थान नहीं था ।

5. **पाप और पुण्य की मीमांसा** :-

धर्म और संस्कृति के विवेचन में पाप और पुण्य की मीमांसा बहुत ही महत्वपूर्ण पक्ष है । यह बड़ी बात है कि संसार में जहाँ कोई एक आचरण पुण्य का विषय माना जाता है वहीं दूसरे धर्म में पाप का पक्ष हो जाता है । समान रूप से पुराणों में जिससे दूसरे को सुख प्राप्त हो वह पुण्य का विषय हो, जिससे दूसरे को पीड़ा हो वह पाप का विषय है । विष्णु धर्मोत्तर पुराण वैष्णव मान्यता का पुराण है, इसमें दूसरे के सुख और हित का बहुत ध्यान रखा गया है । वृक्ष लगाना, उनका संवर्द्धन करना पाथों की सेवा के लिये प्रपा की व्यवस्था करना, आदि बातों का पुराण बहुत ही गुणगान करता है । ये सब पुण्य के विषय हैं जो आर्त हो माया ग्रसित हो उसकी रक्षा करना भी पुण्य का काम होता है ।अनुकम्पा, दया, दायव्य आदि पुण्य के ही विषय हैं, जो आर्त हो भयग्रसित हो उसकी रक्षा करना भी पुण्य का काम होता है ।

पुराण में पाप की सूची का लम्बा विस्तार है और यह सूची नरक वर्णन के प्रसंग में देखने को मिलती है । द्वितीय खण्ड के अध्याय 111 से लेकर 124 वे अध्याय तक ऐसी बातों का विस्तार से वर्णन है । महत्वपूर्ण बात यह है कि आज राष्ट्र के कर्णधारों के लिये वन की रक्षा और प्रदूषण का विषय बहुत ही चिंता का कारण बना है । इस विषय में विष्णु धर्मोत्तर पुराण ने आज से एक हजार वर्ष पहले ही अपनी चिंता व्यक्त कर दी थी । वृक्षों के विनाश और नदियों के

प्रदूषण को पाप का विषय कहा गया है, उसको करने वाले नरकगामी होंगे। यद्यपि सारी बात नरक के संबन्ध में कही जाती है। उनका आंतरिक विश्लेषण वही है जो आज किया जा रहा है। पुराणकार विश्लेषण वही है जो आज किया जा रहा है। पुराणकार लिखता है कि जो वृक्षो का अकारण काटता हे वह पचास वर्ष तक नर्क में रहता है। गुल्य, वल्ली, लताओं को काटने वाला दस वर्ष तक नर्क में रहता है। पक्षियों को मारने वाला भी ऐसे ही नरक प्राप्त करता है, जो पुस्तक चुराता है एक हजार वर्ष तक नर्क प्राप्त करता है। जो खेत की फसलों का नाश करता है वह भी नर्क जाता है, जो घरों और वनों को जलाता है ऐसा नास्तिक एक कल्प तक नरक में रहता है।[30] देवता, बाह्मण, शास्त्र वेद की जो निंदा करता है, जो यज्ञ का ध्वंश करता है ये सब नकरगामी होते हैं और ये सभी कार्य पाप के विषय हैं।

वृथा पशुओं को मारने वाला कई वर्ष तक नरक भोगता है। जो थोड़ा सा भी धन दूसरे के धन से चुराता है वह पाप भागी होकर नरक में जाता है, जो गुरू और ब्राह्मण को पीड़ा पहुँचाता है वह सौ वर्ष तक नरक में जाता है। जिस राजा के राज्य में ऐसा होता है वह एक कल्प तक नरक में रहता है। इस प्रकार पाप पुण्य के इस विवेचन में राजा का दायित्व महत्वपूर्ण हैं। सभा का सभ्य (सदस्य) अर्थात् पंचायत का सदस्य अगर पक्षपात करे तो वह भी एक कल्प तक नर्क में रहता है। आगे लिखते हैं कि ब्राह्मण और शूद्रक का रक्त अगर पृथ्वी पर टपक पड़े और वह धूल के जितने कणों को अपने में समेट ले, उनको मारने वाला उतने हजार वर्षों तक नर्क में रहता है।[31]

पाप पुण्य के इस विवेचन में नर्क का बड़ा ही भयावह वर्णन पुराणकार ने किया है। उस नर्क में पहुँचने का मार्ग भी दुर्गम है, यह जलता हुआ है। कंटकों से भरा है तथा नाना प्रकार की विपत्तियाँ मिलती हैं। भयावह जीव मुख खोले खड़े हैं। इस प्रसंग को लेकर पुराणकार पाप पुण्य की व्याख्या करता है। ऐसे पुण्य कर्मों की सूची जिनकों करने से यमपुरी में जाते समय कोई कष्ट नहीं होता। ये कार्य हमारे धर्म की हजारों मान्यताओं और सांस्कृतिक आचारों की व्याख्या करते हैं जैसे-- सपिण्डी श्राद्ध हो जाता है वह प्रेतत्व से मुक्त होकर एक वर्ष में यमपुरी पहुँच जाता है

और जिसका नहीं होता है वह प्रेत बनकर टहलता रहता है, भटकता रहता है, परेशान होता है। इस प्रकार अपने कर्मों से सपिण्डी के बाद नर्क या स्वर्ग की ओर पहुँचता है और अपने कर्म के अनुसार निश्चित समय तक वहाँ रहता है। जिन्होंने अनेक यज्ञों के द्वारा देवताओं को प्रसन्न किया है, भगवान विष्णु को प्रसन्न किया है अथवा जिन्होंने सम्मुख युद्ध में वीरगति प्राप्त की है वे प्रेतलोक में नहीं जाते हैं और न श्मशान के देवता उन्हें अपने वश में कर सकते हैं।[32] विष्णु धर्मोत्तर पुराण की यह बात महाभारत के इस कथन से मेल रखती है --

द्वाविभौ पुरुषौ लोके सूर्यमंडलभे दिनौ ।
समाधौ योगयुक्तश्च रशो चाभिमुखेहतः ।।

अर्थात दो प्रकार के पुण्य ही सूर्यमण्डल को भेद कर उस परमपद ब्रह्मलोक में पहुँचते हैं। जिन्होंने समाधि में स्थित होकर प्राण त्यागे है या जिन्होंने सम्मुख युद्ध में वीरगति प्राप्त की है।

इस संसार में जो वृक्ष लगाते हैं उनको यमपुर में भी सुखदायी भवन में रहने को मिलता है और ऐसे मार्ग से यम डर जाते हैं। जिस मार्ग में फल लगे रहते हैं और फूल खिले रहते हैं, जो देव स्थानों में देव वृक्षों के मूल में सांयकाल द्वीप प्रज्जवलित करते हैं, वे प्रकाश युक्त मार्ग से उस लोक में जाते हैं। यम के सिपाहीं भी उनकी पूजा करते है और उन्हे भी भय नहीं होता है अतः वृक्ष लगाना, सांयकाल दीप जलाना, इन कार्यों को पुण्य का कार्य मानना चाहिये।[33] जो प्रपा की स्थापना करते हैं, बगीचा लगाते है, तालाब और कूप निर्माण करवाते हें, कन्याओं का विवाह करवाते हैं, गायों की सेवा करते हैं, दूसरों को धन देते हैं। पूज्यों की पूजा करते हैं, वेद का स्वाध्याय करते हैं, वृद्धों की सेवा करते हैं, शरणागत की रक्षा करते हैं, धर्म की बातें सुनते हैं, यज्ञ करते हैं, शास्त्रों की रक्षा करते हैं, विपत्ति में पीड़ित की रक्षा करते हैं, प्राणियों को पीड़ा नहीं देते हैं, दलिद्रों की सहायता करते हैं, जो यौवनावस्था में भी संयमित चिन्त रहते हैं, अपने पितरों का श्राद्ध करते हैं, ये सभी लोग मृत्यु के अनन्तर स्वर्ग प्राप्त करते हैं।[34] इस प्रसंग में जिन कर्मों की प्रशंसा की गई है ये सभी पुण्य के कार्य हैं, उसी प्रकार नरक के वर्णन में पाप

कर्मों की सूची है जैसे –– जो व्यवहार में पक्षपात करते हैं, परिजनों के सामने अकेले मिष्ठान खाते हैं, बिना किसी की आज्ञा के अकेले भोजन करते हैं, नौकरों के साथ ठगहारी करते हैं, शरण में आये हुये को ठगते हैं जो कृतघ्न होते हैं, जो मित्रों के साथ दूसरों का आचरण करते है, पानी पीती हुयी गायों को जो भगाते हैं, पाप को प्रोत्साहन देते हैं, जो शरणागत और ऋत्वकों को, यज्ञ करने वालों को, गुरूओं को उपेक्षित करते हैं, शास्त्र की उपेक्षा करते हैं तथा बालक, अतिथि विप्र और देव को पहले भोजन न कराके स्वयं ही खाना चाहते हैं, गुरू की निंदा करते हें ये सब नरक जाते हैं। स्वामी, मित्र के साथ द्रोह करने वाले, राजा ब्राह्मण गाय का द्रोह करने वाले, चुगलखोर, सोम विक्रता आत्मविक्रेता अपने कुल में उत्पन्न सपिण्डों का जो श्राद्ध नहीं करते हैं ये सभी नरक जाते हैं। इस तरह इस सूची का जो दूसरा पक्ष है वह पुण्य का पक्ष है और हमारी संस्कृति का पक्ष है।[35]

6. <u>वेदोत्पत्ति</u> :–

वेद तीन हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद। यह बहुत ही प्रसिद्ध बात है कि ऋग्वेद में ऋचायें हैं, यजुर्वेद में यज्ञ के गद्यात्मक सूक्त और सामवेद में यज्ञ के समय गाये जाने वाले मंत्र हैं वेद के लिये त्रयी शब्द का प्रयोग होता है। सातवीं शदी में बाण ने भी कादम्बरी में–त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः। ब्रह्म के लिये त्रयी शब्द का प्रयोग तीन वेदों के ज्ञान के संबन्ध में किया है। ऋषि द्वारा रचित अथर्ववेद को चौथा वेद कहा गया। उसमें मानव जीवन के हिंतकारी रक्षाकारक, स्वास्थ्य वर्द्धक ज्ञान की अनेक बाते कही गयी हैं। सामाजिक चिंतन के भी कई पक्ष हैं। एकतरह से यह विश्वकोष है। इसको इस गरिमा के कारण चौथा वेद कहा गया। महाभारत को पॉचवॉं वेद कहा जाता है, लेकिन वेद की वास्तविक संख्या त्रयी ही है।[36] विष्णु धमोत्तर पुराण में ब्रह्मा कें चार मुखों से चार वेदों के उत्पन्न होने की बात कही जाती है पूर्व के मुख से ऋग्वेद, दक्षिण से यजुर्वेद, पश्चिम के मुख से सामवेद और उत्तर के मुख से अथर्ववेद प्रकट हुआ। यह बात देवराज इन्द्र ब्रह्मा की स्तुति में कह रहे हैं।[37] ब्रह्मा के स्वरूप वर्णन में मार्कण्डेय ऋषि भी यही बात कहते है प्रथम खण्ड, अध्याय 27, श्लोक– 1–3। अर्थात––विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार

ब्रह्मा के चार मुखों से चार वेदों की सृष्टि हुयी । पुराण की यह मान्यता वेदों की त्रयी मान्यता से अर्वाचीन है । इसलिये यह मानना पड़ेगा कि इस पुराण की रचना एक हजार ई0 के आस पास हुयी ।

(क) **क्षत्रिय- ब्राह्मण विरोध :-**

हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि वैष्णव पुराण और वैष्णव मान्यताओं के अनुसार वैष्णव धर्म के दो ही स्थायी स्तम्भ हैं । ब्राह्मण और राजन्य । ब्राह्मण और क्षत्रिय की एकता वैष्णव धर्म का मूल मंत्र है । ब्राह्मण की मंत्रणा से क्षत्रिय पृथ्वी का शासन करें । उनकी यही सनातन मान्यता है. लेकिन भगवान परशुराम ने क्षत्रियों का संहार किया, इतिहास की यह कहानी वैष्णव मान्यता में अन्तर्विरोध पैदाकर रही थी । उसके निराकरण के लिये क्षत्रियों के आश्रित वैष्णवों ने समय-समय पर साहित्य में अपने कल्पना मिश्रित संदर्भ जोड़े हैं । एक तो यह बहुत प्रसिद्ध बात है कि परशुराम का वैष्णव तेज राम के मुख में सभा गया था ।[38] भवभूति में महावीर चरित् नाटक में परशुराम के ब्राह्मणत्व को खुल धिक्कारा है और उनके शस्त्र ग्रहण को महान पाप कहा है, लेकिन ऐसा लगता है कि भवभूति ने महावीर चरित् में जो कुछ लिखा उसका ब्राह्मण पर विपरीत प्रभाव पड़ा । अतः इसे सुधारने को प्रयत्न बाद के वैष्णव आचार्यों ने किया होगा । उसकी एक झांकी विष्णु धर्मोत्तर पुराण में भी है, वो इस प्रकार से है देवराज इन्द्र ब्रह्मा से निवेदन करते हैं कि हे ! सृष्टि संहार कारण देव देवेश वेदमूर्ति प्रजापति स्वामी आपको मालूम होना चाहिये कि आपके तेज के प्रभाव से मैंने युद्ध में जिन दैत्यों को मार डाला था वे पृथ्वी में क्षत्रिय बन कर उत्पन्न हो गये है और पृथ्वी को पीड़ित कर रहे हैं । उनके इस महान मार से खिन्न हुयी पृथ्वी आपके पास आयी है, उसकी रक्षा कीजिये । ब्रह्मा ने पृथ्वी, इन्द्र, गुरु, वृहस्पति सब की पूजा की और कहा आप लोग देवों के देवता शंकर जी के पास जाइये, वे क्षत्रियों के वध का उपाय बतायेंगे ।[39]

आगे के प्रसंग में भगवान परशुराम के अवतार की कथा कही गयी है, जिन्होंने अवतरित होकर दैत्यों क्षत्रियों का वध किया । कार्तवीर अर्जुन को मारा । यह कहानी कई अध्यायों में

पुराणकार कहता है। उसे कहने की आवश्यकता नहीं। मूल मानना यह है कि परशुराम ने जिन क्षत्रियों को मारा वह क्षत्रिय नहीं वैष्णव दैत्य थे, अतः क्षत्रिय ब्राह्मण विरोध उचित नहीं है। आगे कहानी लम्बी है। तात्पर्य इसका यह है सूर्य ने परशुराम के रूप में अवतार लिया है तथा कार्तवीर क्षत्रियों का संहार किया। सूर्य विष्णु के ही रूप हैं।

7. यज्ञ :–

भारतीय संस्कृति और धर्म का प्रमुख अभिज्ञान यज्ञ है। वैदिक परम्परा में यज्ञ सामान्य क्रिया कलाप नहीं है। वैदिक यज्ञ मीमांसा, यज्ञ का आयोजन यज्ञ की सूक्ष्म क्रियायें किसी वैज्ञानिक पद्धति पर है, जिनके अनुसार यज्ञ करने पर उनका वैसा ही फल प्राप्त होता है। यजुर्वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ के वैज्ञानिक क्रिया–कलाप का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वैसा सूक्ष्म विवेचन नहीं है, पर यज्ञ के क्रिया–कलाप को किस प्रकार से पवित्रता से सम्पन्न किया जाय, स्थान, व्यक्ति और वस्तु की पवित्रताओं का समग्र निर्देश किया गया है। यह बातें प्रथम खण्ड के शंकर गीता के अध्यायों में है। यह अध्याय 59 से 65 तक कहे गये हैं। नक्षत्र तिथियों का विवेचन किया गया है। यज्ञ के क्रिया–कलाप का सूक्ष्म विवेचन इसमें नहीं है। इसे सुकृत कार्य कहा है, अर्थात् पुण्य का कार्य कहा है।

यज्ञ के इस प्रसंग में स्थान, वस्त्र, माला, भोजन, छत्र, चामर, दर्पण, यान, वाहन, पताका, ध्वज और अन्य योग वस्तुओं के विधान की बात कही गयी है। ये कहा गया है कि यदि पशु याग न किया जाय तो मधु पर्क से अर्चना की जानी चाहिये।[40] अग्नि का आमंत्रण, विश्वेदेव पूजन, यज्ञ काल का अनुसंधान, अग्नि के आसन आदि का निर्देश भी किया गया है। यह निषेध किया गया है कि कलश और अग्नि के आसन का शांकार्य न किया जाय।[41]

8. ब्राह्मण का सम्मान :–

वैसे वैष्णव धर्म में ब्राह्मण का महत्व राजन (क्षत्रिय) के समानान्तर है, लेकिन सिद्धान्त रूप में ब्राह्मण राजा से भी ऊपर है। उसकी आज्ञा राजा टाल नहीं सकता। इसके साथ ही

ब्राह्मण के जीवन की ऊँची विशेषताओं का अनुशासन भी है । वेद का स्वाध्याय, यजन, संस्कारों की रक्षा एवं विद्या की परम्परा, गुरुकुलों का सातत्व जीवन ब्राह्मण का महान् उत्तरदायित्व है । इसके लिये राजा को चाहिये कि वह ब्राह्मणों को ऐसी सुविधायें प्रदान करें उन्हें अपनी जीविका के सम्बन्ध में निश्चिन्तता रहे । इसके लिये ब्राह्मणों को भूमिदान, धनदान और दूसरी अनिवार्य वस्तुयें भी देनी चाहिये । जो ब्राह्मण को दे दिया जाय उसे फिर लिया न जाय । ऐसा करने पर ब्राह्मण का सत्व उसकी सत्ता राजा के लिये विष का काम करती है और उसके बाद पीढ़ियों का नाश कर देती है । यह भी कहा है कि ब्राह्मणों को जो भूमि दान दे दिया जाता है और उस भूमि में ब्राह्मण की जीविका के लिये अन्न की खेती की जाती है । उसमें उत्पन्न हुये अन्न का अनन्त फल राजा के लिये होता है । ब्राह्मण की हत्या से बढ़कर गुरुतर पाप और कुछ नहीं होगा । जो ब्राह्मणों का उद्‌वास करते हैं वो अपने जीवन का उद्‌वास करते हैं । [42] जो ब्राह्मण अपने कर्तव्यों का पालन कर वेद का स्वाध्याय करता है, यज्ञ करता है लोकोपकारी पूर्तकर्मों को करता है ऐसा ब्राह्मण सारे जगत के सुख का कारण होता है । वह देवताओं को पृथ्वी पर बुला सकता है । ब्राह्मण के द्वारा यज्ञ की आहुति दिये जाने पर उसे आदित्य देवता ग्रहण करते हैं और तब आदित्य से जलवृष्टि होती है, उससे अन्न होता है, अन्न से प्राणी जीवित होते हैं । इस प्रकार सारा त्रिभुवन ब्राह्मणों के द्वारा धारण किया जा रहा है । ब्राह्मण ने इस भूमि को जन्म दिया । ब्राह्मण ने देवों को जन्म दिया । यह लोक और परलोक ब्राह्मण के हैं, लेकिन उस ब्राह्मण के हैं जो यज्ञ, वेद के स्वाध्याय और तप की साधना में लगा हुआ है । [43] जिस राजन के राज्य में ब्राह्मणी रूदन करती है उसके आँसुओं की आह राजा कुल और उसके तीन पीढ़ियों का नाश कर देती है । ब्राह्मण विद्वान हो अथवा विद्वान न हो तो भी उसका सम्मान होना चाहिये । ये जैसे अग्नि प्रज्ज्वलित है या राख में सुरक्षित है वह अग्नि ही है । ब्राह्मणों को उसी प्रकार अग्नि के समान समझना चाहिये ।[44]

ऐसा लगता है कि वैष्णव मान्यता में ये बातें बराबर कही गयी हैं । यहाँ तक कहा गया है कि ब्राह्मण के द्वारा अग्नि में आहुति देने से आदित्य प्रसन्न होतेहैं तब आदित्य ही वृष्टि करते हैं । प्रकारान्तर से यही बात गीता में भी कही गयी है – गीता अध्याय – 3 के श्लोक 10 और 14 ।

ब्राह्मण विद्वान हो या निरक्षर हो लेकिन यदि वह ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ है तो निरक्षर होने पर भी वह आग में छिपे अग्निकण के समान है । इस बात को गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में कहा है । तुलसीदास जी पर वैष्णव परम्परा का समग्र प्रभाव है --

पूजहिं विप्र सकल गुन हीना,
शूद्र न पूजहिं गुनन प्रवीना ।।

पुराणकार यह भी लिखता है कि ब्राह्मण प्रत्यक्ष देखता है । उनके प्रसन्न होने पर ही परलोक में परोक्ष देवता भी प्रसन्न होते हैं और समाज को सारी सुख समृद्धियाँ प्रदान करते हैं ।[45]

9. **गायों की महिमा** :-

पुराणकार ने बड़े निष्ठा से और दृढ़ता के साथ यह बात कही है कि ब्राह्मण और गाय दोनों का कुल एक ही है । दो जगह विभक्त हो । गायें ब्रह्मसुता हैं । समाज में गायों की उपयोगिता को देखते हुये महती पवित्र भावना से पुराणकार ने गायों की पवित्रता, उपयोगिता, उनका पालन आदि विषयों को लेकर धार्मिक नियमों का उल्लेख किया है, जिससे गोवंश का नाश हो किसी प्रकार की हानि हो उसका पूर्णतया निषेध किया है । द्वितीय खण्ड अध्याय 42 का श्लोक 55-56 । एक कुल में वेद के मंत्र स्थित होते हैं और दूसरे कुल में देवताओं के लिये दी जाने वाली छवि विद्यमान होती है ।

पुराणकार कहता है कि इस लोक का जीवन गायों में ही प्रतिष्ठित है । गायें विश्व की माता हैं । गायें यज्ञ का विस्तार करती हैं । उनका गोबर और मूत्र लक्ष्मी को जन्म देता है । उसे परम् पवित्र समझना चाहिये । जहाँ गायों के खुर से उठी हुयी धूल उड़ती है वह लक्ष्मी का देश है। गायों की सींग से गिरा हुआ जल गंगाजल के समान पवित्र है । गाय का मूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुशोदक ये परम् पवित्र माने जाते हैं । ये मंगल देने वाले हैं; रक्षा करने वाले हैं । जिस ब्राह्मण के घर में गाय दुःखी रहती है वह ब्राह्मण नर्क प्राप्त करता है । दूसरे की गाय को घास खिलाकर हम स्वर्ग प्राप्त करते हैं । जो प्रतिदिन गाय को अग्रासन देता है ऐसे छः महीने के व्रत

से भी स्वर्ग पाता है । सायं व प्रातःकाल भोजन करना मनुष्य के लिये देवताओं का विधान है । इन दोनों समयों में जो पहले गाय को देकर स्वयं भोजन करता है वह एक संवत्सर के पुण्य से ही गोलोक प्राप्त करता है और वहाँ मन्वन्तर तक निवास करता है ।

पुराणकार ने उन कर्मों को रोका है जिससे गायों को कष्ट हो, जिससे गोकुल का नाश हो। लिखते हैं कि गायों के गोचरण और पानी पीने की व्यवस्था करने वाला वरूण लोक को प्राप्त करता है, लेकिन जो गायों की गोचरण भूमि को हल से जोत कर खेती करता है वह तब तक नर्क में रहता है जब तक चौदह इन्द्र तप करते हैं । जो पानी पीने जाती हुयी गायों को विघ्न करता है उसे ब्रह्म हत्या का पाप लगता है । सिंह, बाघ से डरी हुयी, कीचड़ में फंसी हुयी गाय का जो उद्धार करता है वह स्वर्ग का भागी होता है ।

जो गायों को जौ का आटा, जौ का भूसा या हराजौं खिला करके उसका पालन करता है, उसे सौभाग्य सौन्दर्य मिलता है । जो गायों को औषधियों का चारा देता है वह निरोगी रहता है।[47]

पुराणकार यह कहता है कि दिन के समान रात में भी गायों की रक्षा करनी चाहिये । गोपालक जो रात में गायों कीओट में रहकर सुरक्षा नहीं करता वह पाप का भागी होता है अथवा रात में पालक के न रहने पर जंगल में जाकर चरने लगती हैं और भेड़िया उनको मार डालता है तो पालक को उसका पाप लगता है ।[48]

पुराणकार ने परलोक में गोलोक का वर्णन किया है; कहते हैं कि गोलोक अनेक लोगों के ऊपर है, वहाँ गायें आकाशचारी होकर निवास करती हैं । उनके चारो ओर अप्सरायें विचित्र विमानों में बैठकर विचरण करती हैं । वीणायें और मृदंग बजाती हैं । वहाँ नदियाँ जो बहती हैं उनके तट पर दूध का कीचड़ होता है । उनका पानी बड़ा ठंडा और स्वच्छ होता है । उनके किनारे सोने के कणों की बालू फैली रहती है । वहाँ ऐसे विशाल सरोवर होते हैं जिनमे वैदूर्य मणि के कमल खिले होते हैं । ऐसे लोगों में, जो गाय के भक्त होते हैं पहुँचते हैं और उनको वहाँ मानसी सिद्धि प्राप्त

होती है ।[49] इस प्रकार पुराणकार ने गायों को समाज के सुख का मूल कहा है । उनके वृत्ति की छवि से संतुष्ट होकर देवता भी मनुष्यों सुखी करते हैं ।

अग्रिम अध्याय 43 में पुराणकार ने गाय के लिये कई औषधियों के विवरण दिये हैं । उनके सींग के मूल में नमक के साथ मिला हुआ तेल लगाने की बात विशेष रूप से कही गयी है । गाय के बछड़ों के लिये भी विशेष आहारों का विवरण दिया हुआ है । इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि गाय भारतीय समाज का एक विशिष्ट अंग है तथा उनके जीवन सुख और आरोग्य के सम्बन्ध में विस्तृत व्यवस्था और नियम पुराणकार ने प्रस्तुत किया है । कुछ विशेष वर्णनों में उनके पूजन किये जाने का विधान है । (अध्याय – 44)

10. **विष्णु और शंकर की परस्पर एकता :–**

परशुराम अवतार के प्रसंग में पुराण से शकर जी ने विष्णु की महिमा का आख्यान किया है और उनको यह रहस्य बताया है कि तुम भी उनके अंशभूत अवतार हो और तुम्हे दैत्यों का विनाश करना है । यहाँ पर परशुराम को केवल राम कहा गया है । राम और शंकर के इस संवाद में विष्णु की महिमा के कई प्रसंग हैं । सारी सृष्टि के मूलरूप में भगवान विष्णु का गुणगान है । प्रथम खण्ड के अध्याय 56–57 में सृष्टि की जो महान् विभूतियाँ हैं वह विष्णु का ही रूप हैं । यह व्याख्यान् बहुत कुछ भगवत गीता के अध्याय 10 के अनुसार है । संभवतः पुराणकार ने उसी की नकल की है । जैसे विष्णु धर्मोत्तर पुराण के छन्द हैं –– प्रथम खण्ड अध्याय 56 – श्लोक – 22–28 । श्री मद् गीता में भी बनायेगये छन्दों का स्वरूप यही है । भगवत गीता अध्याय 10, श्लोक 26, 22, 25 । कुछ सर्वथा नये श्लोक का उल्लेख हुआ है, जैसे अध्याय 56, श्लोक – 11–12 प्रथम खण्ड ।

शंकर जी राम (परशुराम) से यह कहते हैं कि जो व्यक्ति केशव की पूजा का बार–बार मनन नहीं करता है हे भृगुनन्दन । उसके सारे कर्म क्लेश देने वाले होते हैं । अध्याय 57–15 (प्रथम खण्ड) । जिसका पुण्य नहीं है वह केशव की स्तुति नहीं करता है और जो पुण्यहीन है वही केशव

की पूजा नहीं करता है । जिनके पुण्य नहीं हैं वही केशव को नमस्कार नहीं करते हैं । अध्याय 57, श्लोक 5, प्रथम खण्ड । आगे उन्होंने अध्याय 58 में सबको सुख देने वाली वैष्णव मूर्ति का भी आख्यान किया है । कहते हैं कि जो दूसरों को पीड़ा देने वाला कर्म नहीं करता है । सभी प्राणियों के हिस्से का ध्यान रखता है केशव (विष्णु) उससे ही प्रसन्न होते हैं । जो सभी धर्मों को सुनता है, सभी देवों को प्रणाम करता है, किसी से ईर्ष्या नहीं करता है, क्रोध को वश में रखता है केशव उससे, प्रसन्न होते हैं ।

परपीडाकरं कर्म यस्य नाऽस्ति महात्मनः ।।
संविभागी च भूतानां तस्यतुष्यति केशवः ।।
श्रृणुते सर्वधर्मांश्र सर्वान्देवान्नमस्यति ।।
अनुसूयुर्जित क्रोधस्तस्य तुष्यति केशवः ।।

प्रथम खण्ड, अध्याय 58, श्लोक – 7–8

आगे यहीं पर उन्होंने वैष्णव के पाँचरात्र सिद्धान्त मानने वालों की चर्चा की है ।[50]

आगे दूसरे सन्दर्भों में शंकर ने विष्णु से अपनी एकता का प्रतिपादन किया है और कहा है जिसका द्रोह विष्णु से है वह मेरा प्रिय नहीं है । यह शैव और वैष्णव सम्प्रदायों की उन दिनों जो शत्रुता चल रही थी उसे दूर करने के लिये शील विद्वानों, वैष्णवों द्वारा कल्पित किये गये संदर्भ है । उसके कुछ उदाहरण हैं । इसी विचारधारा का प्रतिपादन तुलसीदास जी ने अपनी रामचरितमानस में किया है । तुलसी ने दोनों मतों में समन्वय स्थापित करने के लिये एक ओर तो शिव के मुख से "सोई मम इष्ट देव रघुवीरा, सेवत जाहि सदा मुनिधीरा" कहलवा कर शिव को राम का उपासक सिद्ध कर दिया है और दूसरी ओर राम के मुख से "संकर प्रिय मम द्रोही शिव द्रोही मम दास, ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ वास" । कहलवा कर राम को शिव का अनन्य प्रेमी सिद्ध कर दिया है । इतना ही नहीं तुलसी ने सेतु का निर्माण होने पर राम के द्वारा शिव की प्रतिष्ठा और पूजा अर्चना कराके राम को शिव का अनन्य भक्त भी सिद्ध कर दिया है । साथ ही हरि हर पद रति मति न कुतरकी तुलसी ने राम और शिव में अभेद एवं अभिन्नत्व भी

स्थापित किया है और राम स्तोत्र के साथ रामचरितमानस में ही शिवस्तोत्र की रचना करके इस पार्थक्य और वैसम्य को दूर करते हुये शिव एवं विष्णु के अवतार राम में पूर्णतया समन्वय स्थापित कर दिया है।

11. **क्रीणा, वन, उपवन और कामदेव की पूजा :–**

वैष्णव की मान्यता में शान्ति और अहिंसा का बहुत बड़ा स्थान है। इस भावना में जो भावना निहित है उसके अनुसार दुष्टों का संहार, अन्याइयों का विनाश करके धर्म की रक्षा का काम भगवान स्वयं करते हैं। मनुष्य भगवान की भक्ति द्वारा इनको प्रसन्न करता है। भक्ति से युक्त होकर उनकी अर्चना उनकेलिये हवन आदि ये उसके कर्तव्य हैं, अतः इस शान्ति और अहिंसा के सुखमय वातावरण में जीवों का काम और पुरुषार्थ वैष्णव मान्यता में बहुत ही समाहत है। यहाँ तक कि वैश्यायें भी भगवान के मंदिर के सामने नृत्य कर उन्हे प्रसन्न करती हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण के प्रथम खण्ड, अध्याय 131, श्लोक 132 में असंख्य उर्वशी क्रीणा शैल, क्रीणावन और उपवन का मनोहर वर्णन किया गया है।

इन अध्यायों में उर्वशी व राजा पुरूरवा के मिलन प्रसंगों को लेकर उक्त वर्णन किये गये हैं। जहाँ उर्वशी की सखी रम्भा उर्वशी को लेकर राजा परूरवा से मिलाने के लिये उसे क्रीणावन में ले जाती है। उर्वशी राजा के प्रति आसक्त है और वहाँ पहुँच कर सूर्य के अस्त होने की प्रतीक्षा कर रही है। रात्रि हो और चन्द्रमा का उदय हो तब उर्वशी से राजा का मिलन संभव कराया जाय। इस प्रसंग में क्रीणावन उपवन के जो वर्णन किये गये हैं वह तत्कालीन राजाओं के उपवनों की विशाल भूमि का ही चित्रण है। पुराणकार लिखता है कि राजा के भवन में कहीं सोने की कहीं रत्नों की पच्चीकारी है। अनेक मणि, मूंगा की सीढ़ियाँ बनी हुयी हैं। मोती की मालायें जगह–जगह लटक रही हैं, फूलों की मालायें सुशोभित हैं। राजा का वह भवन चूने से पुता हुआ धवल दिखायी पड़ रहा है। उस भवन के निकट ही राजा का क्रीणावन है और क्रीणापर्वत भी है जो कुबेर के चैत्य रथवन के समान है। अनेक प्रकार के वृक्ष उसमें लगे हुये हैं। किनारे पर सुपारी के वृक्ष और फूलों के वृक्ष हैं। क्रीणाशैल के पास कमलिनी से युक्त सरोवर था वहाँ चम्पक के फूल

खिले थे दाड़िम फूले फले थे । आम में बौर आये थे । महुये के फूल टपक रंहे थे । ताल में खूब फल लगे हुये थे । केले के पेड़ सुरभित हो रहे थे । मुक्त लता फूली हुयी थी । कुन्द फूले हैं, कमल खिले हैं इसका वर्णन रम्भा उर्वशी से कर रही है और उन–उन फूलों से उर्वशी के अगों की उपमा भी दे रही है ।[52]

यद्यपि ये उपवन और क्रीणाशैल के वर्णन उर्वशी और राजा पुरुरवा के प्रसंग में लिखे गये हैं, तथापि उस युग के राजाओं एवं संभ्रान्त पुरुषों के सांस्कृतिक जीवन के ये अंग थे । पुराणकार ने अन्यत्र कामदेव की पूजा का वर्णन भी किया है ।[53] कामदेव की पूजा का निर्देश वात्स्यायन के कामसूत्र में भी मिलता है ।[54] सामान्यतः यह माना जाना चाहिये कि संस्कृत का रूप परम्परा प्राप्त है, लेकिन इस पर वात्स्यायन के कामसूत्र का भी प्रभाव है ।

12. **वृक्ष लगाना और उसका संवर्द्धन करना :–**

उद्यानों का संवर्द्धन वैष्णव को बहुत प्रिय है । द्वितीय खण्ड के अध्याय 29 में वास्तुशिल्प का वर्णन करने के बाद पुराणकार ने भवन के निकट उद्यान रोपित करने की व्यवस्था के बारे में सुझाव दिया है । ये उद्यान निजी भवनों और देव मंदिरों दोनों के साथ होते थे । इस संबन्ध में वृक्ष का नाम , किन नक्षत्रों में लगाया जाय, उनकी दूरी कितनी–कितनी हो आदि बातें विस्तार से कही है साथ ही उनके लिये क्या खाद दिया जाय जिससे वे खूब पुष्पित हों, अधिक फल दें इन बातों को बताया गया है ।

सबसे पहली बात पुराणकार यह कहता है कि शिव की वृक्ष की पूजा करके नववृक्ष का रोपड़ करें । ध्रुव संशक नक्षत्र (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तरा आषाढ़) (उत्तरा भाद्रपद और रोहनी) पाँच वायव्य सशंक ।

पुण्य और मूल नक्षत्रों मे वृक्ष लगाये जायें । वहाँ जल के साथ जलाशय हो, जलाशय न हो तो कूप अवश्य हो ।

उद्यान के उत्तरी सीमा पर पाकर का वृक्ष हो, पूर्वी सीमा पर बरगद हो, दक्षिणी सीमा पर गूलर, पश्चिम की ओर पीपल का पेड़ हो। इनके समीप कॉंटे वाले वृक्ष नहीं लगाने चाहिये।

उद्यान में और जो वृक्ष हो उनमे कुछ मुख्य वृक्षों के नाम पुराणकार ने गिनाये हैं, ये नाम इस प्रकार है – अरिष्ट, अशोक, पुन्नाल, शिरीष, आम, प्रियंगु, कटहल, कदली, जामुन, लकुच, अनार। सेमर, कचनार, बेहड़ा के पेड़ न लगाये जायें। असंग, देवदार और पुस्कर के वृक्ष अवश्य हों।[55]

लिखा है कि 20 या 12, 16 हॉथ के अन्तर पर वृक्ष को लगाना चाहिये, तभी वो अच्छी तरह से विकास करते हैं। अच्छा यह है कि 20 हॉथ का अन्तर रखा जाय।

इसके बाद उन्होंने वृक्षों की औषधियों का विवरण दिया है और कई बातें बतायी हैं। कहा है कि वृक्ष की डालियॉं इधर–उधर बहुत बढ़ जाय तो उन्हें काट देना चाहिये। वृक्षों के पूर्ण विकास के लिये पानी में विड्रंग और घी मिलाकर सींचना चाहिये और अगर फल न आ रहे हों तो कुल्थी, उर्द, मूंग, तिल और जौ सबको पीस कर पानी में मिलाकर वृक्षों को सींचा जाय तो उसमें फूल और फल आयेंगे।[65]

उन्होने आगे कुछ औषधियों में मांस का भी विधान किया है। लिखते हैं कि मछली के चूर्ण और जल से सींचने पर आम की अच्छी वृद्धि होती है। श्रृगाल का मांस और जल नारंग और अक्षोट (अखरोट) वृक्षों के लिये हितकारी होता है कैंथ और बेल को खाद को पानी से सींचने पर अच्छी वृद्धि होती है। चमेली और बेला को सुगंधित जल से सींचना चाहिये। टेढ़े मेढ़े कुब्जक जाति के जो वृक्ष होते हैं जैसे खजूर, नारियल, कदली उनको कछुये के मांस और जल से सींचना चाहिये।[57]

उद्यानों के प्रति लगाव और पुराणकार की खोज हमें चमत्कृत करती है। आज के वैज्ञानिक युग में भी इसका विवेचन नहीं हुआ है। पुराणकार का विवेचन प्राचीन काल में हमारी

संस्कृति और गहरे अधिनिवेश को सिद्ध करता है। दुःख है कि मध्यकाल के अन्तराल में यह परम्परा हम भूल गये हैं।

13. पथिकों की सेवा के लिये मार्ग में प्रपा (पौशाला) :–

रास्ते में पथिकों को आराम कैसे मिले, इसके बारे में यह पुराण अनेक व्यवस्थायें देता है। इतनी लम्बी व्यवस्था दिये जाने के पीछे कुछ मूलभूत कारण हो सकते हैं और मुख्य कारण है मानव की अधिक से अधिक सेवा हो सके क्योंकि वैष्णव धर्म पर पीड़ा से दुःखी होने वाला धर्म है। पथिकों की सुविधा के लिये इतनी चीजें होती हैं – कूप, तड़ाग, बावली जहाँ जल के साधन न हों वहाँ प्रपा (पौशाला) इसके साथ ही रास्ते में पथिकों को विश्राम में असुविधा न हो इसके लिये उद्यान, छायादार वृक्ष, फलदार वृक्ष, पुष्पवृक्ष मार्ग में जहाँ पर नाली पड़ती हो वहाँ पर सेतु, जो मार्ग सदैव व्यवहार में आते हैं उन मार्गों की व्यवस्था, वे अच्छी तरह से चलने लायक हों और यदि आवश्यक सहायता पथिक के लिये हो उसे देना चाहिये। इनका वर्णन तृतीय खण्ड के अध्याय 296 से 298 तक किया गया है।

इनकी व्यवस्था का एक कारण यह भी हो सकता है कि वैष्णव साधु अपने धर्म के प्रचार के लिये पथिक बनकर ही निकलते थे। पथिकों की सेवा से साक्षात् धर्म की उपासना होती थी। इस पुराण की रचनाके बहुत पहले बौद्ध श्रमण, जैन श्रावक अपने–अपने धर्म के प्रचार के लिये पथचारी हुआ करते थे। पथिकों को ये सारी सुविधायें उपलब्ध करना धर्म का एक अंग था। इतिहास के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म का अंग न होने पर भी पथिक को सुविधा दिये जाने की परम्परा भारत में बहुत पुरानी है प्रपा पात्रिका से पथिक के प्रेम हो जाने की कहानी भी साहित्य में कही गयी है।

तृतीय खण्ड अध्याय 298 में पुराणकार लिखता है कि जहाँ जल की बाढ़ से लोग दुःख प्राप्त करते हैं, आना जाना बंद हो जाता है वहाँ सेतु निर्माण किया जाना चाहिये। जो इस प्रकार

से मार्ग में सेतु बनवाता है उसे अग्निस्तोत्र यज्ञ का फल मिलता वो सुख–दुःख से छूटकर स्वर्ग को प्राप्त करता है । रास्ते में प्रपा की व्यवस्था करने वाला, प्रपा के लिये ठीक–ठीक कुटीर स्थान बनवा देने वाला शाश्वत स्वर्ग प्राप्त करता है, कुये पर जो अपनी ओर से रस्सी रख देता है वह गोदान कर देता है । जलपात्र और कुम्भ रख देने से सारे मनोरथ सिद्ध होते हैं । प्रपा की सेवा में जो परिचारक नियुक्त कर देता है वह यज्ञ का ही फल प्राप्त करता है, यही नहीं प्रपा में जलपान की सामग्री, नमक, फल, सत्तू, दूध, दही, मट्ठा आदि, बैठने लेटने के आसन आदि जो देता है वह स्वर्गलोक प्राप्त करता है । लूट तथा शीत से बचने के लिये जो सुन्दर निवास स्थान बना देता है उसे स्वर्गलोक मिलता है, चन्द्रलोक मिलता है ।[58]

रास्ते में बरगद और पीपल का पेड़ लगाना श्रेष्ठ कार्य हैं । जो नारंगी का पेड़ मार्ग में लगा देता है उसे शरीर का सौन्दर्य प्राप्त होता है । जो बीजपूरक का पेड़ लगाता है उसे सौभाग्य प्राप्त होता है । आम और अखरोट का पेड़ लगाना कामनाओं को देता है ।[59] रास्ते में जो पथिकों की रक्षा आपत्तियों से करता है उसे रूद्रलोक प्राप्त होता है । जो नदी के घाटों की पवित्रता की व्यवस्था करता है और पथिकों को पार पाने के लिये नाव की व्यवस्था करता है उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है ।

मार्ग में पथिकों की सेवा के लिये जो विशेष निर्देश पुराणकार ने कियेहैं, संभवतः यह वैष्णव साधुओं के लिये है । पुराणकार लिखता है कि जो पथिक थक गया हो उसको ताड़पत्र से हवा दी जाय जो भूखा हो उसे भोजन दिया जाय । जो पथिक को जूता और छाता देता है उसे बहुत फल मिलता है । जो थके हुये पथिक के बोझ को स्वयं पहुँचाता है वह स्वर्गलोक प्राप्त करता है जो स्वयं किसी का बोझ न पहुँचा सकता हो वह पैसा देकर मजदूर द्वारा बोझ को पहुँचवा देता है, उसे दस गुना फल मिलता है ।[61]

14. <u>श्राद्ध कर्म</u> :–

श्राद्ध कर्म हमारी संस्कृति का एक विशिष्ट पक्ष है और आज हमारी सनातन जीवन पद्धति

में श्राद्ध का जो विस्तृत रूप है वह वैष्णव धर्म की देन है अर्थात् मृत्यु के बाद दस दिन तक दशरात्र का पिण्डदान ग्यारहवें दिन वार्षिक श्राद्ध, महापात्र ब्राह्मण का पूजनदान और बारहवें दिन सपिण्डीकरण श्राद्ध । यह सब कुछ समग्र रूप से वैष्णव धर्म का चिंतन है । विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अध्याय 75 से 77 तक इसका विवरण दिया गया है । इस संबन्ध में वैदिक काल में क्या पद्धति थी इसे इदमित्थं रूप से तो नहीं कहा जा सकता है लेकिन मृत्यु के अनन्तर शव को जला देते थे। जलाते समय अग्नि से जो प्रार्थना की जाती थी वो यह है --

"अग्नि नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुयानि विद्वान,
युयोध्यस्मज्जुहुराण मेनो भयिष्ठां ते नम उक्ति विधमे ।18। ईशावास्यो पनिषद् ।

यजुर्वेद (5/36, 7/43, 40/16) में भी यही है । अथात् हे अग्निदेव मुझे उत्तरायण मार्ग से परमेश्वर की सेवा में पहुँचाइये । आप ऐसे सभी कर्मों को जानते हैं जो पाप है, उनसे मुझको दूर कर दीजिये, क्योंकि वे मेरे मार्ग में बाधक बन जायेंगे । मैं बार-बार आपको नमस्कार करता हूँ ।

लेकिन अग्नि का यह संस्कार कोई कुल का व्यक्ति ही करता था । कहा नहीं जा सकता कि यह प्रथा कब आ गयी । जिनके कुल में कोई व्यक्ति न हो अर्थात् जो श्रमण या सन्यासी हो गये हों मृत्यु के बाद उनके शरीर को जमीन में गाड़ दिया जाय । ऐसी व्यवस्था धर्म की दूसरी व्यवस्था के रूप में है । क्योंकि किसी के न रहने पर राजा का यह कर्तव्य होता है कि वह मृत शरीर को जलवा दे । इतिहास के रघुवंश महाकाव्य में रघु ने अपने जीवन काल में वानप्रस्थ ले लिया और अपने पुत्र अज का राज्याभिषेक कर दिया और राजधानी को छोड़कर वन में रहने लगे थे । जब रघु की मृत्यु हो गयी तो अज ने एतियों के समान उनके शरीर की अनग्नि क्रिया की अर्थात् दाह संस्कार न करके उनको पृथ्वी में गाड़ दिया और केवल परम्परा पालन के लिये श्राद्ध संस्कार भी कर दिया ।[62]

श्राद्ध धार्मिक चिंतन का गहन पक्ष है। मरणोत्तर जीवन का रहस्य दर्शन है। मृत्यु के बाद आत्मा भटकती रहती है। वह प्रेत हो जाती है और उसे भूख प्यास से बड़ी तड़पन होती है। यही नहीं उसे जीवन काल में जीवन के सुख और काम विलास की जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, मरणोत्तर जीवन में ये इच्छायें उसको और अधिक प्रेरित करती हैं। विशेषकर राजपुरुषों को। ऐसे कई प्रश्न विचारणीय हैं। उनकी सत्यता के संबन्ध में परलोक दृष्टा दार्शनिक पुरुष ही उत्तर दे सकता है। पुनर्जन्म और जन्मान्तर घटनाओं के स्मरण की ऐसी कई कहानियाँ आती रहती हैं जिससे इनकी सच्चाई साबित होती है। मृतात्मा के मरणोत्तर काम सुख के लिये श्राद्ध कर्म का एक विशिष्ट पक्ष वृषोत्सर्ग है जिसमें एक साँड़ पाँच गौवत्साओं के साथ छुटटा छोड़ दिया जाता है। इसके पीछे उद्देश्य है कि प्रेतात्मा इस साँड़ पर सवार हो घूमता रहेगा और इन गायों के साथ अपनी कामेच्छा की पूर्ति करेगा। ऐसा उस युग में संभव रहा होगा जब बड़े-बड़े चरागाह रहे होंगे। आज के युग में यह संभव नहीं है। मध्य एशिया के पुरातात्विक को इतिहास के कुछ चिन्ह ऐसे खुदाई में मिले हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि राजा के मरने के बाद उसकी कब्र में दास दासियां और घोड़े जीवित गाड़ दिये जाते थे, जिससे उसकी सेवा करें। बहुत सी खाद्य सामग्री, वस्त्र और धन भी गाड़ा जाता था। लेकिन ऐसी प्रक्रिया एक अपनत्व मूलक कल्पना पर आधारित थी। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में श्राद्ध की जो विधि दी गयी है वह सांगोपांग और सुचिन्तित है।

मृत्यु के अनन्तर तत्काल दस दिन तक दशगात्र के श्राद्ध ग्यारहवें बारहवें दिन के अलग-अलग श्राद्धों के विधान हैं। इन श्राद्धों में पिण्डदान किया जाता है। शव कों दाह संस्कार करने के बाद दस दिन तक पूरे कुल और सपिण्ड कुल में भी अशौच माना जाता हे। इस संबन्ध में कहा गया है कि ग्यारहवें दिन के बाद और कर्म के बाद शुद्धि हो जाती है। यह नियम ब्राह्मण के लिये है। क्षत्रिय बारह दिन में शुद्ध होता है, वैश्य पन्द्र दिन में और शूद्र एक महीने में शुद्ध होता है।[63] उसके आगे उन्होंने और भी विधान दिये हैं। मृत पुरुष की पत्नियोंव दासियों के बीच भी शौच कर्म का विधान ऐसे ही होगा। लिखा है कि जिस बालक को दाँत न आये हों उसकी मृत्यु पर कोई अशौच नहीं होता। जिस बालक के चूणा संस्कार हो गये हों, उसकी मृत्यु पर एक दिन रात के लिये अशुद्धि होती है। इससे बड़ा होने पर मृत्यु हो तो तीन रात तक अशौच

होता है । तीन वर्ष तक मृत्यु होने पर पाँच दिन मे शुद्धि होती है और तीन वर्ष बीत जाने पर बारह दिन में शुद्धि होती है । जो कन्या विवाहित हो जाय उसकी मृत्यु पर पिता के घर में अशौच नही होता । विवाहित कन्या यदि पिता के घर मर जाय तीन रात में शुद्धि हो जाती है । लड़की अगर पिता के घर में बच्चे को जन्म दे तो एक रात का अशौच होता है । वैसे संतान का जन्म होने पर दस रात के बाद शुद्धि होती है । जहाँ एक ही दिन का अशौच हो वहाँ वस्त्र सहित स्नान करने पर अशौच समाप्त हो जाता है । अगर कोई देशान्तर में अपने कुल का व्यक्ति मर जाय या देशान्तर में अपने कुल के किसी व्यक्ति को संतान प्राप्त हो, यह समाचार जब मिले और जितने दिन शेष रह गये हों शौच के उतने दिन तक घर अशौच रजता है, लेकिन अगर दस दिन बीत गये हों उसे फिर तीन रात तक अशौच मानना चाहिये और एक वर्ष बीत गया हो तो स्नान करके शुद्ध हो जाता है । नाना, आचार्य मर जाय तो, अनवरस पुत्र की मृत्यु हो जाय तो, अपनी भार्या दूसरे के साथ चली गयी हो, वह मर जाय तो, जिस भार्या को छोड़ दिया हो वह मर जाय तो इनके मृत्यु पर भी तीन रात तक अशौच माना जाय । आगे उन्होंने फिर लिखा राजा, मामा, ससुर, आचार्य–पत्नी, आचार्य पुत्र और अपना ब्रह्मचारी शिष्य जो अन्तेवासी हो, के मरने पर एक रात अशौच मानकर अन्नदान कर देना चाहिये । जो आग में जल जाय, जल में डूब जाय, आत्महत्या कर ले, गिर कर मर जाय, बिजली गिर पड़े और उससे मर जाय उनका अशौच नहीं होता, तथा सती स्त्री, जो व्यक्ति किसी व्रत के अनुष्ठान में हो, ब्रह्मचारी हो, राजा के काम में दीक्षित हो, उसके आज्ञा पालन में लगा हों इनको भी अशौच नहीं लगता । शव यात्रा में अगर जाय तो जल में नहा करके घी का आचमन कर शुद्ध हो जाना चाहिये ।

आगे पुराणकार ने गंगाजल की भूरि–भूरि प्रशंसा की है । इन प्रेतों और आत्घातियों के उद्धार के लिये राजा भगीरथी ने गंगाजल को पृथ्वी तट पर लाकर के महान् उपकार किया है । अगर अस्थियाँ गंगाजल में पड़ जाय तो प्रेत का अभ्युदय हो जाता है । गंगा के जल में जितने वर्ष तक हड्डी रहती है उतने हजार वर्ष तक वह आत्मा स्वर्ग में निवास करती है । जिनकी कोई गति नहीं है उनकी अस्थि या भस्म को गंगा जल में डाल देने से उद्धार हो जाता है । पुराणकार ने कहा है कि जिनकी मृत्यु स्वाभाविक नहीं होती, दुर्घटना या आत्महत्या या और ढंग से होती है ऐसे प्रेतों

के लिये जो श्राद्ध, पिण्डदान आदि किये जाते हैं उन्हे आकाश में ही कोई छीन लेता है अथवा लुप्त हो जाते हैं। अतः उनको दिया हुआ अन्न जल श्राद्ध प्राप्त हो, उसके लिये भगवान जनार्दन की अपेक्षा होती अत. ऐसे प्रेतों के उद्धार के लिये श्राद्ध के साथ नारायण बलि की जानी चाहिये।[65]

आगे उन्होंने श्राद्ध के संदर्भ में और भी विधि विधानों की चर्चा की है उसके विस्तार से वर्णन की अपेक्षा यहाँ पर नहीं हैं, लेकिन इतना उल्लेख आवश्यक है कि यह श्राद्ध कर्म जो अपने पितरों के लिये किया जाता है यह महान धर्म है। श्राद्ध करने वाला निश्चित रूप से अपने जीवन में समग्रता प्राप्त करता है इसलिये उसे अपने इन पूर्वजों, मृत् व्यक्तियों का श्राद्ध कर इनका आशीर्वाद लेना चाहिये।[66]

पिण्ड प्रायः दूध, चावल, तिल, मधु पकाकर बनाये जाते हैं, लेकिन पुराणकार ने दही, मधु और मांस से भी पिण्ड को पूरित करने की बात कही है।[67]

महर्षि दयानन्द सरस्वती इस श्राद्ध कर्म को वेदोक्ति विधि नहीं स्वीकार करते। मृत शरीर को जलाने के बाद वो प्रेत और पितर की [illegible] भी नहीं मानते। ऐसा उल्[illegible] उन्होंने यजुर्वेद भाष्य की भूमिका में कि[illegible] [illegible] —[4] इनके स्थान में ऐसा समझना [illegible] कि जीवितों की श्रद्धा से सेवा करके [illegible] [illegible] करते रहना, यह पुत्रादि का परम [illegible] है और जो–जो मर गये हो उनका नहीं करना, क्यों[illegible] [illegible] ता काइ मनु[illegible] [illegible] मुवे [illegible] के पास किसी पदार्थ को पहुँचा सकता है और न मरा हुआ जीवन पुत्रादि के दिये पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। उससे यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा का नाम तर्पण और श्राद्ध, अन्य नही।[68]

पितरों के लिये गोदान, श्राद्ध, वस्त्र दान आदि वे व्यर्थ मानते हैं। यह गहन दार्शनिक पक्ष है और मृतोत्तर काल का विज्ञान दर्शन है। श्राद्ध की विस्तृत व्याख्या वैष्णव धर्म की देन है श्राद्ध के प्रयोगों उसमें दिये गये दान आदि के अनुभवों और कभी–कभी प्रेत आत्माओं के साक्षात्कार से यह स्पष्ट होता है कि वैष्णव का यह श्राद्ध कल्प अपनी सच्चाई रखता है। हमें यह बात स्वीकार करनी चाहिये।

15. भाग्य और कर्म :–

राज शिक्षा के सन्दर्भ में अनेक बातें कहते हुये पुराणकार ने कर्म के प्रति सावधान रहने का निर्देश दिया है और कहा है कर्म से ही भाग्य बनता है । पौरुष के अधीन ही राजा के राज्य की स्थिरता होती है । सत्कर्म और पौरुष वैसे ही फलीभूत होता है जैसे वृक्षों में फल लगते हैं । शासन के लिये जो विधि विधान बनाये गये हैं उनका सम्यक पालन करते हुये जो पौरुष किया जाता है उस विधान और पौरुष के भली–भाँति उदीप्त रहने पर दैव अर्थात् भाग्य की चिन्ता नहीं की जाती ।[69] उसके आगे अध्याय 66 और 67 में भाग्य, पौरुष और काल इन तीनों के उचित समीकरण का निर्देश किया गया है । यह कहा गया है कि कर्म को ही अपने फल के लिये काल की प्रतीक्षा उस प्रकार करनी चाहिये, जिस प्रकार खेती को वृष्टि की वर्षा होने के संयोग की अपेक्षा होती है ।[70]

पुराणकार ने आलस्य की निंदा की है । आलसी और जो भाग्य के भरोसे बैठने वालेहैं उनको अर्थ की प्राप्ति नहीं होती है । विपत्ति में भी हमकों यह ध्यान रखना चाहिये कि हमें कभी न कभी अपने कर्म का फल मिल कर ही रहेगा, नहीं तो उस जन्म में मिलेगा । उद्योग युक्त (उत्थानवान) होना ही सच्चे पुरुष का लक्षण है । जो उठकर जागता रहे लक्ष्मी उसी को वरन करती हैं । इस प्रसंग में इस पुराण का निम्न श्लोक उद्धत करने योग्य है ––

त्यक्तालसान्दैवपरान्मनुष्यानुत्थानयुक्तान्पुरुषान्हि लक्ष्मीः ।।
अन्विष्य यत्नाद्वृणुते द्विजेन्द्र तस्मात्समुत्थानवता हि भाव्यम् ।।

द्वितीय खण्ड, अध्याय 66, श्लोक ।।

16. दण्ड की महिमा :–

महाभारत में पितामह भीम ने युधिष्ठिर को राजधर्म का उपदेश देते हुये निम्न श्लोक कहा है ––

"दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ।।

अर्थात् दण्ड सारे प्रजा का शासन करता है। दण्ड ही सारी प्रजा की रक्षा करता है। जब सारी प्रजा सोती रहती है तब दण्ड ही जागता रहता है, इसलिये विद्वानों ने दण्ड को धर्म कहा है। उसका भाव यह है कि अपराध और दुष्कर्म के लिये दण्ड देने मे राजा को सावधान रहना चाहिये, तभी प्रजा सुरक्षित रहती है और ऐसी उद्योग व्यापार आदि प्रजा के फूलने और फलने के सारे मार्ग प्रशस्त होते हैं। महाभारत के इस श्लोक को पुराणकार ने ज्यों का त्यों उद्धत कर दिया है और उसके साथ ही राजा को दण्डधारी होने के लिये विशेष रूप से निर्दिष्ट किया है।

पुराणकार ने यह भी कहा है कि लोक कल्याण ध्यान रखते हुये राजा को धर्म शास्त्र के अनुसार विनीत होकर दण्ड का प्रयोग करना चाहिये। निमर्म और निर्भय होकर जहाँ दण्ड शासन में प्रयुक्त होता रहता है वहाँ प्रजा गलत रास्ते पर नहीं जाती है और नेता लोग ठीक से कार्यों को देखते हैं।[71]

आगे इस बात को और भी रोचक रूप से कहते हुये पुराणकार कहता है कि जो देवता दण्ड देने वाले होते हैं उन्ही की पूजा होती है। जो सीधे-साधे होते हैं उनकी पूजा नहीं होती। कुछ मनुष्य भी ब्राह्मण, ब्रह्मा, उषा, अर्जमा जैसे शांत प्रकृति वालों की पूजा कदाचित करते हैं लेकिन रुद्र, अग्नि, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु आदि देवगणों की जो कि दण्ड देने वाले हैं उनकी पूजा करते ही हैं।

लेकिन दण्ड के प्रति राजा को बहुत सावधान रहना चाहिये। अगर राजा ऐसे को दण्ड देता है जो कि दण्ड के योग्य नहीं है और जो दण्ड के योग्य है उनको दण्ड नहीं देता है तो ऐसा राजा राज्य से भ्रष्ट हो जाता है और मरने के बाद नरक जाता है।[72]

17 **कृतज्ञता की प्रशंसा** :-

ऐसा मनुष्य जो अपने प्रति किये गये उपकारों को भूल जाता है वह उपकार मनुष्य के हों अथवा इतर प्राणियों के वह कृतघ्न है। ऐसे कृतघ्न अधम पुरुष नर्क में जाते हैं और कृतघ्न

के उद्वार का कोई मार्ग नहीं है ।ब्रह्म हत्या, सुरापान, चोरी, व्रत का भंग किया जाना आदि का प्रायश्चित तो है पर कृतघ्नता का कोई प्रायश्चित नहीं है ।

पुराणकार ने कहा है कृतज्ञता श्रेष्ठ धर्म है । आपत्ति में अपने स्वामी, ब्राह्मण, नौकर, गुरू को कभी छोड़ना नहीं चाहिये, उनका साथ देना चाहिये । ऐसा कृतज्ञ व्यक्ति महान् स्वर्ग को प्राप्त करता है । नौकर यदि सेवा करते हुये वृद्ध हो जाय तो उसका भी भरण पोषण करना चाहिये और उसकी सेवा का कृतज्ञ होना चाहिये ।

पुराणकार ने इस कृतज्ञता धर्म को सामाजिक व्यवहार और जीवन व्रत की आचार संहिता के रूप में लिया है । वे कहते हैं कि जो व्यक्ति पशुओं को अपने घर में ऐसे बाँधे रहता है उन्हें भूसा और पानी नहीं देता है, चाहे वह कितना ही श्रेष्ठ ब्राह्मण हो वह नर्क ही जाता है । इस प्रकार पशुओं को रोग आदि हो जाय तो उसकी चिकित्सा करना भी परम कर्तव्य है । स्वामी की सेवा करते हुये जो सेवक क्लेश प्राप्त करता है उस स्वामी का कल्याण नहीं होता है । कृतज्ञ व्यक्तियों के द्वारा यह पृथ्वी धारण की हुयी है । कृतज्ञ व्यक्ति को स्वर्ग और ब्रह्मलोक दुर्लभ नहीं होता । उस ब्रह्मलोक को तप से प्राप्त करके महान कष्टों को सह के प्रार्थना करके प्राप्त करते हैं, उस ब्रह्मलोक को कृतज्ञ व्यक्ति शीघ्र प्राप्त कर सकता है । इस संबन्ध में पुराण का यह श्लोक उद्धत करने योग्य है --

यो ब्रह्मलोकस्तपसा न शक्यः प्राप्तुं द्विजेन्द्रा महतः सुकृच्छ्रात् ।।
तं ब्रह्म लोकं हिं नरः कृतज्ञः प्राप्नोति शीघ्रं न हि संशयोऽत्र ।।

तृतीय खण्ड, अध्याय 270, श्लोक – 22

18. **<u>नदियों की महिमा</u> :–**

इस पुराण में भूगोल का वर्णन अल्प होने के कारण नदियों के संबन्ध में विस्तार से तो नहीं कहा गया है, लेकिन जहाँ–तहाँ महत्वपूर्ण बातों के संदर्भ में पुराणकार नदियों की महिमा को रेखांकित करता है । पुराणकार ने आर्यावर्त्त की भूगोल सीमा का वर्णन करते हुये लिखा है कि वेद

स्मृति सदाचार और आत्मा का प्रिय कार्य थे धर्म के चार लक्षण हैं । चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के द्वारा इनकी संगति बैठती है अतः धर्म के लक्षण और चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था जिस देश में न हो वह म्लेच्छो का देश है, यह जान लेना चाहिये और जहाँ ये लक्षण हैं वह आर्यावर्त्त है ।

उक्त धर्म लक्षण और चातुर्वर्ण्य व्यवस्था से युक्त जो आर्यावर्त्त देश है उसकीसीमा सरस्वती और दृषद्‌वती ये दोनों नदियाँ हैं । इनके बीच के देश को ब्रह्मवर्त्त कहते हैं --

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।।

तं देवविहितं देशं ब्रह्मवर्त प्रचक्षते ।।

तृतीय खण्ड, अध्याय 233, श्लोक - 65

श्राद्ध के प्रसंग में नदियों के तट पर श्राद्ध करने का विशेष महत्व के साथ वर्णन किया गया हे । गंगा और यमुना इन नदियों के तट पर कहीं भी श्राद्ध किया जाय तो उस श्राद्ध कर्म का अनन्त फल होता है । इसी प्रकार नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा नदी के तट पर किया गया श्राद्ध अक्षय होता है । अरावली पर्वत पर किया गया श्राद्ध भी अक्षय होता है । इसे अतिरिक्त भी जो पर्वत हैं तीर्थ हैं, नदियाँ हैं, मुख्य-मुख्य सरोवर है, ऋषियों के आश्रम हैं, निर्झर हैं, जहाँ वे नदियाँ निकलती हैं, नदियों के संगम में और उनके पुलिन पर किये गये श्राद्ध का अक्षय फल मिलता है।[75] यह भी कहा गया है कि जो नदियाँ हमेशा जल से भरी रहती हैं, जिनका जल ठण्डा होता है उनसे अपनें पितरों को जलांजलि देनी चाहिये ।

प्रथम खण्ड के अध्याय 149 में पुराणकार में हैमवती (इरावती) नदी का वर्णन पूरे एक अध्याय में किया है । उसके तट पर गंधर्वगण रहते हैं । इन्द्र भी आते हैं । महाराजा पुरुरवा उसके शीतल जल को देखकर जहाँ हँस उड़ रहे थे, जिसके तट पर काश फूट हुये थे, जो ऐसे लगते थे मानो उसको चँवर झुलाया जा रहा है, उसके तट पर उन्होंने प्रवेश किया । उस नदी में शैवाल नहीं थे लेकिन कमल के फूल जहाँ-तहाँ खिले हुये थे । गायों के झुण्ड किनारे चल रहे थे। उसके तट पर सुगंधित फूल वाले वृक्ष थे । उसका किनारा इतना आकर्षक था कि तपस्वी ऋषि भी

उसके तट पर पहुँच कर कामभाव से ओतप्रोत हो जाते थे । यद्यपि इसके तट पर देव आते थे लेकिन पुलिन्द (शबर) और वन्य हिंसक जीवों का भी आगमन उस तट पर हुआ करता था । उसका सुहावना तट और ठंडा जल शरीर को समान रूप से आकर्षित करता था ।[76]

इसके अतिरिक्त भी स्थान–स्थान पर नदी की तट भूमि का महात्म्य पुराण में उल्लिखित हुआ है । पुराण के अंत में सरोवर अथवा प्रवाहित होती हुयी नदी के तट पर उपवन के बीच, मण्डल के बीच के अष्टदल कमल का विन्यास कर विष्णु की पूजा करने का विधान बताया गया है ।

क्र0सं0	सन्दर्भ
1.	निरूक्त अध्याय – 10.3 और अध्याय – 10.2
2.	मनुस्मृति
3.	वाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड 18.30
4.	वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड 1.210
5.	पुरुष सूक्त
6.	भगवद् गीता
7.	श्रीमद् भगवत गीता की व्याख्या – गीता अध्याय 4–3 व्याख्याकार श्रीमद् ए0सी0 भक्ति वेदाक्त स्वामी प्रभुयाद
8.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय – 227, श्लोक संख्या 6–11
9.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय – 227, श्लोंक 12
10.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 80, श्लोक 1–4
11.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 80, श्लोक 6–10
12.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 81, श्लोक 14
13.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 82, श्लोक 13,20–27,31
14.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 82, श्लोक 14–15
15.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण द्वितीय खण्ड, अध्याय – 85, श्लोक 15–18, 23–28
16.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण द्वितीय खण्ड, अध्याय – 86, श्लोक 1–8
17.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 85, श्लोक 5–7
18.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय – 230, श्लोक 1–4
19.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय – 230, श्लोक 9–15
20.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, प्रथम खण्ड, अध्याय – 41, श्लोक 2–32
21.	मनुस्मृति, अध्याय – 2, श्लोक – 2,7,9,10,12
22.	वाल्मीकिं रामायण, युद्ध काण्ड, सर्ग – 4, श्लोक 3–5
23.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 163, श्लोक 16–26

क्र0सं0	सन्दर्भ
24.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 177, श्लोक 51–52
25.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 177, श्लोक 84–94
26.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय – 322, श्लोक 23–24
27.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय – 322, श्लोक 3–13
28.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 87, श्लोक 15–22
29.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय – 224, श्लोक 14–20
30.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 111, श्लोक 11–16
31.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 111, श्लोक 6–9
32.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 116, श्लोक 43–46
33.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 116, श्लोक 47–52
34.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 117, श्लोक 10–24
35.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 118, श्लोक 9–31
36.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, प्रथम खण्ड, अध्याय – 27, श्लोक 15–16
37.	रघुवंश
38.	महावीर चरित
39.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, प्रथम खण्ड, अध्याय – 27, श्लोक 20–24
40.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, प्रथम खण्ड, अध्याय – 63, श्लोक 21
41.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, प्रथम खण्ड, अध्याय-63, श्लोक 30–33, 47–50
42.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 32, श्लोक 2–12
43.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 32, श्लोक 32–36
44.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 32, श्लोक 17–18
45.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 32, श्लोक 45
46.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 42, श्लोक 1–16
47.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 42, श्लोक 20–21

क्र0सं0	सन्दर्भ
48.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 42, श्लोक 23–25
49.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 42, श्लोक 44–48
50.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, प्रथम खण्ड, अध्याय – 58, श्लोक –10
51.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, प्रथम खण्ड, अध्याय – 131, श्लोक 22–27
52.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, प्रथम खण्ड, अध्याय –132, श्लोक 2–10
53.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय –230, श्लोक 5–8
54.	वात्स्यायन कामसूत्र
55.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 30, श्लोक 10–13
56.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 30, श्लोक 18–19
57.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 30, श्लोक 26–31
58.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय –298, श्लोक 2–13
59.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण तृतीय खण्ड, अध्याय – 279, श्लोक 9–11
60.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय –298, श्लोक 25–26
61.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय – 298, श्लोक 20–23
62.	रघुवंश, सर्ग 8, श्लोक 25–26
63.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 75, श्लोक 1–3
54.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 76, श्लोक 16–17
65.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 76, श्लोक 13–21
66.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 78, श्लोक 16–18
67.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 77, श्लोक –8
68.	यजुर्वेद भाष्य, प्रथम भाग, श्रीमद्दयानन्द सरस्वती संवत 2015 विक्रमी की भूमिका
69.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 65, श्लोक – 75
70.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 66, श्लोक 7–9
71.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 70, श्लोक 7–9
72.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 70, श्लोक –6

क्र0सं0 **सन्दर्भ**

73. विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय – 270, श्लोक 2–3
74. विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय – 233, श्लोक 63–64
75. विष्णु धर्मोत्तर पुराण, प्रथम खण्ड, अध्याय – 144, श्लोक 11–17
76. विष्णु धर्मोत्तर पुराण, प्रथम खण्ड, अध्याय – 149, श्लोक 2–9, 15–20

तृतीय अध्याय

राजतंत्र एवं शासन

राजतंत्र और शासन

पुराणोक्त राजधर्म :-

अष्टादश पुराणों में वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित आदि आख्यानों में राजधर्म का विशद उल्लेख प्राप्त है ।[1] सर्वप्रथम धर्मसूत्रकारों ने पौराणिक परम्परा में विहित राजनय तथा व्यवहार (विधि) की महत्ता को समझा, परखा तथा उन्हें अपने सूत्रग्रन्थों में यथोचित स्थान प्रदान किया । गौतम धर्मसूत्र में एक स्थल पर यह निर्देश मिलता है कि न्यायिक निर्णयों में साक्ष्यों की प्रामाणिकता हेतु वेद-वेदांगो के साथ पुराणोक्त राजधर्म को भी व्यवहृत्त करना श्रेयस्कर है ।[2] ज्ञातव्य है कि पुराण शास्त्र भारतीय जीवन में अति प्राचीनकाल से ही इतना रच बस गया है कि इसे हिन्दू मानस से अलग करना बड़ा कठिन है । यही कारण है कि आपस्तम्ब धर्मसूत्र [3] अथवा इस काल की अन्य रचनाओं के काल से मध्ययुग तक अनेक शास्त्रकारों ने पुराणों में विवृत राजधर्म की महत्ता को अनुरेखित किया है । वार्ता, धर्म एव दण्ड को पुराणों ने राज्य व्यवस्था का मूलाधार प्रतिपादित किया है । इसे और पूर्णता प्रदान हेतु इसमें व्यवहार को भी जोड़ा जा सकता है । इन्हीं चारों मूलतत्वों का समन्वय पुराणों में राजधर्म अथवा धर्म माना गया है । ध्यातव्य है कि प्राचीन भारत में उपर्युक्त महत्वपूर्ण विषयों में व्याख्यार्थ दो प्रकार के शास्त्रों में लेखन की परम्परा प्रवहमान थी । प्रथम परम्परा अर्थशास्त्र की थी, जिसे लिखित रूप प्रदान किया था कौटिल्य ने तथा द्वितीय परम्परा धर्मशास्त्र की थी, जिसे विधिवत् आत्मसात् किया था स्मृतिकारों ने तथा परवर्ती स्मृति टीकाकारों एवं निबन्धकारो ने । पुराणकारों ने अपने विशाल वांगमय में इन दोनों परम्पराओं को आदरपूर्वक समाहित करने के अतिरिक्त नीति तथा नैतिक मूल्यों तथा आदर्शो को भी अपने राजधर्म-सिद्धान्त में मिलाने का सफल प्रयास किया है ।[4]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में राजधर्म के अन्तर्गत चारों पुरूषार्थों का सम्यक ज्ञान अभीष्ट बताया गया है ।[5] राजधर्म के अन्तर्गत त्रिवर्ग धर्म, अर्थ एवं काम की प्राप्ति को परम लक्ष्य माना गया है ।[6] त्रिवर्ग की संप्राप्ति से चौथे पुरुषार्थ-मोक्ष का द्वार खुल जाता है । लेकिन क्या राजधर्म का सीधा सम्बन्ध मोक्ष से था ? यह विचारणीय बिन्दु है, क्योकि मेघातिथि ने राजधर्म का सीधा

सम्बन्ध दृष्टार्थ से स्थापित माना है जिसमें षाडगुव्यादि की साधना अभीष्ट है ।[7] परन्तु पुराणों ने दृष्टार्थ के साथ-साथ अदृष्टार्थ अर्थात् अग्निहोत्रादि कर्मों को भी राजधर्म की परिधि में लाने का प्रयास किया गया है । वस्तुतः वृहत्तर अर्थो मे पौराणिक राजधर्म के अन्तर्गत सभी प्रकार के धर्म, आचरण, वर्णाश्रम धर्म, त्रिवर्ग साधना तथा दृष्टार्थ एवं अदृष्टार्थ अभीष्ट कर्मों को समाहित माना जा सकता है । प्रस्तुत सन्दर्भ में जे0डी0एम0 डेरेट का यह कथन यौक्तिक प्रतीत होता है कि महाभारत एवं स्मृतियों में विवृत राजधर्म के समान्तर पुराणकारों ने अपनी युगीन परिस्थितियों तथा देश-काल के अनुरूप हिन्दू जनवर्ग के लिये 'राजधर्म' का परिकल्पन किया था ।[8] इसीलिये पौराणिक व्यवस्था में राजा धर्माध्यक्ष, प्रजाध्यक्ष, लोकाध्यक्ष, सेनाध्यक्ष, कालाध्यक्ष, हन्ता, हर्ता, नेता तथा नीति-नियन्ता आदि रूपों में व्याख्यायित किया गया है ।[9] राज्य की तथा राजत्व की दैवी-उत्पत्ति की अवधारणा, जिसे पुराणेतर साहित्यिक तथा अभिलेखिक परम्पराओं ने भी सम्यक् सम्पुष्टि की है, को पुराण वाङ्.मय में और अधिक महत्वपूर्ण ढंग से स्थापित करने का प्रयास मिलता है ।[10] प्राचीन राजतंत्र में अथवा राज्य व्यवस्था में निहित परमोदेश्य-लोकरंजन अथवा प्रजानुरंजन, को जिसे अर्थशास्त्र, स्मृतियों तथा नीतिग्रन्थों मे विधिवत् स्थापित किया गया है - पुराणकारों ने भी अपनी लेखनी से संपुष्टि की है । पुराणों में राजशासन का मूलोदेश्य 'लोक कल्याण' की कामना प्रतिपादित की गई है ।

<u>विष्णु धर्मोत्तर पुराण में राज्य के सात अंग</u> :-

आलोचित पुराण में राज्य के सात अंगों का सम्यक् उल्लेख प्राव्य है ।[11] सूत्र ग्रन्थों तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र से लोकर स्मृति एवं पुराण वाङ्.मय तक नाम-क्रम में थोड़े बहुत अन्तर के साथ ये सात अंग थे - राजा (स्वामी), अमात्य, जनपद या राष्ट्र, दुर्ग (राजधानी), कोष, दण्ड तथा मित्र ।[12] विष्णु धर्मोत्तर में राज्य शासन के संचालन में राजा तथा राज्य के अन्य अंगों की सुदृढ़ता को विशद रूप से अनुरेखित किया गया है ।[13] ध्यातव्य है कि शुक्रनीतिसार [44] में उक्त सप्तांगों की तुलना शरीर के अंगों से करते हुये आख्यात है कि स्वामी अथवा राजा सिर है, अमात्य (मंत्री) आँखे हैं, मित्र कान हैं, कोष मुख है, सेना बल है, दुर्ग हाथ है तथा जनपद या राष्ट्र पैर हैं । कामन्दक ने इन सातों अंगों को एक दूसरे का पूरक स्वीकार किया है ।[15] मनुस्मृति मे इन अंगों को

राज्य व्यवस्था में न केवल अनिवार्य कहा है अपितु यह भी स्थापित किया है कि इनमें से कोई किसी से न्यूनतर नहीं माना जा सकता है ।[16]

राजा :–

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में राजा को राज्य का प्रधान अंग माना गया है । उसके लिये विविध--शास्त्रों तथा कलाओं की विधिवत् शिक्षा–प्राप्ति आवश्यक बताई गई है ।[17] अन्य हिन्दू पुराणों की भाँति इस पुराण में भी राजत्व की दैवी–उत्पत्ति परिकल्पित की गई है ।[18] राजा की दैवी उत्पत्ति सम्बन्धी इतिवृत्त सर्वप्रथम ऐतरेय ब्राह्मण [19] में प्राप्त है, जिसमें विवृत है कि देवों ने राजा के बिना अपनी दुर्दशा देखकर सर्वसम्मति से उसका चुनाव किया । पी0वी0 काणे की धारणा है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध राजा के चुनाव सम्बन्धी आख्यान इस बात को इंगित करते हैं कि राजा की उत्पत्ति सामरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु माना जा सकता है ।[20] राजस्व में देवत्व की परिकल्पना स्मृतियों तथा नीतिग्रन्थों में भी मिलती है । मनुस्मृति में एक स्थल पर यह उल्लेख मिलता है कि ईश्वर ने प्रजाजनों की रक्षा करने के लिये दिव्य गुणों से युक्त राजा की सृष्टि की थी।[21] पुराणों में राजा में विष्णु के अंश का समाहार माना गया है ।[22] आलोचित पुराण में एक स्थल पर आख्यात है कि राजा विष्णु का अंश है ।[23] विष्णु एवं भागवत पुराणों में भी कहा गया है कि राजा के शरीरांगों में देवताओं का वास होता है ।[24] भागवत पुराण का कथन है कि मनु पुत्र राजा वेन के शरीर में विष्णु के शारीरिक लक्षण विद्यमान थे ।[25] राजत्व में देवत्व की भावना को स्वीकार करते हुये वायु पुराण का निर्वचन है कि अतीत एवं भविष्य के मन्वन्तरों में, जो भी चक्रवर्ती नृपति उत्पन्न हुये अथवा होंगे उनमें विष्णु का अंश प्राप्य है ।[26] मत्स्य पुराण में राजा को देवताओं के समतुल्य कहा गया है ।[27] अग्निपुराण में एक स्थल पर राजा को देवताओं के समकक्ष रखते हुये यह कहा गया है कि वह सूर्य, चन्द्र, वायु, यम, वरुण, अग्नि, कुबेर, पृथ्वी तथा विष्णु प्रभृति देवताओं के कार्यों का संपादन करता है ।[28] पी0वी0 काणे का मत है कि पुराणोक्त राजत्व में देवर्त्व के परिकल्पन के उपर्युक्त साक्ष्यों के आलोक में यह प्रस्तावित करना अभीष्ट प्रतीत होता है कि गुप्तोत्तर अथवा अवान्तर युगीन बहुसंख्यक राजाओं ने अपने को 'सूर्य' अथवा 'चन्द्र' देवों का वंशज कहलाना संभवतः देवत्व की अवधारणा से ही यथोचित समझा था ।[29] पुराणोक्त उक्त

अवधारणा की संपुष्टि संस्कृत ग्रन्थों विशेषकर नाटकों में राजा के लिये बहुशःप्रयुक्त 'देव' संबोधन से भी की जा सकती है ।[30] यही परम्परा हमारे प्राच्य अभिलेखों में भी अनुस्यूत है । अशोक के अभिलेखों मे सम्राट अशोक को 'देवताओं का प्रिय' कहा गया है ।[31] कुषाण नरेश कनिष्क प्रथम स्वयं को 'देवपुत्र' कहलाना अधिक पसन्द करता था । प्रस्तुत विमर्श में अनन्त सदाशिव अल्तेकर का यह मत भी विचारणीय लगता है कि प्राचीन पुराणकारों अथवा ग्रन्थकारों ने राजा एवं देवताओं के विभिन्न कार्यों की समता पर संभवतः अधिक बल दिया है न कि राजा को देवता मानने पर ।[32] अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पौराणित अवधारणा में राजपद तो दैवी माना जा सकता है लेकिन स्वयं राजा अथवा राज्य शासन संचालित करने वाला व्यक्ति नहीं ।

राजपद और धर्म :-

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में आख्यात है कि राजा को धर्मप्रेमी होना चाहिए । राजा वेन के प्रसंग में आलोचित पुराण का निर्वचन है कि वह नास्तिक तथा धर्म वर्जित था ।[32] वह असत् शास्त्र में रुचि लेता था तथा धर्म बाह्य कर्मों द्वारा राजोचित मर्यादा को नष्ट करने में अनुरक्त था ।[33] वह न तो यजन करता था और न ही धर्मार्थ दान आदि ही देता था ।[34] विष्णु धर्मोत्तर पुराण में यह प्रतिपादित किया गया है कि राजा अथवा राजपद-प्राप्त शासक को अपने तथा प्रजा के कल्याणार्थ धर्म में प्रवृत्त होना नितान्त अभीष्ट है ।[35] पुराणकार ने राजा वेन प्रसंग में ऋषियों द्वारा यह कहलवाया है कि पूर्वजन्मों की धर्म, कर्म तथा मर्यादारक्षण आदि सद्वृत्तियों के परिणामस्वरूप देव, गुरु तथा ब्राह्मण आदि की सेवा तथा सम्मान की भावना उत्पन्न होती है ।[36] ऐसे नरेश जो तीर्थ यात्रा, तपस्या, सत्य-वाचन तथा दानादि में संलग्न होते हैं वे अपने राजस सुख-प्राप्ति के उपरान्त परलोक में भी सुख में भागी होते हैं ।[37]

राजा के लक्षण :-

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में राजा के लक्षणों को विशद् रूप से अनुरेखित किया गया है । राजा को राजोचित समस्त लक्षणों से युक्त होना चाहिए ।[38] उसे विनीत एवं प्रियदर्शन होना

चाहिए ।[39] राजा को रूपवान तथा सदा राजकीय वेशभूषा से सज्जित होना चाहिये ।[40] उसे दीन वचन् नहीं बोलना चाहिये तथा धीर, जितेन्द्रिय तथा धर्मसेवी होना चाहिये ।[41] राजा को अंगहीन अथवा अधिकागी अर्थात् विकृतांगी नही होना चाहिये तथा उसेवेदवेदांगादि शास्त्रो मे पारगत होना चाहिये ।[42] आलोचित पुराण में पुराणकार का निर्वचन है कि राजा के लिये अपेक्षित है कि वह भूत तथा भविष्य का सही–सही आकलन करने में समर्थ हो तथा ज्योतिष एवं गणितादि विद्या में पूर्ण निष्णात हो ।[43] उसकी सोच में आस्तिकता का होना नितान्त आवश्यक है ।[44] राजा को ही नांग, वाचाल, कुवेश, मलिन, मुण्डी, नास्तिक तथा पापनिश्चयी नहीं होना चाहिये ।[45] जिस प्रकार देवताओं में अग्निदेव को अग्रणी माना जाता है उसी प्रकार प्रजाजनों का नेता राजा होता है, अतः सद्गुणी होना चाहिये ।[46] राज्य के सम्पूर्ण उत्तरदायित्व का निर्वाह करने हेतु राजा को असत्वृत्तियों के परित्याग तथा सद्गुणों का संचय करना नितान्त अभीष्ट है । पुराणों में अनेकत्र इस बात को दुहराया गया है कि राजा को शूरवीर, नीतिज्ञ, सद्वृत्ती तथा अहंकारहीन होना चाहिये ।[47] जैन पुराणों में विवृत राज्य–व्यवस्था से सम्बन्धित प्रसंगों में राजा के लिये संग्रहणीय गुणों मे धर्मरहस्यज्ञता, शरणागतवप्सलता, दयालुता, विद्वता, विशुद्धहृदयी, पितृपत, प्रजापालक, शत्रु संहारकर्ता, शान्ति कार्यों में अथक्यता तथा सत्यवादिता प्रभृति को परिणगणित किया गया है ।[48] राजा को आत्मरक्षा करते हुये नीतिपूर्वक प्रजापालन करना चाहिये ।[49]

राजा का महत्व :–

आलोचित पुराण में सामाजिक एवं अन्य व्यवस्थाओं के केन्द्र में राजा के अस्तित्व की महत्ता को अनेकत्र इंगित किया गया है ।[50] वस्तुतः राजा राज्य का सर्वप्रधान व्यक्ति होता था ।[51] अर्थशास्त्र में राजा की महत्ता को निरूपित करते हुये उसे ही राज्य तक कहा गया है ।[52] पुराणों में आख्यात है कि राजा के द्वारा ही धर्म का अभ्युदय होता है ।[53] कामन्दक प्रभृति नीतिग्रन्थों में वर्णित है कि पृथ्वी पर पुरुषार्थ चतुष्टय के उपभोग का अधिकार सभी मनुष्यों को प्राप्त अवश्य है परन्तु इनकी संप्राप्ति मानव तभी कर सकता है जब वह राजा द्वारा पूर्ण सुरक्षित हो ।[54] राजा में देवत्व की परिकल्पना संभवतः उक्त अर्थों में ही चरितार्थ होती है ।[55] आलोचित पुराण में प्रजाजनों में सर्वप्रमुख संभवतः इन्हीं अर्थों में कहा गया है ।

राजा–प्रधान सेनापति के रूप में :–

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में राजा के लिये प्रधान–सेनापति के रूप में राष्ट्र–लक्षण के दायित्व निर्वहन को उसके कर्तव्यों मे परिगणित किया गया है ।[56] प्राचीन भारत में परम्परया सैन्य–अभियान क समय राजा अपनी सेना का प्रधान नायक हुआ करता था ।[57] इसे वैदिक परम्परा के पुनरावर्तन के रूप में स्वीकार करने में कोई विप्रतिपन्नता नहीं प्रतीत होती है । अभियान के पूर्व राजा अपनी राजधानी की सुरक्षा की विधिवत् व्यवस्था करता था ।[58] दुर्ग से बाहर हाथी पर सवार राजा के माण्डलिकगण भी सैन्य अभियान के समय उसका अनुगमन करते थे ।[59] सेना के प्रमुख वाहनों में हाथी, घोड़ा तथा रथ विशेष उपयोगी समझे जाते थे ।[60] सैन्य सामानों तथा सैनिकों के लिये उपभोग वस्तुओं को ढ़ोने के लिये ऊँट, बैलगाड़ी, खच्चर तथा गधों को भी काम में लाया जाता था ।[61] पुराणों में यह भी विकृत है कि सैन्य अभियान हेतु प्रस्थान करने के लिये तैयार राजा की पूजा उसकी प्रधान राजमहिषी बड़े विधि विधान से करती थी । वह राजा का आलिंगन करके उनको चन्दन, रोचना तथा अंजन आदि से अलंकृत कर उनके विजय के लिये ईश्वर से वन्दना करती थी तथा राजा के चरणों की पूजा करती थी ।[62]

राज्याभिषेक :–

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में अनेकत्र राज्याभिषेक का वर्णन मिलता है ।[63] अनन्त सदाशिव अल्तेकर ने अथर्ववेद [64] में उल्लिखित 'राजकृत' एवं रामायण में आख्यात 'राजकर्तार' शब्दों को राजा के निर्वाचन के अर्थ में न मानकर राज्याभिषक कराने वाले (संभवतः ब्राह्मण) के अर्थ में स्वीकार करना समीचीन मानते हैं ।[65] परन्तु प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के सूक्ष्म अनुशीलन से ज्ञात होता है कि प्रायः राजा स्वयं अपना उत्तराधिकारी चुनता था तथा उसी का राजसिंहासन के के लिये अभिषेक कराया जाता था । संभवतः जनता को अपना राजा चुनने का अधिकार नहीं था ।[66] प्रस्तुत मत के विपरीत प्राचीन भारत में ऐसे अनेक साक्ष्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं जहाँ राजा का चुनाव जनता ने ही किया था । इस प्रकार के चुनाव के अभिलेखिक साक्ष्यों में रुद्रदामन, हर्षवर्द्धन तथं गोपाल प्रभृति राजाओं को उद्घृत किया जा सकता है ।[67] परन्तु इन आभिलेखिक साक्ष्यों के

उल्लेखों पर यह सन्देह व्यक्त किया जाता है कि संभवतः प्रशास्तिकारों द्वारा लिखे जाने के कारण इनमें ऐतिहासिक तथ्यों को बहुत कुछ बढ़ा–चढ़ा कर प्रस्तुत किया गया है। अस्तु, इन प्रशस्तियों के आधार पर यह मानना विशेष समीचीन नही लगता है कि उत्तम राजाओं का चुनाव प्रजाजनो ने किया था।[68] जूनागढ़ शिलालेख के एक स्थल पर उल्लिखित है कि रूद्रदामन ने स्वयं अपने पराक्रम से 'महाक्षत्रप' की उपाधि प्राप्त किया था।[69] इसी प्रकार गोपाल ने बंगाल में 'मात्स्य–न्याय' को समाप्त करके पालवंश की स्थापना की थी। अस्तु, ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतीय कतिपय प्रशस्तिकारों ने अपने–अपने राजाओं के प्रजा द्वारा चुनाव की बात संभवतः उसके प्रजानुरंजनात्मक कार्यों के आलोक में तथ्य से हटकर भी है। यही बात स्थाणेश्वर नरेश हर्षवर्द्धन के विषय में भी सही लगती हे, जिसे मौखरि नरेश ग्रहवर्मा की मृत्यु के बाद मौखरि साम्राज्य की प्रधान राजमहिषी 'राज्य श्री' तथा उसके सभासदों ने कान्यकुब्जेश्वर के रूप में अपना राजा चुना था। वस्तुतः राज्याभिषेक की परम्परा ऐतिहासिक कालीन प्राचीन भारत में विशेष प्रचलित थी। राजवंशों में वंशानुक्रम में राज्याभिषेक किये जाने की संपुष्टि अनेक साक्ष्यों से होती है। प्रतिभा के परम पारखी (तत्वेशिक्षा चक्षुषा) गुप्तवंशी नरेश चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने पुत्र समुद्रगुप्त को उच्च गुणों से युक्त (आर्य) पाकर सभासदों के सम्मुख अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था।[70] समुद्रगुप्तकालीन एक अभिलेख के अनुसार यह नृपति अपने तात (पिता) द्वारा, जो कि उसकी भक्ति, विनम्रता एवं पुरुषार्थ से अतयधिक प्रभावित था, अभिषेक (राज्याभिषक) एवं सम्राट–पद (राजशब्द विभव) आदि सम्मान के द्वारा पुरस्कृत किया गया था।[71]

आलोचित पुराण में राजपद की प्राप्ति वंशानुक्रम में प्राप्तव्य बताया गया है।[72] इसमें राजा पृथु के संदर्भ में यह स्पश्ट उल्लेख मिलता है कि महाराज वेन की हत्या के उपरान्त उसके योग्य पुत्र पृथु को राज्याभिषेक कराया गया था।[73]

<u>राजपद एवं धर्म</u> :–

आलोचित पुराण में कई स्थल पर विवृत है कि राजा को धर्मज्ञ तथा धर्मनित्य होना चाहिये।[74] राजा को देक्तुल्य मानने का मुख्य आधार उसकी धर्मप्रियता है। इसी भावना के कारण

वह वैदिक मान्यताओं का आदर करते हुये वर्णाश्रम धर्म को प्रतिष्ठित करता है । राजपद को दैवी मानने का संभवतः मुख्य कारण यही रहा होगा कि इससे उसकी आज्ञाओं के यथावत सरलतया अनुपालन में सहायता पहुँचती थी । महाराज वेन के प्रसंग में विष्णु धर्मोत्तर पुराण का कथन है कि धर्म विरत राजा को प्रजाजन न केवल सत्ता से च्युत कर सकती थी अपितु उसकी हत्या भी कर देती थी ।[75]

वेन को पुराणकारों ने नास्तिक तथा धर्मवर्जित कहा है ।[76] प्राचीन भारतीय परम्परा में अधर्मशील, वेदों में प्रतिपादित मर्यादाओं के विपरीत आचरण करने वाले राजा को अपदस्थ करने अथवा अत्याचार बढ़ जाने का उसका वध करना यथोचित माना गया है ।[77] ब्राह्मणों के प्रति राजा के अधिकार सीमित प्रतीत होते हैं । उसे ब्राह्मणों, ऋषियों, तपस्वियों तथा मुनियों को दण्ड देने में बड़ी सूझ–बूझ से काम लेना पड़ता था । सूत्रकाल से लेकर पुराण संकलन काल तक समाज में ब्राह्मणों के प्रति विशेष समादर बना हुआ थं । राजा भी उनके विशेषाधिकारों की रखा करता था ।[78] गौतम धर्मसूत्र में एक स्थल पर यह निर्दिष्ट है कि राजा ब्राह्मणों को छोड़कर सब पर शासन करता हे । ब्राह्मणों को छोड़कर सभी प्रजाजनों को राजा से नीचे आसन पर बैठकर राजा का सम्मान करना चाहिये, क्योंकि राजा का आसन सबसे बड़ा होता है । उक्त सूत्रकार के अनुसार ब्राह्मणों को भी चाहये कि वे राजा का पूर्ण सम्मान करें ।[79] ऐतरेय ब्राह्मण के समय से लेकर पुराण संकलन काल तक राजा एवां ब्राह्मणों के बीच परस्पर सौमनस्य तथा राज्यकार्य में परामर्श की परम्परा प्रवह्मान मिलती है ।[80] विष्णु धर्मोत्तर पुराण में अधर्मी राजा वेन को अपदस्थ करने तथा अच्छे ढंग से राजशासन चलाने के लिये राजा पृथु को राजसिंहासन पर बैठाने का दायित्व ब्राह्मणों का बताया गया है ।[81] प्रस्तुत संदर्भ में मनुस्मृति का यह कथन पर्याप्त महत्वपूर्ण प्रतीत होता है कि जो राजा अपनी प्रजा को कष्ट देता है अथवा धर्म के विपरीत आचरण करता है, वह अपना जीवन, कुटुम्ब तथा राज्य को खो देता है ।[82] शुक्रनीतिसार में एक स्थल पर निर्दिष्ट है कि वह राजा, जो प्रजा को कष्ट देता है, निश्चयतः राक्षसों का अंश होता है । कामन्दक का निर्वचन है कि मूर्खतापूर्ण दण्ड धारण करने से राजा को कौन कहे, तपस्वी मुनियों का भी नाश हो जाता है ।[83] मनु तथा याज्ञवल्क्य का तो यहाँ तक कहना है कि दुष्ट राजा से राजगद्दी छीनलेना चाहिए ।[84]

महाभारत में भी इसी आशय की संपुष्टि की गई है ।[85] आलोचित पुराण में निर्दिष्ट है कि केवल दयालु, विनीत तथा सत्यनिष्ठ व्यक्ति को ही राजा बनाना चाहिए क्योंकि वह राष्ट्र प्रमुख होता है तथा प्रजानुरंजन करता है । 86

नृपचर्या :–

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में ऐसे कई स्थल हैं जहाँ नृपचर्या पर विशद् प्रकाश डाला गया है ।[87] भारतीय चिन्तन में वैदिक साहित्य सेलेकर स्मृतियों एवं पुराणों के प्रणयन तक यह विचार सर्वत्र लिपिबद्ध मिलता है कि राजा का परम कर्तव्य प्रजारक्षण होता है ।[88] प्रस्तुत सन्दर्भ में यह विमर्श का विषय प्रतीत होता है कि प्रजारक्षण का स्वरूप क्या रहा होगा ? प्रथमतः तो यह प्रतीत होता है कि राजा का मूल एवं प्रधान कर्तव्य होता था, प्रजा की जीवन रक्षा तथा सम्पत्ति रक्षा, तदुपरान्त वह वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुरक्षण पर दत्तचित्त होता रहा होगा, क्योंकि प्राचीन धर्मशास्त्र ग्रन्थों में वर्णाश्रम धर्म की रक्षा का मूल दायित्व राजा को प्रदान किया गया है ।[89] विष्णु धर्मोत्तर पुराण का भी निर्वचन है कि राजा को चातुर्वण्य रक्षण के लिए राजा को सतत् प्रयत्नशील रहना चाहिए ।[90] डॉ0 रामशरण शर्मा की यह धारणा प्रस्तुत प्रसंग में यौक्तिक प्रतीत होती है कि राजा द्वारा आश्रम व्यवस्था की रक्षा से परिवार व्यवस्था का भी स्वतः रक्षण हो जाता था ।[91]

राजमंत्री :–

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में राज्य के सप्तांगों में मंत्री की भूमिका पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है । उक्त पुराण के अनुसार मंत्री को ब्राह्मण, वेद तत्वज्ञ, विनीत, प्रियदर्शन, महाउत्साही, प्रियवादी तथा स्वामीभक्त होना चाहिए ।[92] उसे वृहस्पति एवं उसनस् आदि स्मृतियों का सम्यक् ज्ञान तथा नीतिज्ञ होना चाहिए । [93] उसका कार्य राग–द्वेष से परे होना चाहिए तथा लोकापवाद आदि भयों से उसे विनिर्मुक्त रहना चाहिए ।[94] उसे क्षमाशील, विजितात्मा, जितेन्द्रिय, गूढ़मंत्रणा में दक्ष, प्रज्ञावान, भक्तजनों का प्रिय, ततवज्ञ, ऊहोपोहादि से परे सुचिन्त्य व्यक्ति होना चाहिए ।[95] मंत्री को चाहिए कि वह अच्छा योद्धा हो तथा मान एवं विमत्सरादि दोषों से मुक्त हो ।[96] आलोचित

पुराण में गुप्तचरों की व्यवस्था में कुशल, स्नेही तथा सब ओर से चौकस रहने वाला, षाड्गुण्यों के तत्व को सम्यक् रूप से जानने वाले व्यक्ति को मंत्री बनाना यथोचित कहा गया है ।[97] मंत्री को अच्छा वक्ता, व्यवस्थापक, सभी राजभृत्यों को उनके कार्यानुसार नियोजित करने वाला, तथा राजा के न रहने पर राज्य के सभी प्रकार के संकटों को दूर करने में निपुण होना चाहिए ।[98] वस्तुतः मंत्री का विश्वसनीय एवं योग्य होना राजा तथा राज्य दोनों के लिए नितान्त आवश्यक माना गया है ।[99] अर्थशास्त्र के अनुसार जिस प्रकार एक पहिए से रथ नहीं चल सकता, उसी प्रकार मंत्रियों की सहायता के बिना राजा रथ रूपी राज्य को संचालित नहीं कर सकता ।[100] महाभारत का निर्वचन है कि राजा अपने मंत्रियों पर उतना ही निर्भर हे, जितना कि प्राणिमात्र पर्जन्य पर अथवा स्त्री अपने पति पर ।[101] मनु का मानना है कि सरलतया करणीय कार्य भी किसी व्यक्ति को अकेले होने के कारण दुष्कर सा हो जाता है तो फिर राज्य संचालन जैसे महत् कार्य को राजा बिना मंत्री की सहायता से कैसे चला सकता है । लगभग यही बात शुक्रनीति में भी आख्यात है । उसमें एक स्थल पर कहा गया है कि योग्य से योग्य राजा भी सब बातों को नहीं समझ पाता है, क्योंकि हर एक व्यक्ति में बुद्धि वैभव अलग–अलग होता है । अतः राज्य की सब प्रकार की अभिवृद्धि चाहने वाले राजा के लिए यह अपेक्षित है कि वह राज्य–व्यवस्था हेतु योग्य मंत्रियों को चुने, नहीं तो राज्य का पतन निश्चित है ।[102] विष्णु धर्मोत्तर पुराण में एक स्थल पर विवृत है कि राज्य की स्थिरता के लिए तथा विपुल लक्ष्मी की प्राप्ति हेतु राजा को योग्य मंत्रियों को नियुक्त करना चाहिए ।[103]

<u>पुरोहित</u> :–

पुरोहित प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है । ऐतरेय ब्राह्मण ने पुरोहित को 'राष्ट्रगोप' कहा है । विष्णु धर्मोत्तर पुराण में राजा के स्वस्थ कार्य सम्पादन में योग्य पुरोहित की नियुक्ति की महत्ता आख्यात--- है ।[104] गौतम तथा आपस्तम्ब धर्मसूत्रों में पुरोहित के गुणों की सूची प्रस्तुत की गई है [105] आलोचित पुराण में पुरोहित के लक्षणों की चर्चा करते हुए विवृत है कि उसे अव्यङ., प्रियवादी, अथर्व एवं यजुर्वेदों का पूर्ण विद्वान, पंचकल्पविधानज्ञ तथा सुदर्शन/ब्राह्मण होना चाहिए ।[106] अर्थशास्त्र का निर्देश है कि राजा को अपने पुरोहित की सम्मति का उसी तरह समादर करना चाहिए जैसे शिष्य अपने गुरु की बात करता

है ।[107] महाभारत में ऐसे अनेक स्थल प्राप्य हैं जहाँ पुरोहित की योग्यता तथा गुणगत विशिष्टता पर प्रकाश डाला गया है ।[108] अर्थशास्त्र में एक स्थान पर यह उल्लिखित है कि पुरोहित को अथर्व वेद में वर्णित उपायों द्वारा मानुसी तथा दैवी आपदाओं से प्रजाजनों को बचाने का उपया करना चाहिए ।[109] ज्ञातव्य है कि विष्णु धर्मोत्तर पुराण में पुरोहित के लिए अथर्ववेद का पूर्ण विद्वान होना आवश्यक बताया गया है ।[110] पुरोहित की योग्यता, पात्रता तथा कार्यादि पर प्रकाश डालने वाले प्रमुख ग्रन्थों में मनुस्मृति, [111] याज्ञवल्क्य स्मृति, [112] शुक्रनीतिसार [113] तथा अग्निपुराण [114] आदि में पुरोहित के कार्यों का विशद् वर्णन मिलता है । मनु के अनुसार पुरोहित का मुख्य कार्य था, वैदिक स्तुति से धार्मिक कृत्य सम्पन्न कराना । इसके अतिरिक्त न्याय शासन में राजा को सत्परामर्श देना तथा अपराधी के लिए प्रायश्चित व्यवस्था देना भी उसके कार्यों में सम्मिलित माना जा सकता है ।

<u>सेनापति</u> :–

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में निर्दिष्ट है कि सेनापति को कुलीन व्यक्ति होना चाहिए ।[115] उसके गुणों को अनुरेखित करते हुए पुराणकार का निर्वचन है कि राजा को योग्य सेनापति का स्वयं चुनाव करना चाहिए ।[116] उसको उत्तम जातीय, बलशाली, श्रुतज्ञ, रूपवान, सत्वगुणी, उदार, क्षमाशील, महाउत्साही, धर्मज्ञ तथा प्रियवादी होना चाहिए ।[117] आलोचित पुराण के अनुसार सेनापति को स्वामिभक्त, हितसाधक, राज्य व्यवस्था में प्रयुक्त विधानों में सहायक तथा राजा को शुभ कर्मो में नियोजित करने वाला होना चाहिए ।[118] उसे शीलसम्पन्न, यजुर्वेद विशारद, हस्ति एवं अश्व शिक्षा में कुशल, वित्त, वैद्य, चिकित्सा तथा शकुनादि विधाओं में निपुण होना चाहिए ।[119] उसमें क्लेश सहने की प्रवृत्ति कृतज्ञ, शूरकर्म तथा व्यूह तत्व विधनम्यता के गुण होने चाहिए । [120] राजा के लिए अपेक्षित है कि राज्य की रक्षा हेतु वह तेजस्वी, रूपवान तथा प्रियवादी ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वर्णीय पुरुष को सेनापति के रूप में वरण करें ।[121] विष्णु धर्मोत्तर पुराण के उक्त कथन की सम्पुष्टि मत्स्य पुराण [122] अग्निपुराण [123] तथा शुक्रनीति [124] आदि से भी होती है । इन ग्रन्थों में भी कहा गया है कि सेनापति को ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वर्ण से सम्बन्धित होना चाहिए ।

दुर्ग :-

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में कई प्रकार के दुर्गों का उल्लेख मिलता है । इसमे एक स्थान पर विवृत्त है कि राजा को सुचारू विषय शासन के लिए दुर्ग का निर्माण करना चाहिए ।[125] आलोचित पुराण में धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, नरदुर्ग, वार्क्ष दुर्ग, अंबुदुर्ग तथा गिरिदुर्गों मे गिरिदुर्ग को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है । [126] दुर्ग को परिखायुक्त, नृपाट्टालक युक्त, वृहद्कपाट वाले सुन्दर गोपुर से युक्त होना चाहिए ताकि पताकायुक्त गजारूढ़नृपाति उस द्वार से सरलतया आ जा सके । [127] दुर्ग को वीथियों, मार्गों तथा चौराहों से युक्त होना चाहिए ।[128] दुर्ग के भीतर अश्वशाला, गजशाला, आवासीय भवन, प्रशासनिक भवन तथा कोष्ठागार आदि का विधान अपेक्षित है ।[129] विष्णु धर्मोत्तर पुराण में आख्यात दुर्ग विधान वायुपुराण [130] मत्स्यपुराण [131] अग्निपुराण [132] तथा शुक्रनीतिसार [133] में भी प्राप्य है ।

कोष :-

राज्य के समस्त कार्य व्यापार कोष पर आधारित होते हैं । अर्थशास्त्र [134] का निर्वचन है कि राज्य के समस्त कार्य कोष पर निर्भर करते हैं अतः राजा का प्रथम कार्य कोष को समृद्ध करना होता है । विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार कोष राज्य रूपी वृक्ष का मूल है, अतः राजा को प्रयत्नपूर्वक कोष की समृद्धि करना चाहिए, परन्तु कोषार्जन धर्मानुसार ही करना चाहिए ।[135] जो कोष धर्मानुकूल तरीके से अर्जित किया जाता है उससे सब प्रकार की समृद्धि होती है । [136] वस्तुतः कोष राज्य के अन्य छः अंगों का मूलाधार है । महाभारत में एक स्थल पर कहा गया है कि राजा का यत्नपूर्वक सर्वदा कोष की रक्षा करना चाहिए ।[137] मनु का मनना है कि राज्य का कोष तथा शासन व्यवस्था मूलतः राजा की योग्यता के परिचायक हैं ।[138]

मित्र :-

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में राज्य के सप्तांगों में मित्र की महत्ता पर विशद् प्रकाश डाला गया है ।[139] मनुस्मृति में एक स्थल पर कहा गया है कि राजा सोना अथवा राज्य क्षेत्र (भूमि) पाकर भी उतना समृद्धिशाली नहीं हो पाता जितना कि एक सच्चा मित्र पाकर होता है ।[140] एक अच्छे

(अटल) मित्र की प्राप्ति राजा की नीति अथवा सद्प्रयत्न का प्रतिफल माना गया है ।[141] परन्तु राजा के लिए अर्थशास्त्र में भूमि एवं हिरण्य लाभ के उपरान्त मित्र लाभ को वरीयता प्रदान की गई है ।[142] महाभारत में भी मित्र के प्रकारों तथा गुणों का उल्लेख प्राप्य है । [143] कामन्दक के अनुसार राजा के मित्र में स्वच्छता, उदारता, वीरता, सुख–दुखः में साथ रखना, प्रेम परायणता, जागरूकता तथा सच्चाई आदि गुणों का होना आवश्यक होता है ।[144]

राजतंत्र और शासन

1. वि0ध0पु0, द्वितीय खण्ड, अध्याय–65 एवं तृतीय खण्ड, अध्याय–12 तथा अभिषिक्तोऽपि जनताऽपि राजधर्म सनातनम् वामन पु0 9 ।
2. गौतम धर्म0 11, 19
3. आपस्तम्ब धर्म0, 2–23–35
4. जे0डी0एम0 डेरेट द्वारा लिखित फार्वर्ड, ओम प्रकाश ।
5. पोलिटिकल आइडियाज इन द पुराणाज, पृ0 7
6. वि0ध0पु0 2·65 3, मनुस्मृति 8·304 पर मेधा0 भाष्य
7. मनुस्मृति, 7·1 पर मेधा, भाष्य
8. ओम प्रकाश, पूर्वोद्धृत, फोर्वट, पृ0 7
9. वामन पु0 35–8
10. वि0ध0पु0 वायु पु0, 57·72, मत्स्य पु0 226–1–12 आदि ।
11. वि0ध0पु0, द्वितीय खण्ड, अध्याय 64, श्लोक 20–23
12. गौतम धर्म 3·33, अर्थ शास्त्र 6·1, मनु0 1·294, याज्ञवल्क्य 1·353, महाभारत शान्ति· 69·64–65, मत्स्य पु0 225–11 तथा अग्नि पु0 233–12 आदि ।
13. वि0ध0पु0 अध्याय 65
14. शुक्रनीति सार, 1·61–62
15. कामन्दक, 4–1–2
16. मनु0 9·295
17. वि0ध0पु0 द्वितीय खण्ड, अध्याय 65
18. वि0ध0पु0 – 2·4 12–13
19. ऐतरेय ब्रा0 1·14
20. काणे, पी0वी0, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग दो, पृ0 586
21. मनु0 7·3
22. वि0ध0पु0, 1,108·56 तथा 1,13·14

47. वि0ध0पु0 2.4.12

48. पद्म पु0 2–53

49. महा पु0, 4–163, औपपातिक सूत्र, 6, पृ0 20

50. महाभारत, शान्ति0 67, 17,71 2–11 त
    तथा गरुड़ पु0, 1.96.27

51. वि0ध0पु0 द्वि0 खण्ड, अध्याय–4

52. वि0ध0पु0 2–4–12

53. राजा राज्यभिमि प्रकृति संक्षपः ।

------अर्थशास्त्र, 8–2

54. धर्माणां प्रभवस्त्वं हि रत्नामिव सागरः ।।

------पद्म पु0, 66–10

55. का मन्दक, 1.13, शुक्रनीति, 41,103

56. गौतम धर्म0 11–32, आपस्तम्ब धर्म, 1.11.31.5 मनु0 7.48, मत्स्य पु0 226.1 तथा शुक्रनीति, 1,71–72

57. वि0ध0पु0, द्वि.ख., अ0–24, श्लोक 10–17

58. वामन पु0 9.9

59. वामन पु0 9.9

60. वामन पु0 9.9

61. वि0ध0पु0, प्र0ख0, अ. .258, श्लोक 4–15
    द्वि0ख0 अ0 24, श्लोक 13–16, तथा वामन पु0 9.11

62. वि0ध0पु0, प्र0ख0, अ0 29, श्लोक 49–50 तथा द्वि0ख0 अध्याय 40, श्लोक 58–59

63. वि0ध0पु0, अ0 42, श्लोक–7–8

64. वि0ध0पु0 प्र0ख0, अ0 249, श्लोक –4, अ0–249, श्लोक 18 द्वि0 ख0 अ0 21, श्लोक 12 आदि

65. अथर्ववेद, 3–6–7

23. विष्णु ध0पु0 1.107.3
24. वि0ध0पु0 1.13–14 तथा भाग पु0 4.13.23
25. वि0ध0पु0 4–13–23
26. वायु पु0 57–72 तथा महाभारत, शान्ति 67–4
27. मत्स्य पु0 226, 1–12 तथा मार्कण्डेय पु0 27–21–26
28. अग्नि पु0, 226, 17–20, तुलनीय मनु, 7–4
29. काणे, पी0वी0, पूर्वोद्घृत, भाग 2, पृ0 588
30. "सर्व चक्रवर्तिनां धौरेयस्य महाराजाधिराज परमेश्वर श्री हर्ष देवस्य", द्रष्टव्य हर्ष चरित, तृतीय उच्छ्वास, पृ0 23 तथा 40 आदि
31. नील कण्ठ शास्त्री, द एज ऑव नन्दाज ऐण्ड गोर्याज पृ0 208
32. अल्तेकर, अ0स0, प्राचीन भारतीय शासन वद्धति, पृ0–67
33. वि0ध0पु 1.108 . 5
34. वि.ध0पु0 1. 108.6
35. वि0ध0पु0 1.108.7
36. वि0ध0पु0 1.108, 11
37. वि0ध0पु0 1.108 9–10
38. वि0ध0पु0 1.108–11
39. वि0ध0पु0 2.4.4.
40. वि0ध0पु0 2.4.4.
41. वि0ध0पु0 2.4.4.
42. वि0ध0पु0 2.4.5.
43. वि.ध0पु0 2.4.5
44. वि0ध0पु0 2.4.6
45. वि0ध0पु0 2.4.8
45. वि0ध0पु0 2.4. –9–10

66. अ0स0 अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ0 59, तुलनीय "राजकृत" पर सायन–भाष्य "राजनयः किण्वति राज्येऽभिषिञ्चति" तथा रामायण के टीकाकार का "राजकर्त्तारः" पर "राज्याभिषेक" के अर्थ मे भाष्य ।

67. अ0स0अल्तेकर, प्रा0 भारतीय शासन पद्धति, पृ– 59.

68. र0च0मज्मदार, कारपोरेट लाइफ इन ऐश्येण्ट इण्डिया, पृ0--112

69. अ0स0 अल्तेकर, प्रा0 भारतीय शासन पद्धति, पृ–60

70. एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द 4, पृ0–248

71. समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तंभ अभिलेख, पक्ति (श्लोक) 4

72. "तातेन भक्तिनय विक्रमतोषितेन
यो राजशब्द विभवैवरभिषेचानाद्यैः ।
सम्मानिः परमतृष्टि पुरस्कृतेन,
सोडयं ध्रुवो नृपतिरप्रतिवार्य्य–वीर्य्यः ।।"
द्रष्टव्य, उदय नारायण राय, गुप्त सम्राट और उनका युग, पृ0–113

73. वि0ध0पु0, द्वि0ख0 अ0 24, श्लोक–9

74. वि0ध0पु0, प्र0ख0, अध्याय .109, श्लोक–2

75. वि0ध0पु0, द्वि0 ख0, अ0–3, श्लोक– 1–9

76. वि0ध0पु0, प्र0ख0, अ0 109, श्लोक –49–66

77. "अंगस्य वेनः पुभस्तु नास्तिको धर्म वर्जितः।"
वि0ध0पु0, प्र0ख0, अ0–109, श्लोक–5

78. गौतम धर्मसूत्र, 11.1. 7–8

79. गौतम धर्म सूत्र, 11.1. 7–8 तथा
वि0ध0पु0, प्र0ख0, अ0–108, श्लोक 50–56

80. गौतम धर्म सूत्र 8.1.11.27

81. ऐतरेय ब्रा0 4.10.1, तैत्रिरोय संहिता, 2.3–1,
शतपथ ब्रा0, 12.9.3–1–3; गौतम धर्मसूत्र 8.1.11.27

82. वि0ध0पु0, प्र0ख0, अ0 108

83. मनुस्मृति, 7–11.12

84. कामन्दक, 2–38

85. मनुस्मृति, 7, 27 एवं 34 तथा याज्ञवल्क्य स्मृति 1–356

86– द्रष्टव्य, महाभारत, शा0 12–6 तथा 92–19

87. विष्णु ध0पु0, 2.4.2–15

88. विष्णु धर्मोत्तर पुराण – प्रथम खण्ड – अध्याय – 17,18,21,23,25,27,45,47,53,70

89. मनुस्मृति, 7.2

90. विष्णु पुराण – 3.8.21–40, मारकण्डेय पुराण – 122.55–56, मनुस्मृति 7.35, बृहस्पति स्मृति – 18.5, कामन्दकीय नीति सार – 2.34

91. विष्णु धर्मोत्तर पुराण – प्रथम खण्ड अध्याय 25.7–9

92. द्रष्टव्य – आर0एस0 शर्मा – आस्पेक्टस ऑव पोलटिकल आरद्वियाज एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स इन ऐंटयेण्ट इण्डिया पृष्ठ–41

93. विष्णु धर्मोत्तर पुराण – द्वितीय खण्ड अध्याय – 7

94. सतिलक्षणण्यों मंत्री राक्षस्तधैव च ।

ब्राह्मणों वेदतत्वक्षो विनीतः प्रियदर्शनः ।।

स्थूललक्षी महोत्साहः स्वार्मिभक्तः प्रियंवदः ।

बृहत्पत्युशंनः प्रोत्तां नीतिं जानाति सक्तिः ।। वही 2.7.1–2

95. वि0ध0 पुराण 2.7.2

96. वही – 2.7.3

97. वही – 2.7.4

98. वही – 2.7.5

99. वही – 2.7.6

100. वही – 2.7.8–9

101. सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते ।

कुर्वति सचिवोंस्तमात्तेषां च शृणुयान्मतम् ।।

अर्थशास्त्र – 1.3.1. अध्याय – 3

102. महाभारत – 5.37–38

103. अपि यत्सुकरं कर्म तदप्यमेन दुष्करम्

विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम् ।। मनुस्मृति 8–53

104. शुक्रनीतिसार – 28.1

105. एवं गुणो यस्य भवेच्च मंत्री वाक्ये च तथ्याभिर तस्य राक्षः ।

राज्यं स्थिरं स्याद्विपुला च लक्ष्मीर्वंशच दीप्तोभुवनत्रयेऽपि ।।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण – 2.7.14

106. विष्णु धर्मोत्तर पुराण – 2–4–10–14

107. गौतम धर्म सूत्र 11.12–14 एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2.5.10.16

108. विष्णु धर्मोत्तर पुराण – 2.5.2–8

109. अर्थशास्त्र 1.9

110. महाभार – आर्यपर्त – 170.74–75, 174.14–15 शान्ति पर्व 72.2–18

111. अर्थशास्त्र – 4.3

112. विष्णु धर्मोत्तर पुराण – 2.5.2

113. मनुस्मृति – 7–78

114. याज्ञवल्क्य स्मृति – 1–314

115. शुक्रनीतिसार – 2–78–80

116. अग्निपुराण – 239.16–17

117. विष्णु धर्मोत्तर पुराण – 2–24–4

118. वही – 2.24.4

119. वही – 2–24–5

120. वही – 2–24–6

121. वही – 2–24–8–9

122. वही – 2–24–10

123. वही – 2–24–11

124. मत्स्यपुराण – 215–10

125. अग्निपुराण – 220.1

126. शुक्रनीतिसार – 2.429–430

127. विष्णु धर्मोत्तर पुराण – 2.26.6

128. वही – 2.26.6–7

129. वही – 2.26.8–9

130. वही – 2.26.10

131. वही – 2.16.10–28

132. वायु पुराण – 8–108

133. मत्स्यपुराण – 217–6–7

134. अग्निपुराण – 222–4–5

135. शुक्रनीतिसार – 4–6

136. अर्थशास्त्र – 2–8

137. कोशं राज्सयतरोर्भूलं तस्यामद्यत्रं तदर्जने ।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण – 2–61–17

138. वही – 2--61.18

139. वही – 2.16.18–19

140. महाभारत शांति पर्व – 119–16

141. मनुस्मृति – 7–65

142. विष्णु धर्मोत्तर पुराण – 2.65–20–21

143. मनुस्मृति – 7–208

144. वही – 7–206

कला

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कला

विष्णुधर्मोत्तर का तृतीय खण्ड ललित कला विषयक सामग्री की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । इस खंड मे प्रतिमालक्षण, चित्रकला, प्रसाद निर्माण सम्बन्धी विशद विवेचन हुआ है । 'प्रस्तुत सामग्री का पूर्ववर्ती–परवर्ती साहित्यिक संदर्भो एवं पुरातात्मिक सामग्रियों के तुलनान्तमक विवेचन से भारतीय कला के स्वरूप एवं विकास–प्रक्रिया को स्पष्टता के साथ रेखांकित किया जा सकता है । इस प्रकार इस पुराण का तृतीय खंड भारतीय संस्कृति के कला–पक्ष को सम्ग्र ता में रुपायित करने का प्रयास करता है ।

धार्मिक दृष्टिकोण ने भारतीय जनमानस को बहुविध प्रभावित किया है । धर्म की केन्द्रीय स्थिति होने के कारण जीवनशैली और विचारधारा को धर्म ने जिना, अनुप्राणित–प्रभावित किया उतना किसी अन्य तत्व में नहीं । यही कारण है कि एक लम्बे समय तक विदेशी आक्रमणों तथा सांस्कृतिक प्रसार थपेड़ों के बावजूद वाह्य अन्तर दृष्टिगत होते हुए भी मूल सांस्कृतिक अंतश्चेतना अप्रभावित रही । अनेक विद्वानों ने धर्म को प्रतिगामी मूल्यों का सचुच्चय और संवाहक सिद्ध करने का प्रयास किया हैं, किन्तु भारतीय संस्कृति के अस्तित्व एवं सातत्य को बनाये रखने में इसकी महती भूमिका को अस्वीकार करना सहज न होगा ।

इन परिस्थितियों में कला धर्म से कैसे अप्रभावित रह सकती थी । अस्तु, विष्णुधर्मोत्तर पुराण (जिसे धार्मिक ग्रंथ माना जाता है) में कला–विषयक सामग्री का निरुपण स्वाभाविक है । भारतीय परम्परा में कला, आयुर्वेद, राजशासन, विधि आदि को धर्म के अंग के रूप में स्वीकार किया गया । वहाँ से विषय स्वतंत्र न होकर धर्म के अंग के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं ।

प्रतिमा : अर्थ, प्राचीनता, उपयोगिता आदि ।

प्रतिमा निर्माण और उसकी उपासना की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है । ऋग्वेद के विभिन्न स्थलों से विदित होता है कि प्रतिमा उपासना का विषय यद्यपि इस सामग्री को असंदिग्ध नहीं कहा जा सकता । ऋग्वेद के दसवें मंडल में 'प्रतिमा' शब्द का संदर्भ मिलता है ।[2] वरुण को सुवर्ण

कवच धारण किए हुए बताया गया है ।" इन्द्र को बेचने और खरीदने की चर्चा है ।[4] इसी प्रकार इन्द्र को सौ हजार या दस हजार मे भी न बेचने की सलाह दी गई हैं ।[5] इन्द्र और अग्नि को अलंकृत करने का निर्देश है ।[6] वाजसनेयी संहिता का कथन है कि, रुद्र को लाल मुख, नीले गले वाला तथा चर्मधारी होना चाहिए । तैन्तिरीय ब्राह्मण में भारती, इड़ा तथा सरस्वती की स्वर्ण प्रतिमाओं का उल्लेख है ।[7] ऋग्वेद के चतुर्थ मंडल में सात हाथ, चार सींग और तीन पैरों वाले देव की चर्चा है । वेंकेटेश्वर ने इसकी पहचान अग्नि से की है । नी0पु0 जोशी का अभिमत है कि इस प्रकार की मूर्तियाँ मध्यकाल या उसके बाद मिलती हैं । काशी के हंसतीर्थ से उपलब्ध प्रतिमा को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है ।[8]

उपरोक्त संदर्भो को विद्वानों ने मूर्तिपूजा प्रचलन का प्रामणिक आधार नहीं माना है । फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें मूर्तिपूजा के मूल-बीज निहित थे । वैदिक देव-परिवार प्रकृति के विभिन्न उपादानों का सहज मानवीय रूपान्तर था, और जनमानस में प्रकृति की विभिन्न भंगिमाओं के प्रति कौतूहल एवं भय जनित विभिन्न शक्तियों का आविर्भाव हुआ । उन्होंने "जाकी रही भावना जैसी" के अनुरूप अपने जैसे व्यक्तित्व का आरोप उन शक्तियों पर किया । आगे चलकर जब इस दृष्टिकोंण में श्रद्धा एवं भक्ति तत्व का समावेश हुआ, मूर्ति पूजा की सहज आवश्यकता का अनुभव किया गया ।

ब्राह्मणों, आरण्यकों, गृह्यसूत्रों मे देव-प्रतिमाओं का सुस्पष्ट पत्नी तथा जयन्त आदि की मूर्तिपूजा का वर्णन करता है ।[10] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में ब्रह्म के दो रुप स्वीकार किए गए हैं —

1. प्रकृति रुप
2. विकृति रुप

प्रकृति रुप वस्तुतः ब्रह्म का निर्गुण स्वरूप है जो अगम, अगोचर, अव्यक्त, अलक्ष्य है । ईश्वर के इस रूप की साधना सहज संभव नहीं । ब्रह्म की "विकृति रूप" (साकार) ही उपासना आराधना के लिए सहज एवं व्यावहारिक है । एक और भी कारण बताया गया है कि कृत, त्रेता

द्वापर युग में व्यक्ति भगवान का स्वयं ही दर्शन कर सकने में समर्थ था। किन्तु कलियुग में ईश्वर की आराधना प्रतिमाओं द्वारा (विकृति रूप) ही संभव है:-

कृते तु देवायतने.............कुर्यान्नृपसत्तम ।

अतः पुराणों में संदर्भित ईश्वर के साकार रूप को कलाकारों ने विभिन्न कलाओं के माध्यम से सांसारिक भूमिका पर लाने का प्रयास किया।"

प्रतिमा शब्द का उल्लेख ऋग्वेद [12] से ही मिलने लगता है। किन्तु इस शब्द का सम्बन्ध मात्र दवों से ही न होकर पूर्वजों, महान पुरुषों एवं शासकों से भी था। मास के "प्रतिमानाटकम्" इवे प्रतिकृतौ" कहकर प्रतिमा का अर्थ आकृति की सादृश्यमूलक समानता बताया है।[13] पतंजलि ने "अर्चा" एवं प्रतिकृति" शब्दों का प्रयोग किया है।[14] शुक्र ने "अपि श्रेयस्करं नृणां देव बिम्बमलक्षणम्" कहकर "बिम्ब" संज्ञा प्रयुक्त की है। परवर्ती साहित्य में इस अर्थ को अभिव्यंजित करने वाले शब्द हैं -- वयु, तनु, विग्रह, बेर, रुप आदि।

चौथी शती ई0 50 का घोसुण्डी अभिलेख संकर्षण एवं वासुदेव के विग्रह की चर्चा करता है। महाभारत क अनुसार एकलब्य ने धनुर्विद्या मे निष्णात होने के लिए गुरू द्रौणाचार्य की प्रतिमा स्थापित कर शिक्षा ग्रहण की। इसी प्रकार भीम की लौह प्रतिमा धृष्टराष्ट के सम्मुख प्रस्तुत की गई।[15] रामायण में राम द्वारा सीता की स्वर्ण प्रतिमा निर्मित करवाने का उललेख हुआ है-- "काञ्चनी मम पत्नीं च दीक्षामज्ञांश्च कर्मणि।" स्पष्ट है कि प्राचीन काल से ही मूर्तियों का व्यापक प्रचलन था और विशेष रूप से धार्मिक कृत्यों के सम्पादन तथा उपास्य की आराधना में महत्वपूर्ण उपयोगिता भी। विवेच्य पुराण में भी प्रतिमा-निर्माण सम्बन्धी विशद एवं शास्त्रीय विवेचन किया गया है जिसका क्रमागत एवं विश्लेषण परक प्रस्तुतीकरण आगामी पृष्ठों में करने का प्रयास किया गया हैं।

विष्णुधर्मोत्तर में एतद्‌विषयक सामग्री का निरूपण ऋषि मार्कण्डेय (वक्ता) एवं नृप (श्रोता

के परस्पर वार्तालाप के कलेवर में किया गया है । जैसे कि पिछली पंक्तियों में कहा जा चुका है कि ब्रह्म के प्रकृति एवं विकृति, दो स्वरूप होते हैं और विकृति रूप ही सहज एवं बोद्यगभ्य है । ईश्वर स्वयं अपनी इच्छा से अपने इसी रूप को विविध ढंग से प्रस्तुत करता रहता है ।[16]

श्रीमद्‌भागवत का कथन है कि विभिन्न युगों में हरि (ब्रह्म) का स्वरूप भिन्न–भिन्न होता है । सतयुग में वहचार भुजाओं वाला, रूद्राक्ष की माला, दण्ड एवं कमण्डलु को धारण करने वाला है । इस रूप में उनका श्वेतवर्ण शरीर आभूषण रहित होती है ।[17] त्रेतायुग में उसका रूप कुछ परिवर्तित हो जाता है । वह लालवर्ण वाला, चतुर्भज, सुनहरे केश वाला तथा कटि प्रदेश में तीन लड़ियों वाली, चतुर्भज, सुनहरे केश वाला तथा कटि प्रदेश में तीन लड़ियों वाली मेखला धारण किए होता है ।[18] उसकी संज्ञा विष्णु यज्ञ, पृश्निगर्भ, वृषाकपि, उरुगाय, जयन्त आदि हो जाती है ।[19] द्वापर में उसका वर्ण श्याम हो जाता है । पीताम्बर धारी हरि की भुजाओं में शेख, चक्र आदि आयुध वक्षस्थल पर कौस्तुभमणि, श्रीवत्स तथा भृगुलता आदि शोभायमान होते हैं । इसी प्रकार कलियुग में उसका वर्ण कृष्ण हो जाता है ।[20]

प्रतिमा निर्माण की सामग्री :–

ईश्वर को रूपायित करने वाली द्रव्य सामग्री का विशद विवेचन अध्याय तैतालीस का वर्ण्य–विषय है । विष्णुधर्मोत्तर पुराण में शिला, दारु तथा लौह की प्रतिमाएं बनाने का निर्देश हुआ है –– "शिलादारूषु लौहेषु प्रतिमाकरणं भवेत्" ।[21] इसके अतिरिक्त स्वर्ण, ताम्र, चाँदी आदि का प्रतिमाएं बनाने की चर्चा की गई है –– "सुवर्णरूप्यताम्रादि तच्च लोकेषु दर्शयेत्" ।[22] पीपल, पलाश, शाल्मली, वट आदि वृक्षों की लकड़ियों का प्रयोग वर्जित है ।[23] जली हुई, कोटरयुक्त वृक्षों की लकड़ी, कीटों, पतंगों द्वारा विनष्ट की गई लकड़ी भी प्रयुक्त करना शास्त्रसम्मत हीं है ।[24] जहाँ तक उपयुक्त लकड़ी का प्रश्न हैं, हरिद्र, अर्जुन, कदम्ब, नन्दन, शाल, शिंशुप, स्यन्दन, खदिर, किंसुक, घव आदि को प्रतिमा निर्माण के लिए उपयुक्त माना गया है ।[25] इसके अतिरिक्त वर्णानुसार उपयुक्त वृक्षों का रंग भी पुराणकार ने निर्धारित किया है ––

रक्तसारा नरेन्द्राणां शुक्लसारा द्विजन्मनाम् ।

पीतसारा विशां शस्ताः शूद्राणां कृष्णमध्यकाः ।।

अर्थात् रक्तवर्ण, श्वेतवर्ण, पीतवर्ण तथा कृष्णवर्ण के वृक्षों की लकड़ी क्रमश. राजा (क्षत्रिय), ब्राह्मण, वैश्य एवं शूद्र के लिए उपयुक्त है । मत्स्य पुराणकार लकड़ी की बनी प्रतिमा को शुभ फलप्रदायक एवं मंगलकारी बताता है -- "शुभदारूमयी वापि देवतार्चा प्रशस्यते" । 'हरिभक्तिविलास' खदिर की बनी हुई प्रतिमा की चर्चा करता है । निर्मित देव प्रतिमाओं के अनेकानेक पुरा-साक्ष्य मिले हैं । काष्ठ निर्मित देवं प्रतिमाओं के अनेकानेक पुरा-साक्ष्य मिले हैं । सोनरंगदोआब (ढाका जिला) के तालाब से उपलब्ध स्तम्भ पर ध्यानासन विष्णु की आकृति उत्टंकित है । विष्णु को चतुर्भुत दिखाया गया है जिसमें दो हाथों को ऊपर उठाये हुए और दो हाथों को गोद में प्रदर्शित किया गया है । [26] ढाका म्यूजियम में संरक्षित विष्णु की चतुर्भुजी प्रतिमा के भी ध्यानावस्थित मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है । एक अन्य विष्णु की प्रतिमा (स्थानक) तथा गरुड़ की आकृति भी उल्लेखनीय है । गोपीनाथ राव[27] तथा जितेन्द्र नाथ बनर्जी[28] आदि ने बंगाल तथा दक्षिण भारत में आज भी काष्ठ प्रतिमा के उपयोग का उल्लेख किया है जो पुराणाकलीन परम्परा का सूचक है । पुरी में जगन्नाथ सुभद्रा तथा बलराम की मूर्तियां लकड़ी की बनायी जाती हैं । इस प्रकार विष्णु धर्मोत्तर पुराण में लकड़ी की प्रतिमाओं के बनाये जाने की साहित्यिक और पुरातात्विक पुष्ट हो जाती है ।

शिला परीक्षण :-

आलोच्य पुराण में दारु-परीक्षा की ही भांति शिला-परीक्षण सम्बन्धी अध्याय है । जिसमें प्रतिमा के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली शिक्षा की उपयुक्तता तथा अनुपयुक्तता पर विचार किया गया है । विभिन्न वर्णो के लिए भिन्न-भिन्न रंगों की शिलाओं के प्रयोग का निर्देश है जो निम्नवत् हैं [29]:-

ब्राह्मण के लिए -- शुक्ल वर्ण की शिला

क्षत्रिय के लिए -- रक्त वर्ण की शिला

वैश्य के लिए -- पीत वर्ण की शिला

शूद्र के लिए -- कृष्ण वर्ण की शिला

शुक्रनीतिसार मे इन रंगों को गुणों के साथ संयुक्त कर दिया गया है, जैसा कि वर्णों की उत्पत्ति के प्रसंग में रंगों को गुणों का बोधक मान लिया गया हे । तद्नुसार शुक्ल शिला सात्विकी पीतवर्ण तथा रक्त वर्ण की शिला राजसी तथा कृष्ण वर्ण की शिला तामसी गुणों वाली मानी गई। [30]

प्रतिमा के लिए सर्वाधिक उपयुक्त शिला निर्देश इस प्रकार दिया है [31] --

एकवर्णां समां स्निग्धां निमग्नां च तथा क्षितौ,
घातातिभात्रस्पुटनां दृढ़ा मृद्धीं मनोरमाम् ।
कोमलां सिकताहीनां प्रियां दृड.मनसोरपि,
सरित्सलिल निर्धूतां पवित्रां तु जलोषिताम् ।
द्रुमछायोपगूढां च तीर्थश्रयसम मन्विताम्
आयामपरिणाहाढ्यां ग्राह्यां प्राहुर्मनिणिभिः ।

अर्थात् एक वर्ण वाला, कोमल, सिकताहीन, नदी के जल में डूबा हुआ, पृथ्वी में गड़ा हुआ, पत्थर प्रतिमां के लिए चुनना चाहिए । श्वेतवर्ण की शिला यदि काले अथवा लाल वर्ण से से चिह्नित हो तो अच्छी है । वैसे हीरा के सदृश कान्तियुक्त शिला सर्वाधिक उपयुक्त है ।[32] यह काली अथवा श्वेत वर्ण की हो सकती है । इस प्रकार की शिला का प्रयोग धन, सम्पत्ति, पुत्र–पौत्रादि के लिए मंगलकारी होती है [32] --

कृष्णवर्णा शिला या तु शुक्लां हीरकसंयुता ।
सा शिला श्रीकरी ज्ञेया पुत्र पौत्र विवर्धिनी ।।

इसके अतिरिक्त पुराणकार ने रंग के आधार पर प्रशस्त शिलाओं के आठ प्रकार बतायें हैं काली मिर्च के समान कालीं, भौरे के समान काली कपिल वर्ण की, कबूतर के वर्ण की, कुसुम वर्ण की, श्वेत वर्ण की, मूंग के रंग की, कमल के रंग की ।[34]

विष्णु धार्मेत्तर पुराण में भृंगसन्निमः का उल्लेख हुआ है । उल्लेखनीय है कि गान्धार शैली की प्रतिमाओं में काले, चमकदार और चिकने पत्थर का उपयोग बहुतायत में किया गया है ।

महेश्वर के साथ भीमादेवी की प्रतिमा[35] का उदाहरण लिया जा सकता है । देवी के रंग के अनुकूल ही शिल्पी ने पत्थर का उपयोग किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि इसे ही दृष्टिगत रखते हुए पुराणकार ने 'भृगंसन्निमः' को प्रशस्त बताया है ।

बंगाल से (पाल एवं सेनकला) उपलब्ध प्रतिमाओं में राजमहल की पहाड़ियों से उपलब्ध पत्थर का उपयोग किया गया है । मुलायम तथा एकवर्णीय इस पत्थर पर रेखाएं भी दृष्टिगत होती हैं और बालू का अंश भी नहीं होता । विष्णु धर्मोत्तर पुराण में भी बालू का शून्य, एक वर्णीय, मुलायम शिला को प्रशस्त माना गया है । अधिकांशतया बंगाल से उपलब्ध अनेकानेक प्रतिमाएं सम्प्रति ढाका म्यूजियम में संरक्षित हैं ।[36]

इसी प्रकार पुराणकार ने कृष्ण, पाण्डु एवं लाल वर्ण की शिला को प्रशस्त बताया है । इनकी तुलना सारनाथ तथा मथुरा कला की प्रतिमाओं में उपयोग किए जाने वाले पत्थर से की जा सकती है ।

उत्तम शिला की पहचान के लिए पुराणकार का निर्देश है कि शुभ दिन और मुहूर्त में शिला को स्नान कराकर (दूध से) पूजन करना चाहिए । शिल्पी को शिला के समीप सोना चाहिए यदि अच्छे स्वप्न आये तो शिला को उपयुक्त एवं उत्तम समझना चाहिए, अन्यथा नहीं [37] —

स्वप्नार्थं च स्वपेत्तत्र दैवज्ञः स्थपतिस्तथा ... ।

जहाँ तक अप्रयोज्य अथवाअप्रसस्त शिला का प्रश्न है, ध्याय नल्बे में विशद्र विवेचन किया गया है । पुराणकार का कथन है कि –– "विमलं चित्रिधं ज्ञेयं लौहं कास्यं च हेमजम् ।" अर्थात् विमल संयुक्त शिला का उपयोग पूर्णतया वर्जित है । विमल का तात्पर्य संभवतः मिलावट (अशुद्धता) से है । तीन प्रकार की अशुद्धियां संभव हैं ––

1. लौह विमल
2. कांस्य विमल

उपरोक्त प्रकार की शिलाओं के उपयोग का परिणाम शुभ नहीं होता । ऐसा करने पर क्रमशः जन–हानि, सम्मान–हानि, दुर्भिक्ष तथा विपत्ति आ सकती है ।[38] इसके अतिरिक्त सूरज की रोशनी में तपी हुई, टूटी–फूटी, विभिन्न चिह्नों से चिन्हित, क्षारयुक्त तथा दूसरे कार्यों में पहले से प्रयुक्त की गई शिला का भी प्रयोग पूर्णतया वर्जित माना गया है ।

कतिपय शिलाएं ऐसी होती हैं जिनके अन्दर जीव एवं श्रीवाश्म दबे पड़े होते हैं । सरसरी तौर पर इसका ज्ञान नहीं होता । पुराणकार ने इसके निर्धारण के लिए शिला के रंग को आधार माना है, जिसे निम्न तालिकानुसार प्रस्तुत किया जा रहा है [39] ––

शिला का वर्ण	**दोष**
पीववर्ण	गोधा
कृष्ण वर्ण	सर्प
मञ्जीठ सा रंग	मेंढ़क
कपोत वर्ण	छिपकिली (छोटी)
कपिल वर्ण	चूहा
अरुण वर्ण	छिपकिली (बड़ी)
भस्मवर्ण	बालुका
तलवार का रंग	जल

उपरोक्त तालिका से भी यदि पहचान नहीं हो पाती तो शिलाओं का निश्चयात्मक परीक्षण लेप के द्वारा किए जाने का निर्देश प्राप्त होता है । ब्रह्मी, वैष्णवी, शाक्री, माहेश्वरी आदि शिलाओं पर बकरी के दूध का लेपन करना चाहिए । यदि यह लेपन रात भर में नहीं सूख जाता तो वह शिला प्राणिगर्भा होने के कारण त्याज्य है । करवीर, मुस्तक, कुण्ठ, तालीसपत्र आदि शिलाओं पर स्त्री के दूध का लेपन करने पर यदि शिला चमक छोड़ने लगे तो शिला के गर्भ में विष की उपस्थिति समझकर त्याज्य समझना चाहिए । गाय के दूध का लेपन करने पर काशीश पतिकाशीश शिलाएं प्राणीगर्भा होने पर अनेक वर्ण की प्रतीत होने लगी हैं [40] ––

वाहयतो लक्षणं नास्ति तेषां लेपानि दापयेत ।
ब्राह्मीं माहेश्वरीं शाक्रीं वैष्णवीं लक्षणोंचिताम् ।।
अयास्तन्येन सयोज्य शिलालेपं तु दापयेत् ।
अहोरात्रे गते यत्र शिलालेपो न जायते ।।
सगर्भा विजानीयात्प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।
कासीसं पीतकासीसं गत्यक्षीरेंण लेपयेत् ।।
पाषाणं लेपितं तेन बहुवर्ण यदा भवेत् ।
सा शिला न प्रशस्त स्यात्प्राणिगर्भा तु सा स्मृता ।।
मुस्तकं करवीरं च कुष्ठं तालीश पत्रकम् ।
स्त्रीस्तन्यपिष्टैरेतैस्तु पाषाणं लेपयेद्बुधः ।।
एभिर्लोपितमश्मानं यदा सिमसिमायते ।
कालकूटं विषं तत्र न तं हस्तेन संस्पृशेत् ।।

<u>देव – प्रतिमाएं</u> :–

त्रिमूर्ति की अवधारणा प्रकृति की विभिन्न भंगिमाओं ने देववाद की अवधारणा को जन्म दिया । इन देवों को पृथ्वी, आकाश और अंतरिक्ष से सम्बद्ध कर क्रमशः अग्नि, सूर्य और इन्द्र को इनके अधिष्ठातृ–देव के रूप में प्रतिष्ठापित कर दिया गया । इनमें से प्रत्येक का प्रथक–पृथक देव–परिवार था । प्रत्येक परिवार में सदस्यों की कुल संख्या ग्यारह मानी गयी । इस प्रकार देवों की कुल संख्या तैंतीस हो गयी । मूलतः देव–परिवार का यह गठन वैदिक है ।

ब्राह्मण–काल के आते–आते उपरोक्त देव–परिवार के स्वरूप में परिवर्तन दृष्टिगत होता है। आकाश से सम्बद्ध बारह देवों को 'आदित्य' अंतरिक्ष से सम्बद्ध 'रूद्र' (कुल ग्यारह) तथा पृथ्वी से सम्बद्ध 'वसु' (कुल आठ) कहे गये । इस प्रकार वैदिक देवों की संख्या घटकर इक्तीस हो गयी । इस कमी को कभी–कभी द्यौस और पृथ्वी, अश्विन अथवा वृषाकार्य और प्रजापति को मिलाकर पूरा कर लिया जाता था । आदित्य, रूद्र और वसु के आधार पर पौराणिक त्रिदेववाद की अवधारणा का

जन्म हुआ । द्वादश आदित्यों में से केवल विष्णु अपना अस्तित्व बनाए रख सके और प्रमुख स्थान ग्रहण किया, अन्य पृष्ठभूमि में चले गये । यहां तक कि इन्द्र पदावनत कर दिए गए और उन पर अनेक लाञ्छन और दोषारोपण तक किए गए । इसी प्रकार वसुओ मे से ब्रह्मा तथा रुद्रो मे शिवं प्रमुख हुए । विष्णु, ब्रह्मा और शिवं इस त्रिमर्ति के स्तम्भ के रूप में उभरे । जो क्रमशः सृष्टि का पालन करने वाले, सृष्टिकर्ता और संहार करने वाले हैं । देखा जाय तो ये तीनों पृथक और भिन्न हैं । किन्तु तीनों एक ही ईश्वरीय शक्ति से उद्भूद हैं और ईश्वर स्वयं को इन तीनों के रूप में अवसरानुकूल अभिल्यक्त करता है । ऐसी उद्पोषण पुराणों ने की है ।[41] विष्णु धर्मोत्तर पुराण में विष्णु की सृष्टि करने वाली मूर्ति 'राजसी', पालन करने वाली 'सात्विकी' तथा संहार करने वाली रौद्री मूर्ति 'तामसी' कही जाती है [42] ––

ब्राह्मी तु राजसी मूर्तिस्तस्य सर्वप्रवर्तिनी ।
सार्तिविकी वैष्णवी ज्ञेया संसारपरिपालिनी ।।
तामसी च तथा ज्ञेया संहारकारिणी ।

समस्त वैष्णव पुराणों ने विष्णु को प्रमुख (परब्रह्मत्व) प्रदान की है । समस्त ब्रह्माण्ड उन्हीं से उद्भूत और उन्हीं में अवस्थित हैं । विष्णु ही इस सृष्टि के सर्जक पालक और संहारक हैं ––

विष्णोः संकाशादुद्भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम् ।
स्थितसंयमकर्तासौ जगतोऽस्यः जगच्च सः ।।

वस्तुतः विष्णु में ही सत्व, रज, तम शक्तियाँ निहित होती हैं और लीला की इच्छा से ही स्वयं को अनेक रूपों में (क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा, शिव) प्रकट करता रहता है । तीनों गुणों के अनुरूप विभिन्न रूपों का प्रकटीकरण उसकी माया के कारण होता है [43] ––

"स्वमायया वर्तितलोकतत्रम् ।"

साम्प्रदायिक आधार पर विष्णु–शिव में भेद दिखाने का प्रयास किया गया है । ब्रह्मा को लेकर कोई सम्प्रदायगत आन्दोलन नहीं खड़ा हो सका । वैष्णवों ने विष्णु को परब्रह्मस्वरूप मानते

हुए शिव के ऊपर उनकी श्रेष्ठता स्थापित की है । इसी प्रकार शैवों ने भी शिव को श्रेष्ठ बताया है । ऐसा दृष्टिकोण प्रतिपादित करना वेद शास्त्रंसम्मत कदापि नहीं माना जा सकता । विष्णु पुराण, जो कि विशुद्ध रूप से वैष्णव पुराण है, में शिव और विष्णु को परस्पर अभिन्न एवं एक माना गया है । फिर दोनों के बीच विभाजक रेखा खींचना और एक दूसरे को ऊँचा-नीचा दिखाने का कोई औचित्य नहीं हैं [44] --

एका तनुः स्मृता वेदे धर्मशास्त्रे पुरातने ।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के चौवालींसवें और अड़तालीसवें अध्याय में त्रिमूर्ति के निर्माण का वर्णन किया गया है । पृथक रूप से त्रिमूर्ति के रूप का वर्णन न होकर अनन्त, त्रिमूर्ति, सूक्ष्म, नीलकंठ, शिव शिखण्डी, एक नेत्र, एक रूद्र आदि शिव रूपों के साथ हैं [45] --

अनन्तश्च त्रिमूर्तिश्च सूक्ष्मः श्रीकण्ठ एवं च ।
शिवश्शिखण्ड्येकनेत्र एकरूद्रश्च ते क्रमात् ।।

उपरोक्त देवों की जटा का वर्ण दिशाओं के वर्णानुरूप, तीन नेत्रों युक्त, शर-त्रिशूल धारण करने वाला, एक मुख वाला बनाने का निर्देश पुराणकार ने दिया है [46] --

दिग्वणा जटिलस्त्र्यक्षाश्शरत्रिशूलधारिणाः ।
पुटाञ्जलि करास्सर्वे विद्येशाश्चैकवक्त्रकाः ।।

उभाकामिकागम नामक ग्रंथ का अभिमत है कि शिव को बीच में तथा ब्रह्मा और विष्णु को पार्श्व में स्वाभाविक रूप में बनाना चाहिए । इसके अतिरिक्त यह त्रिमूर्ति एकपाद वाली, रक्तवर्ण, जटामुकुटयुक्त तथा तीन नेत्रों वाली होनी चाहिए --

रक्तवर्णः त्रिनेत्रश्च वरदाभयहस्तकः ।
कृष्णापरशुसंयुक्तो जटामुकुटमण्डितः ।।
ऋज्वागतस्तथैकेन पादेनापि समन्वितः ।[47]

इसके विपरीत अशुमद्‌भेदागम में त्रिमूर्ति को रूकरूद्र के समान, एक नेत्र, एक पाद वाली बताया गया है ––

एकरूद्रमिवाबैव त्रिमूर्ति चैव कारयेत् ।[48]

राव ने [49] उमाकामिकागम ग्रंथ में संदर्भित अन्य प्रकार की त्रिमूर्ति का उद्‌घाटन किया है। स्थूलतया यह मूर्ति पूर्वोलिखित मूर्ति के अनुरूप ही होती है । परिवर्तन की दृष्टि से देखा जाय बीच के पीठ पर शिव के लिंगविग्रह की जगह उनका कोई रूप होता है –

दक्षिणोत्तरयोश्चैव पार्श्वयोरूभयोरपि ।

कटिप्रदेशादूर्ध्वं तु ब्रह्माविष्णूर्ध्वकाययुक् ।।

....

....

....

....

अथवा मध्यमे लिंग पृथगालयसंस्थितम् ।

तस्यसल्येऽप्यसल्ये च ब्रह्मविष्णु तथा मतौ ।।

भिन्न प्राकारगावापि एकप्राकारसंस्थिताः ।

नृत्यमूर्त्यादिदेवा वा स्थापनीयास्तु मध्यमे ।।[50]

राव के अनुसार त्रिमूर्ति दो प्रकार की हो सकती है ––

(क) <u>वैष्णव त्रिमूर्ति</u> :– विष्णु मध्य में होते हैं । शिव और ब्रह्मा को अगल''बगल दर्शाया जाता है ।

(ख) <u>शैव त्रिमूर्ति</u> :– शिव मध्य में और विष्णु तथा ब्रह्मा पार्श्व में बनायें गए हो ।

<u>कला सम्बन्धी प्रमाण</u> :– उपलब्ध कुछेक उदाहरण निम्नवत् हैं –

1– नागलपुरम् से उपलब्ध एक वैष्णव त्रिमूर्ति में विष्णु को मध्य में प्रदर्शित किया गया है । दायीं ओर ब्रह्मा तथा बायीं ओर से शिव को निकलता हुआ दिखाया गया है । यह प्रतिमा

एकपाद प्रतिमा का उदाहरण है क्योंकि शिव और ब्रह्मा को विष्णु के कटिभाग के ऊपर वाले हिस्से से निकलता प्रदर्शित किया गया है ।

उपरोक्त के अतिरिक्त राव महोदय ने [51] नागलापुरम् से ही उपलब्ध शैव-त्रिमूर्ति का उदाहरण दिया है । शिव मध्य में हैं और विष्णु तथा ब्रह्मा पार्श्व से निकलते हैं ।

2. ग्वालियर संग्रहालय में सुरक्षित (पढ़ुली से उपलब्ध) त्रिमूर्ति तीन मुखों वाली है । बीच का मुख सौम्य एवं सुन्दर है । दायां मुख पुरुष आकृति है जो भयंकर रूप प्रदर्शित करता है । जबकि बायें मुख की पहचान बनर्जी ने स्त्री मुख के रूप में करते हुए शिव के कल्याणकारी और रौद्र स्वरूप का अंकन स्वीकार किया है ।[52] किन्तु विष्णु धर्मोत्तर पुराण के आधार पर यह त्रिमूर्ति प्रतिमा है । जिसे बनर्जी ने स्त्री मुख कहा है वह स्त्री मुख न होकर पुरुष-मुख (विष्णु-वासुदेव) है जिसका केश-विन्यास सुघड़ एवं मुखाकृति आकर्षक है । इसे आलोच्य पुराण के संदर्भ के अनुरूप माना जाना चाहिए ।

"शिरः पद्‌मस्तथैवास्य कर्तव्यः चारूकर्णिकः ।"

3. एलीफैन्टा से उपलब्ध त्रिमूर्ति प्रतिमा की मध्य एवं दाहिनी मुखाकृति सुन्दर एवं शान्त है किन्तु बायीं भयंकर एवं रौद्र स्वरूप की द्योतक है । स्टैला क्रैमरिश ने इसका समीकरण शिव के बामदेव एवं अघोर रूप से किया है । राव ने [54] महेश प्रतिमा स्वीकार करते हुए शिव के तीन स्वरूपो का समीकरण तीनों मुखों से कियका है । बनर्जी [55] का मत सबसे अलग प्रतीत होता है । उन्होंने तीसरे मुख का अस्तित्व ही अस्वीकार किया है । उनके अनुसार इस प्रतिमा में शिव का 'सुन्दर' तथा शक्ति का रौद्र स्वरूप अंकित किया गया है । किन्तु इन्दुमती मिश्र [56] विष्णु धर्मोत्तर पुराण में संदर्भित "त्रिलोचनानि सर्वाणि बामदेव द्रिलोचनम्", [57] "ब्रह्माणं कारयेद्विद्वान्देवं सौम्यं," [58] तथा "दक्षिणं तु मुखं रौद्रं भैरवं तत्प्रकीर्तिम्" [59] के आधार पर उपरोक्त मतों का तार्किक प्रतिवाद किया है । आपके मतानुसार आलोचित मूर्ति त्रिमूर्ति का ही उदाहरण है ।

5. खजुराहो के दूलादेव मंदिर की तीन सिरों तथा आठ हाथों वाली प्रतिमा । चिन्तौड़गढ़ की प्रतिमा जिसे राव ने महेश प्रतिमा माना है ।[61]

अपराजित पृच्छा जैसे कतिपय ग्रंथों मे ब्रह्मा, विष्णु, शिव की त्रिमूर्ति के अतिरिक्त सूर्य, हर तथा हिरण्यगर्भ, चन्द्र, सूर्य तथा ब्रह्मा, सूर्य, हर और हिरण्यगर्भ आदि से सम्बन्धि त्रिमूर्ति की चर्चा मिलती है । किन्तु इन संदर्भों को श्रेद्धेय नहीं माना जा सकता क्योंकि इनके पुरातात्विक अथवा कलात्मक साक्ष्य अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं और न ही कोई आख्यानपरक अथवा परम्परा सम्बन्धी उदाहरण ही दिया जा सकता है । जहां तक सूर्य, हर और हिरण्यगर्भ की त्रिमूर्ति का प्रश्न है अधिक से अधिक सूर्य का तादाम्य विष्णु के साथ करते हुए त्रिमूर्ति की अवधारणा के साथ सामंजस्य बैठाया जा सकता है, जिसका सुदृढ़ आधार वैदिक साहित्य है । बनर्जी [62] महोदय ने पन्ना राज्य से उपलब्ध प्रतिमा को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया है ।

वैदिक साहित्य में विष्णु एक साधारण देव के रूप में दिखाई देते हैं । उनके यश का कारण संभवतः उनके द्वारा मात्र तीन पगों में ही सम्पूर्ण विश्व की परिक्रमा कर लेनें के कारण है । उनकी तीव्र गति के कारण 'उरूक्रम' और विक्रम [63] पद–विश्लेषण प्रयुक्त किए गए हैं । उन्हें 'उपेन्द्र' और 'इन्द्रावरज' –– इन्द्र का छोटा भाई, भी कहा गया है ।[64] बहुत से युद्धों में उन्होंने इन्द्र का साथ दिया है, इन्द्र के विशेष रूप से विश्वासपात्र हैं । इसलिए उन्हें 'इन्द्रस्य युज्यः सखा –– इन्द्र का प्रिय मित्र, इन्द्र की इच्छा के अनुरूप कार्य करने वाला बताया गया है । [65] विष्णु को ऋग्वेद में भी उपास्य माना गया है किन्तु उनकी उपासना सुकर नहीं हैं [66] ––

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ।

शतपथ ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय आरण्यक आदि ग्रंथों के आधार पर कहा जा सकता है कि विष्णु के महत्व में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही थी । बाद में त्रिदेववाद की अवधारणा तथा पौराणिक पृष्ठभूमि में विष्णु सर्वाधित महत्वपूर्ण देवता बन एग । आलोचित पुराण के अध्याय 44, 47, 60 तथा 85 विष्णु के रूपविधान एवं उनके रूपायन का विशद शास्त्रीय विवेचन करते हैं ।

विष्णु के साधारण स्वरूप को निरूपित करते हुए पुराणकार का अभिमत है कि विष्णु की दो भुजाओं वाली एक मुखी प्रतिमा होनी चाहिए ।[67] मुनियों द्वारा स्तुति किए जाने पर विष्णु ने अपना चतुर्भुजी रूप दिखलाया । उनके तीन हाथो में शंख, चक्र तथा गदा रहतीहै [68] --

विष्णुभावहयिष्यामि शंखचक्रारादाघरम् ।

चौथा हाथ निश्चय ही अभय मुद्रा में होना चाहिए जो प्रजानिर्माणकारकम् [69] से स्पष्ट है । खजुराहो से उपलब्ध [70] कतिपय गरुड़ासीन चतुर्भुजी प्रतिमाएं उपरोक्त के सदृश ही अभय-मुद्रा मे प्रदर्शित की गई हैं। एक प्रतिमा में तो अभय-मुद्रा वाला हाथ अक्षमालायुक्त भी है ।

विष्णुधर्मोत्तर के अनुरूप ही विष्णु पुराण का भी कथन है कि देवों द्वारा आर्तनाद करने पर विष्णु ने चतुर्भुज रूप में अपने को प्रकट किया --

जातोऽसि देवदेवे शंखचक्रगदाधरम् ।
दिव्यरूपमिदं देवं प्रसादेनोपसंहार ।।[7]

मत्स्यपुराण दो, चार अथवा आठ भुजाओं वाली प्रतिमाएं बनाने का आदेश देता है ।[72] इसी प्रकार का निर्देश बृहत्संहिता में भी है --

कार्योऽष्टभुजो भगवांश्चतुर्भुजो द्विभुज एव वा विष्णुः ।[73]

भागवत पुराण[74] तथा अग्निपुराण[75] ने भी विष्णु की गरुड़ासीन प्रतिमा को अष्टभुजी बनाने का अभिमत प्रकट किया है । विभिन्न पुराणों में वर्णित अष्टभुजी प्रतिमाओं के हाथों में आयुधादि कतिपय अन्तर भी है जो निम्नलिखित हैं --

<u>अग्नि पुराण के अनुसार</u> :-

दाएं के चार हाथ - खड्ग, गदा, शरयुक्त तथा वरद मुद्रा ।
बाएं के चार हाथ - धनुष, खेटक, चक्र, शंख ।

<u>मत्स्यपुराण के अनुसार</u> :-
दाएं के चार हाथ - खड्ग, गदा, शर, पद्म ।

वायुपुराण के अनुसार ध्रुव को दर्शन देते समय विष्णु का स्वरूप चतुर्भुज ही था । किन्तु आगे के वर्णन के आधार पर हम उसे अष्टभुजी, रूप कह सकते हैं, क्योंकि उनकी भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, धनुष तथा शार्ङ. कुल छः आयुध थे । संभवतः दो भुजाएं अभय एवं वरद मुद्रा में थीं --

शंखचक्रगदापद्मशार्ङ.वरासिध रच्युत ।[76]

भगवतपुराण ने विष्णु को पीताम्बर वनमाला, कौस्तुममणि, श्रीवत्स, मकरकुण्डल तथा किरीट मुकुट धारण करने वाला बताया है । यह वेश 'शिल्पसार' के 'गरुड़नारायण' के अनुरूप प्रतीत होता है ।[77] जहाँ तक चतुर्भुजी प्रतिमा का प्रश्न है, मत्स्यपुराण विष्णु के स्वरूप पर अधोलिखित ढ़ंग से प्रकाश डालता है --

दाएं की दो भुजाएं – गदा एवं पद्मयुक्त
बाएं की दो भुजाएं – शंख एवं चक्रयुक्त

विष्णु के चरणों के बीच भू–देवी, दांए ओर गरुड़ तथा बायीं ओर पद्महस्ता लक्ष्मी का अंकन होना चाहिए । साथ ही मूर्ति की पृष्ठभूमि (प्रभावली) में गन्धर्व, विद्याधर, पत्रवल्ली, सिंह–वयाल, कल्पकता आदि का अंकन होना चाहिए ।

आयुधादि के संदर्भ में विष्णुधर्मोत्तर का कथन है कि शंख, चक्र, गदा, पद्म वस्तुतः प्रतीक हैं जिसके अर्थ क्रमशः आकाश, पवन, तेज और जल हैं –

स्वं विजानिहि देवस्य करे शंखो महाभुजः ।
चक्रं जानाहि पवनं गदा तेजस्तथा विभो ।।
आयः पद्मं विजनिहि पादमध्ये व्यवस्थितम् ।[78]

उपलब्ध कतिपय विष्णु प्रतिमाएं --

1. **बनर्जी द्वारा उद्धत [79] चतुर्भुजी प्रतिमा के तीन हाथों में शंख, चक्र तथा गदा है तथा चौथी भुजा अभयमुद्रा में प्रदर्शित की गई है, जिसे विष्णु धर्मोत्तर तथा अन्य**

2. ढाका से उपलब्ध वाले पत्थर से निर्मित विष्णु की चतुर्भुजी प्रतिमा, जिसे अभय मुद्रा मे प्रदर्शित न कर शंख, चक्र, गदा तथा पदम् युक्त बनाया गया है ।[80] यहीं से उपलब्ध चतुर्भुजी प्रतिमा जिसे अभय मुद्रा में प्रदर्शित कियका गया है ।[81]

3. उदयगिरि गुफा से उपलब्ध जीर्ण–शीर्ण चतुर्भुजी प्रतिमा जिसमें आयुध–पुरुष का अंकन मिलता है ।[82]

विष्णु के अन्यान्य स्वरूप :–

1. **वासुदेव** :– आचार्य शंकर ने चतुर्व्यूह सिद्धान्त की भिन्न व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि वासुदेव में सभी छः गुणों (ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीरर्य तथा तेज) का सन्निवेश होता है ।[83] इन्ही गुणों में से दो–दो का आश्रय लेकर संकषर्ण (जीव), प्रद्युम्न (मन) तथा अनिरूद्ध (अहंकार) का आविर्भाव होता है । वस्तुतः सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड वासुदेव में व्याप्त हैं । उनकी वासुदेव संज्ञा की अर्थवत्ता इसी में सन्निहित है –5

सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः ।
ततः सः वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते ।।[84]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वासुदेव के शरीर के रंग की तुलना जल से लदे श्याम मेघ से की गई है । उन्हें चार भुजाओं वाला, आभूषणों से शोभायमान सुन्दर एवं आकर्षक व्यक्तित्व वाला निरूपित किया गया है ––

एकवस्त्रश्चतुर्बाहः सौम्यरूपः सुदर्शनः ।
सलिलाध्मातमेघाभः सर्वाभरणभूषितः ।।[85]

वासुदेव से हाथों में अंगद तथा केयूर, गले में वनमाला, शंख जैसे कंठ, कानों में कुण्डल हृदयस्थल पर कौस्तुममणि तथा सिर पर किरीट मुकुट शोभायमान होता है [86] ––

कण्ठेन शुभदेशेन कम्बुतुल्येन राजंता ।
वराभरणयुक्तेन कुण्डलोत्तर भूषिणा ।।
अंगदी बद्धकेयूरो वनमाला विभूषण. ।
उरसा कौस्तुभं बिभ्रात्किरीटं शिरसा तथा ।।

आलोकित पुराण में कौस्तुभमणि तथा वनमाला का प्रतीकार्थ भी स्पश्ट किया गया है । जिसके अनुसार कौस्तुभ–मणि शुद्ध ज्ञान का प्रतीक है जबकि वनमाला सम्पूर्ण चराचर को आबद्ध करने वाली मेखला सदृश है । पुराणकार ने वासुदेव के चार मुखों को बल, ज्ञान, ऐश्वर्य तथा शक्ति का प्रतीक बताया है । वासुदेव के हाथ में सूर्य और चन्द्रमा बनाया जाना चाहिए जो पुरुष–प्रकृति के प्रतीक हैं । वासुदेव के पैरों के बीच सुन्दर स्त्री के रूप में भू–देवी का अंकन होना चाहिए जो विस्मित नेत्रों से वासुदेव को देखती हुई प्रदर्शित की गई हो ––

मध्येन त्रिबलि .... देवदर्शनविस्मिता ।[87]

वासुदेव के सिर पर सुन्दर कमल पुष्प बनाना चाहिए । उनकी स्वस्थ भुजाओं में कमल तथा शंख होते हैं । दाहिनी तरफ गदा तथा वासुदेव को निहारने वाली चामरधारिणी सुन्दर स्त्री की आकृति होती है जिसके सिर पर उनका दाहिना हाथ होता है । बायीं ओर चक्र पुरुष बनाया जाना चाहिए । वासुदेव का बायां हाथ चामरग्राही चक्र पुरुष के सिर पर होता है ।[88] बनर्जी ने उदयगिरि गुफा से प्राप्त गुप्तकालीन प्रतिमा को उपरोकत मानदण्डों के अनुरूप निर्मित वासुदेव–प्रतिमा का उत्कृष्ट उदाहरण माना है ।[89]

2. **संकर्षण** :– संकषर्ण का कार्य जगत् की सृष्टि करना और ऐकान्तिक मार्ग का उपदेश करना ।[90] आचार्य शंकर का अभिमत है कि वासुदेव के छः गुणों में से दो (ज्ञान और बल) संकर्षण में निहित होते है ।

1. अनन्त रूप
2. बलराम रूप

3. **बलराम** :– विष्णु के अन्यान्य रूपों में से एक है । इन्हे कृष्ण का बड़ा भाई भी कहा जाता है । विष्णु धर्मोत्तर पुराण में उन्हें मूसल और हल धारण किए हुए प्रदर्शित किया गया है । उनका वर्ण श्वेत है और वे नीला वस्त्र धारण करते हैं [91] ––

स तु शुक्लवपुः कार्यो नीलवासा यदूत्तः ।
गदास्थाने च मुसलं चक्रस्थाने च लाड.लम् ।।

उनके नेत्र सदैव ही मदिरा पान के कारण मदोन्मत्त दिखायी पड़ते हैं । श्रीमद्भागवत[92], बृहत्संहिता[93] अग्निपुराण[94] आदि वैष्णव पुराण उनके मदोन्मत्त स्वरूप का वर्णन करते हैं । बलराम के पार्श्व में नीले वर्ण के दो प्रतिहारी (वसुभद्र सुभद्र) मुद्‌गर लिए होते हैं ––

सुभद्र वसुभद्राख्यौ वीरौ प्रासकरावुभौ ।
नीलवर्णौ महाभागौ तथा मुद्‌गरधारिणौ [96] ।।

बलराम, (संकजीव) का स्वरूप शत चन्द्रमा के सदृश धवल वर्णयुक्त, जलयुक्त मेघों के सदृश नीले वस्त्र को धारण करने वाला प्रदर्शित किया गया है । उन्हें हल तथा मुसल के अग्रभाग से दैत्य का संहार करते हुए प्रदर्शित किया जाना चाहिए । दैत्य को कातर नेत्रों से उन्हें देखता हुआ रूपायित किया जाना चाहिए ––

शशांकशतसंकाशं सतोयाम्बुदवाससम् ।
एहि संकर्षणाचिन्त्य देवभक्तजनप्रिय ।।
लांगूलाकृष्टदैल्येन्द्र दीनेक्षण निरीक्षण ।
मुसलाग्रविनिर्भिन्नतमोमूर्तिविनाशन [97] ।।

4. **प्रद्युम्न** :– श्रीमद्मारावत के अनुसार वे कामदेव वासुदेव के ही अंश हैं [98] ––

कामस्तु वासुदेवांशों दग्धः प्राग्रूद्रमन्युना ।
देहोपपत्तयेभूयस्तमेव प्रल्यपद्यत ।।
स एव जातो वैदर्म्यां कृष्णवीर्यसमुद्‌भवः ।
प्रद्युम्न इति विश्चातः सर्वतोनवमः पितुः ।।

वस्तुतः वे वासुदेव के ऐश्वर्य और वीर्य गुणों से उद्‌भुत हैं और वाहयतः श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व से इतनी अधिक समानता है कि स्वयं उनकी मां रूक्मिणी को भ्रम हो गया --

कथं त्वनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ङ.धन्वनः ।
आकृत्यावयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः [99] ।।

भागवतकार ने उपरोक्त को दृष्टिगत रखते हुए प्रद्युम्न का चित्र खींचा है । उनके शरीर का रंग वर्षाकालीन मेघ के सदृश है । उनके शरीर पर कौशेय पीताम्बर है । वे आज्ञानुबाहु हैं । स्मित मुस्कान से युक्त कमलवत् पर काले घुँघराले बाल शोभायमान हैं --

तं दृष्ट्वा जलदश्यायं पीतकौशेयवाससम् ।
स्वलंकृतमुखाम्बोजं नीलवक्रालकालिभिः[100] ।।

विष्णु धर्मोत्तर में उनका रंग नवीन दूर्वांकुर-दल जैसा बताया गया है । श्रीमद्‌भागवत के पीताम्बर की जगह वे चन्द्र सदृश धवल वस्त्र धारण करते हैं । इस रूप में वे कामदेव की भाँति कमनीय एवं चित्ताकार्षक दिखायी देते हैं ।[101]

चक्र और गदा वासुदेव के परम्परागत आयुध माने जाते हैं । प्रद्युम्न के आयुध भिन्न हैं । विष्णु धर्मोत्तर ने वासुदेव के चक्र के स्थान पर धनुष तथा गदा की जगह बाण रखने (रूपायित करने) का निर्देश दिया है --

वासुदेवस्य रूपेण प्राद्युम्नो तथा भवेत्
स तु दूर्वाङ्.कुर श्यामः सितवासा विधीयते ।
चक्रस्थाने भवेच्चापं गदास्थाने तथा शरम् ।।[101]

5. अनिरुद्ध :- अनिरुद्ध व्यूह-सिद्धान्त के अंतिम सोपान माने जा सकते हैं । शंकराचार्य केअनुसार अनिरुद्ध (अहंकार) की उत्पत्ति प्रद्युम्न (मन) से होती है । अनिरुद्ध में तेज और शक्ति गुणों की प्रधानता मानी गई है । उनका कार्य मोक्ष के रहस्य की शिक्षा देना है ।

कामावतार प्रद्युम्न के पुत्र होने के कारण अनिरुद्ध अतिशय रूपवान हैं । श्रीमद्भागवत के वर्णन के अनुसार वे प्रद्युम्न के सदृश ही है --

कामात्मज त भुवनैकसुन्दर
श्यामं पिशङ्गाम्बरभम्बुजेक्षणम् ।
बृहद्भुजं कुण्डल कुन्तलत्विषा ।
स्मितावलोकेन च मण्डिताननम् ।।[103]

विष्णु धर्मोत्तर को कमल की आभायुक्त वर्ण वाला तथा लालवस्त्रधारी बताया गया है । प्रद्युम्न की ही भाँति अनिरुद्ध के आयुध वासुदेव से अलग है । वासुदेव के आयुध चक्र के स्थान पर चर्म और गदा के स्थान पर खड्ग रूपायित करना चाहिए । आकृति की दृष्टि से चर्म का आकार चक्र जैसा होंना चाहिए --

पद्मपत्राभवपुषो रक्ताम्बरधरस्य तु ।
चक्रस्थानें भवेच्चर्म गदास्थानेऽसिरेव च ।।
चर्मस्याच्चक्ररूपेण प्रांशुः खड्गो विधीयते ।[104]

विष्णु धर्मोत्तर का अभिमत है कि व्यूहों की उपासना भिन्न-भिन्न अभिलाषाओं, आकांक्षाओ की सिद्धि के लिए की जाती है । जहाँ मोक्ष की अभिलाषा करने वाले वासुदेव की उपासना करते है वहीं धार्मिक - आकांक्षा, अर्थ - कामना, काम प्राप्ति के लिए क्रमशः अनिरुद्ध, संकषर्ण तथा प्रद्युम्न की पूजा करते हैं । वस्तुतः चतु. व्यूह की उपासना सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाली है -

सर्वकामप्रदं देवं चतुमूर्तिं तु पूजयेत् ।
पूजयेदनिरुद्धन्तु धर्मकामो नरः सदा ।।
तथा सङ्कर्षणं देवमर्थंकामस्तु पूजयेत् ।
कामकापोपि राजेन्द्र प्रद्युम्नं पूजयेद्विभुम् ।।[105]

चतुर्मूर्ति :-

चतुः व्यूह प्रतिमाओं के संदर्भ में विष्णु की चतुर्मूर्ति का उल्लेख प्रासंगिक होगा । क्योंकि

इस प्रकार चर्तुमूर्ति इन चारो का समन्वित रूपायन सिद्ध होता है । इसके अतिरिक्त दक्षिण, उत्तर एवं पश्चिम के मुख क्रमशः नरसिंह मुख (सिंह सदृश) वाराह मुख एवं कपिल मुख कहे गए हैं --

मुखाश्च कार्याश्चत्वारो बाहवो द्विगुणास्तथा ।
सौम्यं तु वदनं पूर्वं नारसिंहं तु दक्षिणम् ।।
कापिलं पश्चिमं वक्त्रं तथा वाराहमुत्तमर् ।[106]

इस कोटि की प्रतिमाएं चतुर्मुखी होने के कारण अष्टभुजी होती है तथा बाण, इन्द्रचाप, चीर चर्म, अर्चा, मूसल आदि आयुध धारण किए होती हैं --

तस्य दक्षिणहस्तेषु बाणाक्षमुसलादय ।
चर्मचीरं धनुश्चेन्द्र चापेषु वनमालिनः ।।[107]

उपरोक्त प्रतिमा के सिंह एवं वाराह मुख के संदर्भ में राव महोदय की धारणा है कि ये मुख विष्णु के नृसिंह एवं वाराह अवतार के सूचक न होकर क्रमशः बल एवं ऐश्वर्य के बोधक हैं ।[108] बनर्जी ने कश्मीर से प्राप्त [109] विष्णु की चतुमूर्ति को विष्णु धर्मोत्तर मे संदर्भित उपरोक्त मानदण्डो के अनुरूप बताया है । चतुर्मूर्तियों में रूपायित चारों मुखों का समीकरण निम्नवत् है --

सौम्य मुख	–	वासुदेव – मध्य में निर्मित – मनुष्य सदृश
सिंह मुख	–	संकर्षण – बल का सूचक
वाराह मुख	–	प्रद्युम्न – ऐश्वर्य का बोधक
कापिल मुख	–	अनिरुद्ध – भयंकर दिखायी पड़ने वाला, जो विष्णु के रौद्र (तामसी) स्वरूप को अभिव्यंश्रित करता है ।

विष्णु के विशिष्ट रूप :-

1. **विश्वरूप विष्णु :-**

समस्त ब्रह्माण्ड विष्णु से व्याप्त होने के साथ-साथ उन्हीं में समाहित भी है । समस्त

चराचर के कारणभूत पालक एवं सहारक हैं । श्रीमदभागवत में विष्णु के इसी विश्वरूप (विराट–रूप) का विशद विवेचन हुआ है जो उसके सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थलों में से एक है । स्वयं भगवान कृष्ण ने अर्जुन को इस स्वरूप का साक्षात्कार कराते हुए कहा [110] --- "हे भरतवंशी ! आदित्यों, वसुओं, अश्विनों और मरूतों को देख और हे अर्जुन । अब मेरे इस शरीर मे एक स्थान पर स्थित चराचर सहित सम्पूर्ण जगत को देख तथा और भी जो कुछ देखने की इच्छा है देख' ।

उपरोक्त संदर्भ में मैकडोनेल [110] का अभिमत है कि ऋग्वेद (10,90,2) का विराट स्वरूप मूलतः विश्वदेवतावादी है । आगे चलकर इसी आधार पर विष्णु के विश्वरूप की कल्पना स्थिर हुई । माहेश्वरी प्रसाद ने बैकुण्ठ, अनन्त की ही भांति विष्णु के विश्वरूप को काश्मीरागम (तंत्रान्तर) से सम्बद्ध बताया है ।[112]

मूर्ति विधान :–

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में विश्व रूप मूर्ति को चार वैष्णव मुख से युक्त बनाने का निर्देश दिया गया है ।[113] इसे बैकुण्ठ के सदृश भी बनाया जा सकता है -- रूपमन्यत्प्रकर्तव्यं बैकुण्ठ वदयोऽच्युत ।[114]

इस प्रकार के रूप–विधान से भ्रम उत्पन्न हो सकता है जैसा कि मथुरा संग्रहालय मे संरक्षित (अलीगढ़ से उपलब्ध विष्णु के विश्वरूप का प्राचीनतम दृष्टान्त) विश्वरूप प्रतिमा को भ्रमवश वैकुण्ठ–प्रतिमा मान लिया गया ।[115]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार चारों मूल वैष्णव मुखों के ऊपर सद्योजात, वामदेव, अघोर और तत्पुरुश (चारो माहेष्वर मुख) होने चाहिए । माहेश्वर मुखों के ऊपर ब्राह्म मुख बनाये जाने चाहिए, जबकि वक्त्रहीन होने के कारण ईशान मुख नहीं बनाया जाता और सबके ऊपर स्थित होता है । इन मुखों के सभी तरफ पशुओं और अनेक देवताओं के मुख बनाए जानें का विधान है --

आदौ देवस्य कर्तव्यश्चत्वारो वैष्णवा मुखाः ।
तेषामुपरि कर्तव्यास्तथा माहेश्वराः पुनः ।।

ईशानं वक्त्रहीनास्ते यथा प्रोक्ता मया पुरा ।
तेषामुपरि कर्तव्या मुखाः ब्रह्मायथेरिताः ।।
ततश्चान्ये मुखा कार्यास्तिर्यगर्ध्व तथैव च ।
सवैषामपि देवानां तथान्यानपि कारयेत् ।।
ये मुखाः सत्वजातानां नानारुपाणि भगशः ।[116]

विश्वरूप का मुख फैला हुआ होना चाहिए और भयंकर (विकराल) जीवों के मुखों के साथ सम्पूर्ण संसार को निगलते हुए दिखाया जाना चाहिए ।[117] स्पष्ट रूप से विष्णु का यह रूप भयावह दृष्टिगत होता है । इस रूप में उनकी भुजाओं की संख्या असीमित हो जाती है और शिल्पी शक्ति के अनुरूप अधिकतम भुजाएं बनाने के लिए स्वतंत्र है –– यथाशक्त्या च कर्तव्यास्तस्य देवस्य बाहवः । इन भुजाओं में समस्त आयुध, शिल्पमाण्ड, कलामाण्ड, वाद्यमाण्ड तथा यज्ञ–दण्ड [118] आदि प्रदर्शित किए जाने चाहिए ––

हस्तानि यानि दृष्टानि नृत्तशास्त्रे महात्मभिः ।
तीन सर्वाणि कार्याणि तस्य देवस्य बाहुषु ।।
हस्तः कार्यास्तयैवान्ये सर्वायुधविभूषणाः ।
यज्ञ दण्डधराश्चान्ये शिल्पमाण्डधरास्तथा ।।
कलाभाण्डधराश्चान्ये वाद्यभाण्डधराः परे ।।[119]

विश्वरूप विष्णु को रूपायित करने वाली अनेक प्रतिमाएं प्रकाश में आयीं हैं । अलीगढ़ प्रतिमा त्रिमुखी है और मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित [120] है, इसे विश्वरूप विष्णु का प्राचीनतम उदाहरण माना जा सकता है । वासुदेव शरण अग्रवाल द्वारा संदर्भित अष्टभुजी प्रतिमा [121] बड़ौदा संग्रहालय में सरंक्षित प्रतिमा [122] त्रिमुखी हैं । शांह ने बड़ौदा संग्रहालय की प्रतिमा को एलीफैण्टा से प्रकाशित महेशमूर्ति के समान बताया है । राजशाही संग्रहालय की विश्वरूप प्रतिमा अनेकमुखी तथा बीस भुजाओं वाली प्रदर्शित किया गया है ।[123] गीता के अनुसार अर्जुन को बीस भुजाओं वाले विश्वरूप के दर्शन हुए थे । [124] इलाहाबाद के गढ़वा से भी विश्वरूप विष्णु की अष्टभुजी मूर्ति उपलब्ध हुई है ।[125] खजुराहो की प्रतिमा को वैकुण्ठ के ही समान [126] त्रिमुखी तथा द्वादश भुजाओं वाला [127] बनाया गया है । किन्तु, अन्य स्थानों की विश्वरूप मूर्तियों का विशाल

प्रभामण्डल, उसमें उत्कीर्ण नाना प्रकार की देव–प्रतिमाएं, विष्णु चरणों के निकट प्रदर्शित नाग आदि अनुपस्थित हैं । [128] इसके विपरीत कन्नौज की प्रतिहारकालीन प्रतिमा [129] का विशाल प्रभामण्डल अष्टभैरव, राम, परशुराम, एकदशरूद्र आदि से युक्त है साथ ही मूर्ति के शरीर पर इन्द्र, गणेश बलराम, कार्तिकेय आदि को दर्शाया गया है । द्विभंग खड़ी इस प्रतिमा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है –– उसका पंचमुखी होना । गुप्तकालीन मूर्तियों की ही भांति यह अष्टभुजी है किन्तु जहाँ तक पाँच मुखों का प्रश्न है, इसे गुप्तोत्तरकालीन प्रभाव माना जा सकता है । बीच का मुख प्रधान है जबकि दायीं ओर कूर्म और मत्स्य तथा बायीं ओर वराह तथा सिंह मुख बने हैं ।[130]

2. <u>विष्णु का शेषशायी स्वरूप : पद्मनाभ्</u> :–

श्रीमद्भागवत, विष्णुधर्मोत्तर, पद्मपुराण, शिल्परत्न, अपराजितपृच्छा आदि में विष्णु के शेषशायी स्वरूप का वर्णन मिलता है । विष्णु धर्मोत्तर में जहाँ शेषयायी विष्णु के लिए 'पद्मनाभ' संज्ञा व्यवहृत हुई है [131] वहीं रूपमण्डन, और अपराजितपृच्छा आदि ग्रंथों में 'अनन्तशायी नारायण' तथा 'जलशायी नारायण' प्रयुक्त किया गया है ।[132] डी0डी0 कौशम्बी ने विष्णु की नारायण अवधारणा को सुमेरी प्रभाव स्वीकार करते हुए सुमेरी जलदेवता 'इअ' से समानता स्थापित की है।[133] भट्टाचार्य ने इसकी पृथक–पृथक व्याख्याएं की हैं ।[134]

श्रीमद्भागवत विष्णु के शेषशायी रूप का दो बार उल्लेख करता है । इस रूप का दर्शन एक बार अक्रूर को हुआ [135] एक बार अर्जुन को हुआ ––

सान्द्राम्बुदाभं सुपिशङ.वासं प्रसन्नवक्त्र रुचिरायतेक्षणम् ।
प्रलम्बचाविष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालयावृतम् ।[136]

भागवत के वर्णन में अक्रूर को विष्णु के द्विभुजी स्वरूप के दर्शन हुए थे, जिसे अपवाद स्वरूप माना जाना चाहिए । अधिकांश स्थलों पर उनका चतुर्भुज रूप ही वर्णित है ।

<u>मूर्ति–विधान</u> :

विष्णु धर्मोत्तर पुराण ने चन्द्रधवल समुद्र में अवस्थित शेश–शयया पर विष्णु को लेटे हुए

प्रदर्शित किया है । शय्या पर लक्ष्मी को उनका चरण दबाते हुए दिखाया गया है ।[137] विष्णु चतुर्भजी होते हैं, उनका वर्ण श्याम है और वे पीताम्बर को धारण करते हैं । वे शरणागत वत्सल हैं और उनके नेत्रों की आभा कमल के समान है ।[138] उनकी चार भुजाओं मे मे एक घुटनों तक, नाभि तक, एक मस्तक को अवलम्ब देती हुई, एक सन्तानमञ्जरी युक्त रही है । बाल के समीप मधु तथा कैटभ नामक दैत्यों का रुपायन होता है ।[139] उनके समस्त आयुधों को पुरुष रुप मे बनाये जाने का विधान है ।[140]

नृरुपधारीणि भुजंगमस्य
कार्याण्यथास्त्राणि तथा समीपे ।
एतन्तंथोक्तं यदुपुंगवाग्रय
देवस्य रुपं परमस्य तस्य ।।

प्रायः सभी वैष्णव पुराणों मे शेवशायी विष्णु के इसी स्वरूप का वर्णन मिलता है और कला में इसके सदृश निरुपण भी । यद्यपि कुछेक परिवर्तन भी दृष्टिगत होते हैं इन्हें युग का प्रभाव और शिल्पी की प्रयोगधर्मिता का प्रतिफल मात्र समझना चाहिए । देखा जाय तो ये मूर्तियाँ और साहित्य में वर्णित स्वरूप वैखानसागम में संदर्भित भोगशयन प्रतिमा के अनुरूप ही हैं । विष्णु को निदर्शित करने वाली ये मूर्तियां विशिष्ट हैं ।[141]

कला – विषयक दृष्टान्त :–

गुप्तकाल और मध्ययुग के बीच बनी शेषशायी विष्णु की अनेक मूर्तियां भीतर गाँव, देवगढ़, उदयगिरि, मथुरा, कालिंजर, नागपुर आदि में भी पायी गयीं हैं । पाश्र्व चित्रण में कछ सूक्ष्म अन्तर के अतिरिक्त उन सभी में समरूपता हैं ।[142] दक्षिण भारत में विष्णु के आलोचित स्वरूप की निदर्शक प्रतिमाओं को रंगस्वामी अथवा रंगनाथ कहा जाता है और ये अन्तर की प्रतिमाओं के सदृष्य ही निर्मित की गई हैं ।[143] खजुराहों से उपलब्ध मूर्तियों की संख्या चार है जिनमें से एक धुबेला संग्रहालय में संरक्षित हैं ये मूर्तियां वैखानसागम में संदर्भित भोगशयन प्रतिमाओं के अधिकाधिक निकट हैं ।[144]

शेषासन अथवा जलासन स्वरुप :-

विष्णु के शेषशायी स्वरुप के अतिरिक्त उनका एक अन्य स्वरुप भी विष्णुधर्मोत्तर में संदर्भित हैं। विष्णु को शेष-शय्या पर विराजमान दिखाया गया है। लक्ष्मी समीप ही बेठी होती हैं, किन्तु उन्हें पैर दबातें हुए प्रदर्शित नहीं किया जाता। आयुधों को पुरुष के रुप में दर्शाया जाता है।[145]

> शेषभोगोपविष्टो वा कार्यो देवो मनोहरः ।
> तत्फणैरेव रचितं दुनिरीक्ष्यं प्रभोर्मुखम् ।।
>
> ....
>
> कार्य चक्र गदा कार्या सदेहा तत्समीपगा ।
> लक्ष्मी कार्या तथा तदय शेषभोगशातापि वा ।।

राव ने इस कोटि की मूर्तियों को विष्णु का आदि रुप (आदिमूर्ति) कहा है। इसके उदाहरण कम ही मिलें हैं। वरदराजप्पेरुमाल मन्दिर (मद्रास) तथ नगेहल्ली की प्रतिमाएं उदाहरण स्वरुप मानी जा सकती हैं।[146]

3. त्रैलोक्यमोहन विष्णु :-

विष्णुधर्मोत्तर के अध्याय पचासी में [illegible]मोहन विष्णु का संदर्भ प्राप्त होता है।[147] श्रीमद्भागवत, अपराजित पृच्छा, रुपमण्डन आदि ने मी त्रैलोक्यमोहन को सोलह भुजाओं बाला बताया है।[148] भागवत ने उनकी भुजाओं को शंख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, धनुष-बाण, चर्म आदी, अंकुश, शक्ति, हल, मूसल आदि आयुधों से युक्त दिखाया है। [illegible], तक उनकी अन्य स्वरुपगत विशेषताओं का प्रश्न है, भागवतकार ने नारद, नन्द, सुनन्द, इन्द्र, गन्धर्व, त्रिद्ब, द्वारा स्तुति करते हुए परिवृत गरुड़ासीन, पीताम्बरधारी, स्वर्णजटित किरीट, कुण्डल, मेखला, नुपूर, केयूर, कौस्तुभमणि, वनमाला आदि से सुशोभित, श्यामवर्ण वाले त्रैलोक्यमोहन का चित्र प्रस्तुत किया है --

त्रैलोक्यमोहन रुपं विभ्रत त्रिभुवनेश्वरः ।
वृतों नारदानन्दाद्यैः पार्षदैः सुरयूथपैः ।।
कृतपादः सुपर्णांसे प्रलम्वाष्टमहाभुज ।
चक्रशंखाप्ति चर्मेषुधनुः पाशगदाधर : ।।
पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदनेक्षणः ।
वनमालानिवीतांगों लसच्छीवत्स कौस्तुभः ।।
महाकिरीटकटकः स्फुरन्मकरकुण्डलः ।
कांच्यगुलीय वलयनुपुरुपरांगदभूषितः ।।[149]

गोपीनाथ राव ने इस कोटि की एक प्रतिमा का उललेख किया है ।[150] भुजाओं का योग, अभय तथा वरद मुद्राओं में निदर्शन इस प्रतिमा का विशेषोल्लेखनीय लक्षण है ।

4 **विष्णु का मन्मथ** रुप :-

श्रीमद्भागवत के अनुसार कामदेव का प्रद्युम्न के रुप में पुनरुद्वार हुआ जो वासुदेव का ही अंश माना जाता हैं ।[151] विष्णुधर्मोत्तर विष्णु के मन्मथ रुप का स्पष्ट वर्णन करता है । तदनुसार मन्मथ को आठभुजाओं वाला अनुपम सौंदर्भयुक्त, मदोन्मत्र नेत्रों वाला दर्शाया गया है ।[152] उनके चार हाथों में शंख, पद्म, बाण तथा चाप होते है, चार हाथ पत्तियों (प्रीति, रति, शक्ति तथा मदशक्ति) के ऊपर रखें प्रदर्शित किए जाते हैं ।[152] कामदेव की ध्वजा मकरयुक्त होती है तथा वे पंचावाण धारण करते हैं ।[153] शिल्परत्न कुछेक परिवर्तनों के साथ इसका वर्णन करता है ।[154] जबकि होयसलेश्वर मन्दिर तथा विश्वनाथ स्वामी (तेनकाशी–मद्रास प्रेसीडेंसी) से उपलब्ध प्रतिमाएं विष्णुधर्मोत्तर के मानदण्डों के अनुरुप प्रतीत होती है । विश्वनाथ स्वामी मन्दिर की प्रतिमा में दाढ़ी, मूंछों का अंकन अवश्य ही विलक्षण है ।[155]

5. **वैकुण्ठ** :-

वैदिक साहित्य मे इन्द्र से सम्बद्ध एक देव के रुप में दृष्टिगत होते हैं । परवर्ती काल

में उन्हें इन्द्र का पर्याय मान लिया गया ।[156]महाभारत में कहा गया है कि वैकुण्ठ विष्णु के सहस्रनामों में से एक है ।[157] श्रीमद्‌भागवत के अनुसार सुभ्र ऋषि की पत्नी विकुण्ठ के गर्भ से विष्णु ने अपना अंशीभूत रुप -- वैकुण्ठ-उद्‌भूत किया और लक्ष्मी की प्रार्थना पर वैकुण्ठ धाम की रचना की ।

तयोः स्वकलया जज्ञे वैकुण्ठों भगवान स्वयं ।
वैकुण्ठ कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः ।।
रमया प्रार्ध्यमानेन देव्या तन्प्रियकाम्यया ।[158]

भागवतपुराण (3, 16, 6) के अनुसार स्वयं भगवान द्वारा लोगों के पाप को कुंठित कर देने के कारण उनकी संज्ञा वैकुण्ठ है । इस संदर्भ में यशोवर्मन का खजुराहों लेख (संवत् 1011) प्रकाश डाललता है ।[159] इसके अनुसार विष्णु ने कपिल आदि असुरों के संहार के लिए चार मुखों से युक्त वैकुण्ठ रुप धारण किया था । वैकुण्ठ काश्मीरागम अथवा तंत्रान्तर सम्प्रदाय के प्रधान देव हैं ।[160]

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में वैकुण्ठ की स्थानक तथा आसन मुद्राओं में वैकुण्ठ के प्रतिमा लक्षणों का अलग-अलग विवेचन किया गया है । इस पुराण का कथन है कि चतुः व्यूहों का सम्मिलित रुप वैकुण्ठ हो जाता है ।[161] इस प्रकार यह चुतुर्मुखी प्रतिमा का उदाहरण माना जा सकता हैं । इस चारों मुखों को चार गुणों- बल, ऐश्वर्य, शक्ति तथा ज्ञान, से सम्बद्ध माना गया है जो क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध को अभिल्यंजित करते हैं--

बालं ज्ञानं .... परिकीर्तिताः ।[162]

यह भी कहा गया है कि पूर्वी मुख सौम्य हो, दक्षिणी नरसिंह, पश्चिमी कपिल और उत्तरी वराह का हो ।[163] सिंह, कपिल, मुख क्रमशः ज्ञान और ऐश्वर्य के द्योतक हैं --

पूर्वां सौम्यं मुखं कार्यं यन्तु मुख्यतमं विदुः ।
कर्तव्यं सिंहवक्त्राभं ज्ञानवक्त्रं तुदक्षि णम् ।।

पश्चिमं वदनं रौद्रं यन्तदैश्वर्यमुच्यते ।
चतुर्वक्त्रस्य कर्तव्य रुपमन्यत्तथेरितम् ।।[164]

अष्टभुजी वैकुण्ठ का रंग श्यामवर्ण होता है, वे पीताम्बर धारण किए हुए, समस्त आभूषणों और कौस्तुभमणि से अलंकृत होते है । दाहिनी चार भुजाओं में बाण अक्षमाला, मूसल आदि तथा बायी चार भुजाओं में चर्म, धनुष, चीर तथा इन्द्र धनुष धारण किए रहते हैं ––

तस्य दक्षिणहस्तेषु बाणाक्षमुसलादयः ।
चर्म चीरं धनुश्चेन्द्र वामेषु वनमालिनः ।।[165]

वैकुण्ठ को गरुड़ासीन प्रदर्शित किया जाता है । गरुड़ का चतुर्भुजी रुप भी बनाया जा सकता है । पीछे के दों हाथों से वे वैकुण्ठ के चरणों को थामे रहते हैं, आगे के दोनों हाथ अंजलिबद्ध दर्शाए जाते हैं । उनके पंखों पर गदा तथा चक्र रखे हुए दिखाये जाते हैं ––

चतुर्भुजो वा ....गदाचक्रौ कर्तव्यौ तार्क्ष्यपक्षयोः ।[166]

उपलब्ध वैकुण्ठ प्रतिमाएं––

1. मथुरा से उपलब्ध प्रतिमा, जो विष्णुधर्मोत्तर के अनुकुल प्रतीत होती है ।[167]
2. मथुरा से उपलब्ध प्रतिमाएं ।[168] यद्यपि इस कोटि की प्रतिमाओं का वासुदेवशरण अग्रवाल तथा श्री नागर ने 'विश्वरुप विष्णु' अथवा महाविष्णु माना है ।[169]
3. कुरुक्षेत्र [170], खजुराहों, राजस्थान [171], गुजरात [172] से अनेक प्रतिमाएं उपलब्ध हुई हैं ।

दशावतार निरुपण :–

सुंग–कुषाणकाल में पूर्व की अवतारवाद की निर्देशक कलात्मक अभिव्यक्तियों के प्रमाण नहीं मिलते । यद्यपि साहित्य में इस विषय से सम्बद्ध अनेक उल्लेख हुए है । पौराणिक काल में

अवतारवाद की अवधारणा तीव्रतर हों जाती है और गुप्तकाल के आते-आते यह कला के मुख्य वर्ण्य-विषयों में से एक हो गया । रघुवंश में बराह अवतार तथा रामावतार सहित दशावतारों की चर्चा आयी है ।[173] मेघदूत[174] बृहत्संहिता, स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ लेख तोरमाण का एरण (बराह प्रतिमा) लेख आदि इसके प्रमाण हैं । अब इन अवतारों का विष्णुधर्मोत्तर के संदर्भ मे क्रमवद्ध विवेचना किया जायगा ।

1. **मत्स्यावतार** :-

विष्णु के मत्स्यावतार का संदर्भ भागवतपुराण में मिलता है ।[175] वस्तुतः मत्स्यावतार ब्रह्मा प्रजापति से सम्बद्ध था किन्तु वैष्णव सम्प्रदाय के विकल के साथ इसका सम्बन्ध विष्णु से स्थापित हो गया ।[176] विष्णुधमौत्तर ने इसे दो प्रकार से बनाने का निर्देश दिया है --

1. पूर्णमत्स्य रुप
2. अर्द्धमत्स्य रुप[177]

साथ ही सींगयुक्त मत्स्य बनाने का विधान दिया है--

ऋङ्गीमत्स्यस्तु कर्तव्यों देवदेवो जनार्दनः ।[178]

पूर्णमत्स्य रुप में शरीर मत्स्य की भॉति और सिर के ऊपर सींग बना होता है । भाट्टाचार्य ने पूर्णमत्स्यकार विग्रह का उल्लेख किया हे जिसके मस्तक पर ऊँचा श्रंग बना हुआ है ।[179] अर्द्धमत्स्यरुप में आधार शरीर मनुष्य का होता है । विष्णु की चार भुजाओं में से पिछली दो भुजाओं शंख, चक्र शोभायमान होता है और अन्य दो भुजाएं अभय एवं वरद मुद्रा में प्रदर्शित की जाती हैं । इसके उदाहरणों में राव द्वारा निर्दिष्ट गढ़वा की मूर्ति [186] तथा ढाका जिले से उपलब्ध[181] प्रतिमा विशेषोल्लेखनीय है । खजुराहों से उपलब्ध एक मूर्ति में विष्णु को योगासीन प्रदर्शित किया गया है और पैरों के समीप मत्स्य की आकृति दिखायी गयी है । इस कोटि का कोई अन्य उदाहरण नहीं मिला हैं ।[182]

2. **कूर्मावतार :–**

मत्स्यावतार की ही भांति कूर्मावतार भी प्रजापति ब्रह्मा से सम्बद्ध था ।[183] भागवत पुराण में इसका सम्बन्ध विष्णु के साथ जोड़ा गया ।[184] इसके अनुसार भगवान विष्णु ने कच्छप रुप धारण कर धँसते हुए मन्दराचक्र पर्वत को धारण किया––

कृत्वा वपुः काच्छपमद्भतं महत्,
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार ।
दधार पृष्ठेन स लक्षयोजन ,
प्रस्तरिणा द्वीप इवापरो महान ।।[185]

विष्णुधमौत्तर में पूरा रुप कूर्माकृति का बनाने का निर्देश हुआ है––

कूर्मावतारिणं देवं कमठाकृतिमालिखत् ।[186]

श्रीमद्भागवत ने भी इसका समर्थन किया है––

कूर्ममावाहयिष्यमिधृतमन्दरपर्वतम् ।[187]

पूर्णकूर्म रुप को प्रदर्शित करने वाले उदाहरण कम है । दो मूर्तियाँ खजुराहों से मिली हैं जिनमे से एक योगासीन मत्स्यवतार के सदृश है और दूसरी में पूर्ण कूर्म विग्रह । इसके अतिरिक्त यहाँ के शिलापट्टों में पूर्ण सम्बद्ध आकृति का निदर्शन किया गया है ।[188]

3. **वराह"अवतार :–**

पूर्वोल्लिखित अवतारों की भांति वराह का समबन्ध ब्रह्मा प्रजापति` माना जाता है ।[189] महाभारत[190], श्री मद्भागवत [191] आदि ने इसका सम्बन्ध विष्णु से स्थापित किया है । विष्णुर्धोत्तर ने वराह अवतार को दो प्रकार से निरुपित करने का निर्देश दिया है – प्रथम के अन्तर्गत इसे शेषनाग के सहित बनाना चाहिए । शेष की चारो भुजाओं में से दो अंजुलिब्द्ध होती है

और शेष दो में से हल तथा गदा प्रदर्शित किए जाने का विधान है । शेष के विस्मित नेत्र पृथ्वी की ओर होते हैं । इसके पीछे दो अथवा चार भुजाओं वाले विष्णु बनाये जाते हैं ।[192] दूसरी कोटि की प्रतिमाओ में हिर व्यास को त्रिशूल ताने हुए तथा भगवान द्वारा चक्र से उसके शिराच्छेदन का रुपायन करने का आग्रह किया गया है --

हिरण्याक्षशिरच्छेदश्चक्रोद्यतकरोथ वा ।
शूलोद्यतहिरण्याक्ष सम्मुखों भगवान्भवेत् ।।[193]

पृथ्वी को धारण करने की दशा मे भी दो प्रकार की भंगिमाओं को निर्दिष्ट किया गया है।[194] पहले प्रकार में मुख्य वराह की तरह और शरीर मानव सदृश होने के साथ ही होने के साथ ही दानवों से परिवृत दिखाया जाता है । दूसरें के अन्तर्गत सम्पूर्ण शरीर बराह के सदृश निर्मित किया जाता है । वे अपनी दोनो भुजाओं में पृथ्वी को उठायें रहते हैं ।[195]

इस प्रकार से सम्बद्ध अनेक प्रतिमाएं उदयगिरि, रायपुर, नागलापुरम्, बादामी, जोधपुर खजुराहों से उपलब्ध हुई हैं ।[196] एरण, ग्वालियर तथा लखनऊ संग्रहालय में संरक्षित प्रतिमाएं भी वराह प्रतिमाओं के उत्कृष्ट कलात्मक उदाहरण हैं ।[197]

4. नरसिंह - अवतार

नरसिंह अवतार की कथा का वर्णन श्रीमद्भावत्[197] मत्स्य पुराण,[198] अग्निपुराण[199], विष्णु पुराण[200] आदि में हुआ हैं । हिरण्यकश्यप के संहार और अपने भक्त प्रहलाद की रक्षा के लिए स्तम्भ से उन्होंने नरसिंह रुप धारण किया । इस लिए उनके लिए स्थौण, अर्थात स्तम्भ से उत्पन्न; विशेषण प्रयुक्त किया गया है ।[201] विष्णुधर्मोत्तर का कथन है कि हरि ने संकर्षण के अंश से नरसिंह रुप धारण किया--

हरिः संकर्षणांशेन नरसिंहवपुर्धरः ।[202]

उल्लेखनीय है कि शंकराचार्य ने संकर्षण को वासुदेव के ज्ञान और वल अंशों से उद्भूत माना है । भारतीय कलान्तर्गत विष्णु की चतुमूर्तियों में संकर्षण मुख को सिंह मुख के माध्यम से दर्शाया गया है ।[202] नरसिंह अवतार मे भी मुख सिंह का है । स्वयं विष्णुधर्मोत्तर मे हिरण्यकश्यप को अज्ञान का और नरसिंह को ज्ञान का प्रतीक मानते हुए विष्णु के अज्ञान विनाशक स्वरुप को रुपायित यि गया है ।[203] इस प्रकार शंकराचार्य द्वारा चतुःव्यूह सिद्धान्त की पुष्टि भी हो जाती है और विष्णु धर्मोत्तर के उपरोक्त संदर्भित "संकर्षण के अंश से उद्भूत होने की अवधारणा की पुष्टि हो जाती है ।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण का अभिमत है कि नरसिंह का मुख सिह का और शरीर मनुष्य का हो । उन्हें नीले वस्त्रों आभूषणों से अलंकृत दिखाया जाय । उनका स्कन्ध पीन, गर्दन मोती, मध्य एवं उदर भाग कृश होना चाहिए । सभी आभूषणों से अलंकृत, प्रकाशित मुख युक्त आलीढ़ मुद्रा में जानु पर लिटाए हुए हिरण्यकश्यप का वक्षस्थल विदीर्ण करते हुए प्रदर्शित किए जाँय —

हिरण्यकशिपोर्वसः नाटयन्नखरैः खरैः ।
नीलील्पलाभ कर्तव्यो देवजानुशतस्तथा ।।[204]

इस अवस्था के उनका स्वरुप अत्यन्त ही भयंकर हो जाता है ।[205] श्रीमद्भागवत् मत्स्य एवं अग्निपुराण आदि में इसके सदृश वर्णन मिलता है । विष्णु धर्मोत्तर नरसिंह प्रतिमा को दो प्रकार से रुपायित करने का निर्देश देता है --

नारसिंहों द्विविधों गिरजस्स्थूणाज जश्चेति

इसमें से एक में उन्हें गुफा से निकलते हुए प्रदर्शित किया जाता है । यह उनका गिरिज रूप है । वैखानस आगम[206] तथा शिल्परत्न[207] में थोड़े बहुत अन्तर के साथ उनके इस रुप का उल्लेख मिलता है । अधिकांश वैष्णव पुराणों में "स्थौण" विशेषण को अभिव्यंजित करने वाला दूसरा ही रुप (स्थूण नरसिंह) प्रमुखता पा सका है । जहाँ तक नरसिंहावतार मूर्तियों का प्रश्न है गढ़वा[208] बादामी, एलोरा, हेलेविड[209], खजुराहो[210] आदि से अनेक मूतियां उपलब्ध हुई हैं ।

5. **वामन अवतार :–**

ऋग्वेद में विष्णु का जो स्वरुप है (उरुक्रम, उरुगाय आदि विशेषण) उसी के आधार पर वामन अवतार की कल्पना निर्मित हुई जान पड़ती है। उल्लेखनीय है कि वैदिक विष्णु मात्र तीन पंगों में ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का परिभ्रमण कर सकने में समर्थ हैं।[211] बाद के पौराविणक साहित्य में उनके द्वारा वामन रुप धारण कर तीन पग में ही पृथ्वीं स्वर्ग और राजा बलि के शरीर को नाप दिया गया। इस प्रकार माना जा सकता है। श्रीमद्भागवत, महाभारत शिल्परत्न रुपमण्डन, अपराजिपृच्छा तथा वैखानस आगम आदि पौराणिक एवं शिल्प विषयक ग्रन्थों के वामनावतार का विशद वर्णन उपलब्ध होता है।[212] विष्णुधर्मोत्तर पुराण[213] के अनुसार वामन के आंगिक अवयव छोटे एवं स्थूल होने चाहिए। उनका वर्ण दूर्वांकिर के सदृश श्याम हो और वे कृष्ण अजिनो पवीत धारण किए हो––

कर्तव्यों वामनों देवस्संकटैर्गात्रपर्वभिः।
पीनगात्रश्च कर्तव्यों दण्डी चाध्ययनोद्यतः।।
दूर्वाश्यामश्च कर्तव्यः कृष्णाजिनधरस्तथा।।[214]

पुरश्च, उनका वर्ण मेघ के समान श्याम हो। उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म, दण्ड, पाश आदि, आयुध पुरुषों के रुप में न होकर प्रकृत – रुप में हो। उनका एक ही मुख (ऊर्ध्वमुखी) हो तथा नेत्र विस्फारित दिखाये जायें ––

सजलाम्बुद संकाशस्तथा कार्यस्त्रिविक्रम :
दण्ड पाशधर ....देवोविस्फारितेक्षणः।[215]

वामनावतार को रुपायित करने वाली कतिपय प्रतिमाएं निम्नवत् हैं।

1. खजुराहों के वामन मन्दिर की विशाल वामन प्रतिमा के अतिरिक्त अन्य प्रतिमाएं।[216]
2. कलकत्ता संग्रहालय में संरक्षित प्रतिमा।[217]

6. परशुराम :–

परशुराम को विष्णु का आवेशावतार स्वीकार किया जाता है । भागवतादि पुराणों के अनुसार मदोन्मत्त क्षत्रियों का संहार करने के बाद उन्होने अपनी शक्ति राम को दे दी । विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार वे मृगचर्म, परशु धारण करने वाले तथा जटाजूटधारी हैं ।[218] अग्नि पुराण ने उनके आयुधों की संख्या को बढ़ाते हुए उन्हें धनुष–बाण तथा खड्गधारी भी बताता है ।[219] वैखानस आगम इनका वर्ण लाल बताते हुए श्वेत वर्ण के वस्त्र धारण करने की चर्चा करता है ।[220] प्रायः सभी ग्रंथों में थोड़े बहुत अन्तरों के साथ स्वरुपगत समानता मिलती है ।[221]

परशुराम को रुपायित करने वाली प्रतिमाएं निम्नवत् हैं––

1. ढाका संग्रहालय की प्रतिमा ।[221]
2. खजुराहों की प्रतिमाएं । यद्यपि कुछ परिवर्तनों के साथ हैं ।[222]
3. बनर्जी द्वारा उद्धृत ।[223]
4. रानीहाटी की प्रतिमा ।[224]

7. रामावतार :–

रामावतार और उनका चरित्र रामायण का उपजीव्य है और युगों से विष्णु का यह अवतारी रुप भारतीय जनमानस में आदर्श और प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है । यही नही भारतभूति के बाहर जावा, सुमात्रा आदि द्वीपों की सांस्कृतिक धारा को इसने काफी हद तक प्रभावित किया ।

राम की प्रतिमा के संदर्भ में विष्णुधर्मोत्तर का कथन हे कि राम की मूति राजलक्षणों से युक्त और भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न के साथ बनायी जानी चाहिए । पुराणकार ने राम के अतिरिक्त अन्य भाईयों को किरीट–मुकुट युक्त दिखाने के लिए वर्जित किया है––

रामोदाशरयिः कार्यो राजलक्षणलालितः ।

भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महायशाः ।
तथैव सर्वे कर्तव्याः किन्तु मौलिविवर्जिताः ।।[224]

8. **कृष्ण** :–

कृष्ण को विष्णु का पूर्णावतार स्वीकार किया जाता है । भगवान पुराण गीता, महाभारत आदि विष्णु के इस अवतार रुप के चरित्र वर्णन से आल्लावित हैं । विष्णुधर्मोत्तर पुराण नीलोत्पलवर्ण के चक्रधारी कृष्ण के साथ पद्महस्तारुक्मिणीः नीले वस्त्र तथा कुण्डल पहने मूसलधारी बलराम की प्रतिमा बनाने का निर्देश देता है । स्वभावानुकूल वलराम की आँखे मदोन्मत्त दर्शायी जाती है––

एकानंशापि कर्तव्या देवी पद्मकरा तथा ।
कटिस्थवामहस्ता सा मध्यस्था रामकृष्णयोः
सीरापाणिर्बलः कार्यो मुसली चैव कुण्डली ।
श्वेतोऽतिनीलवसनो मदादञ्चितलोचनः ।।
कृष्णचक्रधरः कार्यो नीलोत्पलदलच्छविः ।
इन्दीवरकरा कार्या तथा श्यामा च रुक्मिणी ।।[225]

राव द्वारा उद्धृत कृष्ण प्रतिमा उपरोक्त संदर्भों का स्पष्ट दृष्टान्त मानी जा सकती है।[226]

9. **बुद्ध** :–

श्रीमद्भागवत विष्णु पुराण आदिने बुद्ध को भी विष्णु दशावतार के अन्तर्गत परिभाषित किया है यद्यपि अनेक शास्त्र बुद्ध की जगह बलराम को दशावतारों में से एक मानते हैं । विष्णु धर्मोत्तर ने बुद्ध का स्वरूप आकलन इस प्रकिार किया ––

काषायवस्त्रसंवीतस्स्कन्ध संसक्तचीवरः ।
पद्मानस्थो द्विभुजो ध्यायी बुद्धः प्रकिर्तितः ।।[227]

अर्थात बुद्ध को ध्यानस्थ एवं पद्मासीन दिखाया जाना चाहिए। दोनों हाथ अभय एवं वरद मुद्रा में प्रदर्शित किए जाये। भिक्षु के वेश में उन्हे काषायवस्त्र एवं चीवर धारण करना चाहिए। अग्निपुराण इसी प्रकार का वर्णन करता है[228]——

शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौरांगश्चाम्बरावृतः।
ऊर्ध्वपद्मस्थितो बुद्धों वरदागयदायक ॥

10. **कल्कि** :—

ऐसी मान्यता है कि विष्णु के इस अवतार का अवतरण कलियुग के अन्त में होगा। श्रीमद्भागवत आदि पुराणों में कलि-काल का वर्णन हुआ है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण का कथन है कि कल्कि हाथ में खड्ग पकड़े, अश्वारूढ़ एवं क्रुद्ध मुद्रा में म्लेच्छों का संहार करने वाले हैं ——

खड्गोद्यतकरः क्रुद्धो हयारूढो महाबलाः।
म्लेच्छोच्छेदकरः कल्किर्द्विभुजः परिकीर्तितः ॥[229]

बुद्धावतार की भाँति कल्कि को भी दशावतार चित्रण में ही प्रायः निरूपित किया गया है। गोपीनाथ राव द्वारा उल्लिखित प्रतिमा [230] को विष्णु धर्मोत्तर के संदर्भों के अनुकूल माना जा सकता है। कल्कि की एक स्वतंत्र प्रतिमा वाराणसी से उपलब्ध हुई है। [232] खजुराहो से उपलब्ध दशावतार पट्ट उल्लेखनीय है। 232

(कतिपय अन्य अवतारों के विषय में विचार)

दशावतारों के अतिरिक्त दत्तात्रेय, कपिल, व्यास, धन्वत्तरि आदि को भी विष्णु के अवतारों के रूप में मान्यता प्रदान की गई हैं।

1. **व्यास** :—

व्यास सत्यवती—पराशर के पुत्र थे। इन्होंने अवतार मान लिया गया। विष्णु धर्मोत्तर पुराण का अभिमत हैं [233] ——

कृष्णकृशतनुर्व्यासः पिङ्गलोऽति जटाधरः ।
सुमन्तुजैमिनिपैलोवैशम्पायन एव च ।
तस्य शिष्यास्तु कर्त्तव्याश्चत्वारः परिपार्श्वपो ।।

तद्नुसार व्यास काले और भूरी जटाओं वाले हैं जो ऋषियों की वेशभूषा के अनुकूल ही है

2. **दत्तात्रेय** :-

विष्णु धर्मोत्तर पुराण [235] ने दत्तात्रेय को वाल्मीकि के सदृश बनाने का निर्देश दिया है । अपरजिपृच्छा तथा रूपमण्डन में इसे 'हरिहर पितामह' कहा गया है ।[236]

3. **धन्वन्तरि** :-

श्रीमद्भागवत ने आयुर्वेद के आचार्य धन्वन्तरि को विष्णु का अंशांश अवतार माना है।[237] विष्णु धर्मोत्तर धन्वन्तरि को सुदर्शन (अच्छे रूपवाला) बताता है । उनके दोनों हाथों को अमृत कलश लिए रूपायित करने का निर्देश दिया है --

धन्वन्तरिश्च कर्तव्यः सुरूपः प्रियदर्शनः ।
करद्वयगतं चास्य सामृतं कलशं भवेत् ।।[238]

4. **मोहिनी रूप** :-

विष्णु धर्मोत्तर में विष्णु के जिस मोहिनी रूप का उल्लेख हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है कि यह रूप पौराणिक आख्यान से सम्बद्ध समुद्रमन्थन से सम्बन्धित है । श्रीमद्भागवत मोहिनी रूप का वर्णन दो प्रसंगों में हुआ है --

1. समुद्र मन्थन
2. महादेव के सम्मुख

समुद्र मन्थन के समय अमृत के लिए छीना-झपटी होने लगी । विष्णु ने देवों के हित में मोहिनी रूप धारण किया --

एतस्मिन्नन्मतरे विष्णुः सर्वापायविदीश्वर. ।
योषिद्रूपमनिर्देश्यं दधार परमाद्भुतम् ।।[239]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में मोहिनी को अतिशय सौंदर्यवती निरूपित किया गया है --

स्त्रीरूपश्च तथा कार्यः सर्वाभरभूषितः ।
करेऽमृतघटश्चास्य कर्तव्यों भूरिदक्षिणः ।।[240]

भट्टाचार्य ने उपरोक्त प्रसंगानुकूल मोहिनी प्रतिमा का उल्लेख किया है ।[241]

5. **कपिल** :-

विष्णु धर्मोत्तर पुराण ने प्रद्युम्न (वासुदेव का ऐश्वर्य और वीर्य गुणों से अंशीभूत स्वरूप) के वैराग्य रूप को ही कपिल माना है --

वैराग्यभावेन महानुभावो
ध्याने स्थितः स्वं परमं पदं तत् ।
....
सांख्यप्रवक्ता पुरुषः पुराणः ।।[242]

व्यूह सिद्धान्त के अनुसार प्रद्युम्न का कार्य ऐकान्तिक मार्ग के क्रिया की शिक्षा देना है ।[243] उल्लेखनीय है कि कपिलं सांख्य मार्ग के प्रवर्तक भी हैं । इस प्रकार विष्णु धर्मोत्तर में संदर्भित प्रद्युम्न के योगी रूप--कपिलं, का अर्थ स्पष्ट हो जाता है । जहाँ तक उनके रूप का प्रश्न है, वे जटायुक्त, पद्मासीन, ध्यानावस्थित तथा मृगचर्म एवं यज्ञोपवीत धारण करते हैं --

पद्मासनोपविष्टश्च ध्यानसंमीलितेक्षणः ।
कर्तव्यः कपिलो देवो जटामण्डलदर्दृशः ।।
वायुसंरोधपीनांशः पद्मङ.चरणद्वयः ।
मृगाजिनधरो राजन् शुभयज्ञोपवीतमान् ।।[244]

6. <u>हयग्रीव</u> :-

देवी-भागवत के अनुसार विष्णु ने हयग्रीव नामक दैत्य (जिसे आशीर्वाद प्राप्त था कि उसे न तो कोई पशु मार सकता है और न ही मनुष्य) का संहार करने के लिए अश्व-मुख और मानव-शरीर धारण किया । हयग्रीव का वध करने के कारण विष्णु की भी संज्ञा 'हयग्रीव हुई । [245]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार हयग्रीव अष्टभुज, अश्वमुख होते हैं । उनकी भुजाओं में चक्र, गदा, मदम्, शंख आदि होते हैं । शेष चार भुजाएं चारों वेदों (पुरुष विग्रह) के ऊपर प्रदर्शित की जानी चाहिए । हयग्रीव के पैर को पृथ्वी धारण किए रूपायित की जाती है । इस पुराण ने हयग्रीव को संकर्षण (वासुदेव के ज्ञान और बल का अंशीभूत रूप) का ही एक रूप स्वीकार किया है --

कर्तव्योऽष्टभुजो देवस्तत्करेषु चतुःवथ ।
शंखचक्रगदापद्मान्साकारान्कारयेद बुधः ।।
चत्वारश्च कराः कार्या वेदानां देहधारिणाम् ।
देवेन मूर्ध्नि विन्यस्ताः सर्वाभरणधारिणा ।।
अश्वग्रीवेण देवेन पुरा वेदाः समुद्धताः ।[246]

इस प्रकार की प्रतिमाओं में राव द्वारा उद्धत प्रतिमा उल्लेखनीय है जिसमें आलोच्य पुराण के मानदण्डों का अधिकधिक पालन हुआ है ।[247] खजुराहों संग्रहालय की प्रतिमा संख्या 79 भी महत्वपूर्ण है जो वैकुण्ठ प्रतिमा का पृष्ठमुख है ।[248]

<u>विष्णु के वाहन आयुध, आभूषण आदि</u>

<u>गरुण</u> :-

ऋग्वेद में सुन्दर पंखों वाले गरुड़ को गरुत्मान् कहा गया है ।

दित्यः स सुपर्णो मरुत्मान ।[249]

महाभारत में उनकी सुपर्ण संज्ञा सुनहले पखों के कारण दी गयी है ।[250] इसी ग्रंथ का कथन है कि गरुड़ द्वारा विष्णु से उनका वाहन बनने का वरदान मांगा गया । विष्णु द्वारा वाहन बनाने और ध्जा पर स्थित होने का आर्शीवाद प्राप्त हुआ ।[251] महाभारत तथा रामायण के अनेक स्थलों पर गरुड़ की गरुत्मान से समानता बतायी गयी है ।[252]

श्रीमद्भागवत [253], विष्णु पुराण [254], अग्नि पुराण [255], मानसार [256] आदि में विष्णु के वाहन गरुड़ का अंकन मिलता है ।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण ने गरुड़ की रूपाकृति का वर्णन करते हुए लिखा है कि उनका वर्ण हरा, आखें गोल, कौशिक सदृश नासिका, चार भुजाएं, पंखद्वय होते हैं । उनकी दो भुजाएं अंजलिबद्ध होती हैं और दो में छत्र और पूर्णकुम्भ धारण किए होते हैं --

ताक्ष्‍र्यभारतकतप्रख्य .... देवपादधरावुभौ ।[257]
पुराणों के एतद्विषयक

वर्णनों में काफी सीमा तक समानता है । विष्णु धर्मोत्तर गरुड़ की चार भुजाएं स्वीकार करता हैं जबकि कुछेक अन्य में आठ और चक्र, मूसल, अंकुश आदि आयुधों से युक्त बताया गया है ।[258]

गरुड़ को रूपायित करने वाली अनेक कलाकृतियाँ प्रकाश में आयी हैं । बादामी की गुफा संख्या तीन में गरूड़ का अंकन है । विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुकूल ही नासिका, पंख, अलंकरण आदि दर्शाए गये हैं । मुख का मनुष्य के सदृश्य दिखाया गया है ।[259] खजुराहों की समस्त मूर्तियाँ द्विभुजी पुरुष-विग्रह के रूप में प्रदर्शित की गई हैं ।[260] चन्द्रगुप्त द्वितीय की कतिपय ताम्रमुदाओं पर इसी प्रकार का अंकन है । नालन्दा से उपलब्ध कुमार गुप्त की मिट्टी की मुद्राओं पर भी गरूड़ का मुख मनुष्यवत् है ।[261] कहीं-कहीं उन्हें हाथ अथवा चोंच में साँप को पकड़े हुए दर्शाया गया है।[262]

आयुध :-

संस्कृत ग्रंथों आयुध विशेष का जो भी लिंग-निर्धारित हैं, कला में उसी के अनुरूप उनका

मानव–विग्रह (पुरुष–विग्रह दर्शाया जाता है । जैसे चक्र और पदम् नपुसंकलिंग शक्ति और गदा स्त्री लिंग, वज्र दण्ड आदि पुलिंग है । इसलिए इन्हें जब कला में निरूपित किया जाता है तो क्रमशः नपुंसक, स्त्री और पुरुष के रूप में दिखाया गया है । वैसे आयुधों और लाञ्छनो को उनके प्राकृतिक रूप में (यथार्थ) भी निर्मित किया जा सकता है । इनका मानवीय रूपान्तर ही आयुध पुरुष कहा जाता है जिनमें समस्त अंग–प्रत्यंग और आभूषण आदि का निरूपण किया जाता है । वैसे आयुध पुरूषों का चित्रण विष्णु प्रतिमाओं तक ही सीमित दृष्टिगत होता है अन्य देव–प्रतिमाओं से सम्बद्ध आयुध पुरुषों का अंकननगण्य रहा है ।[263] आयुध पुरुषों का अंकन एवं प्रतिमा–निरूपण की परम्परा का श्रीगणेश गुप्तकालीन प्रतीत होता है और अधिकांश प्राचीनकाल उदाहरण इसी काल के हैं।[264]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण विष्णु के विविध आयुधों का विवरण प्रस्तुत करते हुए शक्ति, दण्ड, शंख, चक्र, गदा, खड्ग, पाश, धनु, भित्ति, शर, त्रिशूल आदि को आयुध स्वीकार किया है ।[265] विष्णु पुराण ने आयुधों के मूर्त स्वरूप ग्रहण करने का संदर्भ प्रस्तुत करना है ।[266] अब इन आयुध पुरुषों का विवेचन प्रस्तुत किया जायगा ।

1. **चक्र–पुरुष** :–

विष्णु के आयुधों में से एक प्रमुख आयुध, जिसका नाम सुदर्शन है । इसे देवी दुर्गा से भी सम्बद्ध किया गया है । विष्णु धर्मोत्तर में चंवरधारी चक्र को विष्णु के बायीं तरफ सेवा में संलग्न दिखाया गया है । स्वरूप की दृष्टि से वह गोल नेत्रों वाला, लम्बोदर तथा आभूषणों से सुसज्जित बताया गया है । विष्णु का बाँया हाथ चक्र के सिर पर रखा हुआ दिखाया जाना चाहिए ––

वामभागगतश्चक्रः कार्यो लम्बोदरस्तथा ।
सर्वाभरणसंयुक्तो वृत्तविस्फारितेक्षणः ।।
कर्तव्यश्चामरकरो देववीक्षणतत्परः ।
कुर्याद्देवकरं वामं विन्यस्तं तस्य मूर्हिन ।।[267]

चक्र पुरुष को रूपायित करने वाले कलात्मक प्रमाण --

1. खजुराहो से उपलब्ध चार चक्र पुरुष ।[268]
2. आशुतोष संग्रहालय में सुरक्षित चक्र की नमस्कार मुद्रा वाली प्रतिमा ।[269]
3. लाख द्वारा संदर्भित कतिपय मिट्टी मुद्राओं पर अंकितर्न [270] तथा भीटा से उपलब्ध चक्र का यथार्थ अंकन ।[271]
4. कैलाशस्वामी मन्दिर से उपलब्ध चक्र एवं चंवरधारी चक्र-पुरुष ।[272]

2. **शंख-पुरुष** :-

शंख पुरुष के संदर्भ में विष्णु धर्मोत्तर का कथन है -- शंखोऽपि पुरुषो दित्यश्शुक्लाड.शुभलोचनः ।[273] अर्थात् शंख-पुरुष का वर्ण श्वेत और नेत्र अति सुन्दर हों । यद्यपि, एक स्थल पर [274] शंख को शंखाकार बनाने के लिए आदेशित किया गया है । फिर भी शख-पुरुष की प्रतिमाओं के अनेक उदाहरण मिले हैं --

1. कैलाशस्वामिन मंदिर [275], ब्लाख द्वारा संदर्भित मिट्टी की मुहरों पर हुए अंकन, भीटा से उपलब्ध फलक से इसकी पुष्टि होती है ।[276]
2. खजुराहो से उपलब्ध शंख-पुरुष की प्रतिमाएं ।[277]

3. **गदा-पुरुष** :-

विष्णु की गदा के लिए कौमोदकी संज्ञा प्रयुक्त की गई है । मानवीय विग्रह के रूप में प्रस्तुत करते समय अत्यन्त रूपवती, चित्त्चंचला स्त्री के रूप में प्रस्तुत करने का विधान किया गया है --

गदापीतप्रभाकन्यां सुपीनजधनस्थला ।[278]

उसे चंवरधारिणी और विष्णु की ओर दृष्टिपात करते हुए दर्शाया गया है । इस अवस्था में विष्णु का दाहिना हाथ सुन्दरी (गदा) के ऊपर होता है ।[279] गदा को वीरों (जिनका संहार विष्णु

द्वारा किया गया है) के रक्त से रंजित दिखाया जाना चाहिए --

".....दिग्धाभ्रातिभटशोणितकर्दमेन ।[280]

जहाँ तक अन्य आयुधों के मानवीय विग्रह का प्रश्न है, कुछेक के प्रतिमा लक्षणों का निरूपण विष्णु धर्मोत्तर [281] में हुआ है, जो अधोलिखत हैं --

धन – शिरस्थान शरयुक्त, रक्तमल सदृश आभायुक्त स्त्री के रूप में –"पद्मरक्तामा मूर्ध्नि पूरितचापभृत् ।"

शर – दिव्यनेत्रयुक्त, रक्तवर्णांग दिव्यपुरुष --

"दिव्य रक्ताङ्गो दित्यलोचनः ।"

खड्ग – क्रोधपरिपूर्ण, श्यामवर्ण पुरुष –

"श्यामशरीरः क्रुद्धलोचनः ।"

शक्ति – रक्तवर्णांग स्त्री, वृकासीन –

"लोहिताङ्गी वृकाश्रिता ।"

पद्मपुरुष के अनेक कलात्मक उदाहरण मिले हैं, किन्तु विष्णुधर्मोत्तर से इस पर प्रकाश नहीं पड़ता ।

जहाँ तक आभूषणों का प्रश्न है विष्णु धर्मोत्तर वनमाला के संदर्भ में विवरण प्रस्तुत करता है -- कृष्ण दीर्घा विचित्रा च वनमाला प्रकीर्तिता ।[282] यह विष्णु को बहुत ही प्रिय मानी गयी है जो सभी ऋतुओं के सुन्दर पुष्पों और कदम्ब पुष्प से निर्मित की जाती है और इसकी लम्बाई विष्णु के घुटनों तक होनी चाहिए --

आजानुलम्बिनी माला सर्वर्तुकुसमोज्जवला ।
मध्यं स्थूलकदम्बाढ्या वनमालेति कीर्तिता ।।[283]

शिव

पुरातात्विक दृष्टि से शिवोपसना का प्रमाण सैन्धव काल से ही मिलता है किन्तु साहित्य की दृष्टि से सर्वाधिक प्राचीन संदर्भ ऋग्वेद में [284] ऋग्वेद में शिव को रूद्र कहा गया है । [285]

त्रिदेववाद श्रंखला के एक महत्वपूर्ण देवता शिव भी हैं जो ईश्वर की तामसी, प्रवृत्ति के साकार रूप समझे जाते हैं । वैसे उनका मंगलकारी (शिव) रूप भी है जिसे साहित्य में रूद्र, उग्र, शर्व और अशनि कहा गया है । जबकि शिव रूप के बोध महादेव, भव, पशुपति और ईशान है । महाभारत उनके सहस्रनामों की चर्चा करता है ।

शिव की उपासना लिंग और मानवीय विग्रह, उभय रूपों में प्रचलित है । एतद्विषयक सामग्री का वैष्णव पुराणों में अभाव सा है जबकि शैव–पुराणों का प्रतिपाद्य विषय ही यही है । विष्णु धर्मोत्तर पुराण भी वैष्णव पुराण है । इसकी बिखरी हुई सामग्री के संकलन–विश्लेषण और तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर एतावत् सामग्री आगामी पंक्तियों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

लिंग –विग्रह

साहित्य तथा परम्परा में लिंग–विग्रह को शिव–शक्ति का समन्वित रूप मानते हुए सफल सृष्टि का द्योतक बताया गया है –– "सृष्युट्द्भवः सयोनिश्च शिवशक्त्या चराचरम् । शिवलिंगोद्भवाशक्तिः शक्मिांश्च शिवस्तथा । उभयोपपि संयोगाच्छिवशक्त्योश्चराचरम् ।"[287]

देव–गण द्वारा स्तुति का यही कारण हो सकता है ।[288] वे देवाधिदेव –– महादेव हैं ।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण शिव–लिंग निर्माण का विशद विवेचन नहीं करता बल्कि थोड़ा सा संकेत करते हुए उसके तीन वास्तुगत अंगों को रेखांकित करता है ––

1. भाग पीठ
2. भद्र पीठ
3. ब्रह्मपीठ [289]

भोग पीठ को ही मयमतम् में रूद्र पीठ कहा गया है ।[290] यह उपासना का मुख्यांग है, जो सबसे ऊपर गोलाकार रूप में होता है । विष्णु धर्मोत्तर तथा मयमतम् दोनों के अनुसार इस पर

रेखाएं बनी होती हैं। आलोच्य पुराण की दृष्टि में इस भाग का विशेष धार्मिक महत्व है।

शिव का मानवीय विग्रह :-

जहाँ तक शिव के मानवीय विग्रह का प्रश्न है विष्णु धर्मोत्तर पुराण [291] में विशद विवेचन किया गया है। इनमें से कुछ मंगलकारी सौम्य रूप एवं कुछ भयंकर रूप के संदर्भ में है। महादेव, महेश्वर, उमा महेश्वर, शिव का अर्धनारीश्वर स्वरूप, हरिहर आदि सौम्य रूप के अन्तर्गत आते हैं। दक्षिणामूर्ति अनुग्रह प्रतिमा के अन्तर्गत आती है। जबकि, भैरव को उनके भयानक स्वरूप प्रतिनिधि माना जा सकता है।

1. **महादेव :-**

पंचमुख, दशभुज, वृषरूढ़, जटाजूट युक्त महादेव का वर्ण चन्द्रधवल होता है। पाँच मुखों में से चार, जो त्रिनेत्र युक्त होते हैं, [292] सौम्य स्वरूप के सूचक हैं, जबकि पाँचवाँ (दक्षिण) भयंकर होता है। पाँचवे मुख में दो ही आँखें होती हैं। ललाट पर चन्द्र-रेख बनी होती है --

देवदेवं महादेवं वृषारूढं तु कारयेत्
तस्य वक्त्राणि पञ्चं यादवनन्दन
सर्वाणि सौम्यरूपाणि दक्षिणं विकटं मुखम्।[293]

वासुकि का यज्ञोपवीत धारण करने के साथ-साथ इनके गले में नरमुण्ड माला होती है --

1. यज्ञोपवीतं च तथा वासुकिं तस्य कारयेत्।[294]
2. कपालमालिनं भीमं जगत्संहारकारणम्।
त्रिनेत्राणि च सर्वाणि वदनं हयुन्तरं बिना।।
जटाकपाले महति तस्य चन्द्रकला भवेत्।[295]

ऐहोले से उपलब्ध प्रतिमा में शिव को वृषभारूढ़ दिखाया गया है।[296] बनर्जी ने दो महादेव प्रतिमाओं का उल्लेख किया है।[297]

2. **महेश्वर** :–

महेश्वर चन्द्रधवल वर्ण के हैं ।[298] दस भुजाओं वाले महेश्वर की दाहिनी पाँच भुजाओं में त्रिशूल, दण्ड, नीलोत्पल, अक्षमाला तथा सर्प एव बायीं पाँच भुजाओं में दर्पण, कमण्डलु, धनुष, मातुलुङ तथा चर्म धारण किए होते हैं ––

दशबाहुस्तया कार्यो देवदेवों महेश्वरः ।
अक्षमालां त्रिशूलं च शरदण्डमथोत्पलम् ।।
तस्य दक्षिणहस्तेषु कर्तव्यानि महाभुज ।
वामेषु मातुलुङ च चापादर्शीकमण्डलुम् ।।
तथा चर्म च कर्तव्यं देवस्य शूलिनः ।[299]

इस कोटि की कतिपय मूर्तियाँ मल्वेरी, उदयपुर आदि से उपलब्ध हुइ हैं ।[300] वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा संदर्भित प्रतिमा ।[30]

3. **उमामहेश्वर** :–

कल्याणसुन्दर प्रतिमाओं में जहाँ शिव– पार्वती का वैवाहिक दृश्य रूपायित किया गया है वहीं उमामहेश्वर प्रतिमा के अन्तर्गत शिव पार्वती को साथ–साथ निरूपित किया जाने का विधान है । शिव की दो भुजाओं में से एक (बायाँ) देवी (पार्वती) के कंधे पर और दाहिने हाथ में उत्पल धारण किए होते हैं ––

वामपाणिं तु देवस्य ...... विभूषितम् ।[302]

उनके आठ सिर जटाजुट युक्त होते हैं ।[303] पार्श्व में खड़ी सुरूपा पार्वती के बाएं हाथ में दर्पण तथा दाहिना हाथ शिव के कंधे पर होता है ––

द्विपाणिं द्विभुजां देवी सुमध्यां सुपयोधराम् ।
देव्यास्तु दक्षिणं पाणिं स्कन्धे देवस्यकल्पयेत् ।
वामपाणौ तथा देव्य दर्पणं दपयेच्छुभम् ।।[304]

इससे मिलता–जुलता वर्णन श्रीमद्भागवत [305] तथा रूपमण्डन [306] आदि में भी मिलता है।

कला विषयक कुछेक उदाहरण

1. खजुराहों संग्रहालय में संरक्षित उमामहेश्वर प्रतिमा ।[307]
2. रामपुर से उपलब्ध अष्टधातु की प्रतिमा ।[308]
3. मथुरा से उपलब्ध ।[309]

4. अर्द्धनारीश्वर रूप :–

श्रीमद्भागवत [310] तथा विष्णु पुराण में शिव के अर्द्धनारीश्वर स्वरूप [311] से सम्बद्ध वर्णन मिलता है । विष्णु धर्मोत्तर में इसे शिव का गौरीश्वर रूप बताया गया हे ।[312] चार भुजाओं वाले शिव को शरीर के आधे दाहिने हिस्से में और बायें आधे भाग में पार्वती को दिखाया जाता है ।[313] विष्णु धर्मोत्तर पुराण ने इस स्वरूप को प्रकृति–पुरुष की सहज अभिव्यक्ति स्वीकार किया है, और गौरीशर्व संज्ञा प्रदान की है ––

अभेदभिन्नाः प्रकृति : पुरुषेण महाभुज
...........गौरीशर्वेति .... ।।[314]

इस प्रतिमा में कुल दो ही नेत्र प्रदर्शित किए जाते हैं । पार्वती को सर्वाभरणभूषित दिखाया जाता है । दाहिनी भुजाओं में अक्षमाला, त्रिशूल तथा बायीं भुजाओं में दर्पण तथा इन्दीवर होता है । शिव के अनुकूल दाहिने मुख भाग को जटा, कुण्डल तथा चन्द्रकलायुक्त दर्शाया जाता है ।[315] विष्णु धर्मोत्तर में संदर्भित इस रूप पर विस्तार से चर्चा करते हुए अलंकार आदि पर विशद चर्चा की गई है ।[316]

कतिपय कला विषय दृष्टान्त :–

1. खजुराहों की प्रतिमा ।[317]
2. महाबलिपुरम्, काञ्जीवरम् तथा कुम्भकोणम् से उपलब्ध ।[318]
3. राजशाही संग्रहालय की प्रतिमा ।[319]
4. वृहदीश्वर मंदिर की प्रतिमा ।[320]

5. हरिहर :–

श्रीमद्भागवत और विष्णु पुराण में विष्णु तथा शिव की एकता स्थापितं करने के प्रयास किए गए हैं । [321] इस दृष्टिकोंण का विकास हरिहर के रूप में हुआ । सुप्रभेदागम, शिल्परत्न आदि ग्रंथों में भी इसकी विवेचना की गई है ।[322] विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार आधे दाहिने भाग में शिव तथा बायें भाग में विष्णु का अंकन करना चाहिए । दोनों के ही अनुकूल आयुध, लाञ्छन आदि होने चाहिए --

> कार्यं हरिहरस्यापि दक्षिणार्धं सदाशिवः ।
> वाममर्धं हृषीकेशश्श्वेतनीलाकृति क्रमात् ।।[323]

अर्थात् शिव और विष्णु के वर्ण क्रमशः श्वेत और श्याम होना चाहिए । हरिहर प्रतिमा के बायें पार्श्व में शिव वाहन वृषभ और दाहिनी ओर विष्णु वाहन गरूड़ निर्मित किए जाने चाहिए ।

कला सम्बन्धी प्रमाण :–

1. खजुराहों संग्रहालय की हरिहर प्रतिमा ।[324]
2. बादामी से उपलब्ध प्रतिमा ।[3251]

6. दक्षिणामूर्ति :–

शिव ज्ञान, योग आदि के आचार्य भी माने जाते हैं । राव का अभिमत है कि ऋषियों को दक्षिणाभिमुख होकर ज्ञानोपदेश देने के कारण शिव की मुद्रा को दक्षिणामूर्ति संज्ञा प्रदान की गई है । श्रीमद्भागवत [326] शिल्परत्न आदि में शिव के इस रूप का वर्णन किया गया है । विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार श्वेतवस्त्रशारी, अक्षमाला तथा मस्तक पर चन्द्र कला धारणा किए हुए शिव को दक्षिणामुख करके बैठाया जाना चाहिए --

> दक्षेण मुद्रां प्रतिपादयन्त स्िताक्षसूत्रं च तथोर्ध्वभागे वामे च पुरस्तामखिलागममाद्यां विभ्राणमूर्ध्वेन सुधाधरं च । सिताम्बुजस्थंसितवर्षमीशंसिताम्बरा लेपनेमिन्दुमौलिम् । ज्ञानं मुनिभ्यः प्रतिपादयन्तंतंदक्षिणांमूर्तिमुदाहरन्ति ।[327]

तेरोवरियूर तथा विष्णुकाञ्ची से उपलब्ध प्रतिमा उक्त स्वरूप को निरूपित करती है।[328]

7. **भैरव :-**

शिव के भयंकर रूप का दर्शन भैरव रूप में होता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार भैरव वर्ण श्याम, उदर लम्बा, गोल नेत्र और बड़ी-बड़ी दाढें होती हैं। गजचर्म का उत्तरीय, नरमुण्डों की माला और सर्वाभूषण धारण करते हैं।[329] इसी के समान महाकाल स्वरूप भी होता है अंतर केवल इतना होता है कि महकाल के साथ पार्वती नहीं होती और भैरव पार्वती को साँपों से डराते दिखायी देते हैं। [330] महाकाल के आस-पास अनेक गण निर्मित किए जाते हैं।[331] भैरव अपनी भुजाओं में अनेक आयुधों को धारण करते हैं।

कुछेक उदाहरण निम्नवत् हैं --

1. भारतीय संग्रहालय की प्रतिमा।[332]
2. आशुतोष संग्रहालय की भैरव प्रतिमा।[33]

शिव के वाहन नन्दी :-

नन्दी शिव का वाहन है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में नन्दी को चतुर्भुजी बताया गया है। वह लाल वर्णवाला, त्रिनेत्र, व्याघ्रचर्मधारी हैं। उनके दोनों हाथों में त्रिशूल और भिन्दिपाल होते हैं -

> "नन्दी कार्यस्त्रिनेत्रस्तु चतुर्बाहुर्महाभुजः। सिन्दुरारूणसङाशो व्याघ्रचर्माम्बरच्छदः। त्रिशूलभिन्दिपालौ च करयोस्तस्य कारयेत्।[334] शिरोगतं तृतीयं तु तर्जयन्तं तथा परम्। आलोकमानं कर्तव्यं दूरादागामिकं जनम्।[335]

ब्रह्मा :-

त्रिमूर्ति में तीसरे देव ब्रह्मा हैं। वैदिक साहित्य में उन्हें सृष्टिकर्ता के रूप में दर्शाते हुए हिरण्यगर्भ, विश्वकर्मा, ब्रह्मा, प्रजापति, ब्रह्मभणस्पति आदि विशेषण प्रयुक्त किया गया है।[336] पौराणिक काल में आठ वसुओं में से एक ब्रह्मा, ने विशिष्टता ग्रहण कर ली और अन्य का महत्व

गौण हो गया । इसके पूर्व उपनिषद साहित्य में ब्रह्मा को विशिष्ट स्थान प्रदान करते हुए उनकी उत्पत्ति सभी के पूर्व बतायी गयी है ।[337] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सृष्टि के पूर्व केवल जल ही था और यही सब में परिव्याप्त है । इसी से हिरण्यमय अण्ड की उत्पत्ति हुई । यह अण्ड ही विश्व की प्रथम तैंजस अभिव्यक्ति मानी जा सकती है । वस्तुतः सृष्टि की सर्जनात्मक शक्ति का प्रतीक ही था यह हिरण्यमय पिण्ड और इसे सर्वलोक पितामह ब्रह्मा कहा जा सकता है । मार्कण्डेय पुराण ने ब्रह्मा को प्रमुखता प्रदान करते हुए ब्रह्मा विष्णु और शिव को उन्हीं का रूप स्वीकार किया है ।[340] शिव और विष्णु के विवेचन वाले सम्बन्धित स्थलों पर इस धारणा पुष्टि की गई है । महाकवि कालिदास ने अपनी कृति कुमारसम्भव में इस ओर ध्यान आकृष्ट किया है --

नमस्त्रिमूर्तये ...... कारणतां गतः ।[341]

महाभारत ने प्रजापति को ही सृष्टि, पालन और संहार का कारणभूत तत्व बताते हुए [342] लोकभावन भूतात्मन्, विश्वेश, प्रजापित, सुरगुरू, विधाता आदि विशेषणों से युक्त किया है । ब्रह्म पुराण की भी ऐसी ही धारणा है ।

वैष्णव पुराणों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि चतुर्मुख, कमलासीन, रथारूढ़, हंसारूढ़ तथा प्रजापति आदि ब्रह्मा के विविध स्वरूपों का वर्णन हुआ है । विष्णु धर्मोत्तर पुराण में हंसारूढ़ स्वरूप को छोड़कर अन्य सभी रूपों पर प्रकाश डाला गया है । जहाँ तक हंसारूढ़ ब्रह्मा का प्रश्न है श्रीमद्भागवत [343] और अग्निपुराण [344] में वर्णन हुआ है ।

विष्णु धर्मोत्तर चतुर्भुज [345] चतुर्मुख और कमलासीन ब्रह्मा का स्वरूप निरूपण इस प्रकार करता है --

"पद्मपत्तासनस्थस्तु ब्रह्मा कार्यश्चतुर्मुखः ।

भमद्भागवत तथा परम्परा उनके कमलासीन होने का कारण स्पष्ट करते हैं । तदनुसार उनका जन्म नारायण की नाभि से उद्भूत कमल से हुआ किन्तु भागवतकार ने इस प्रक्रिया को स्वतः सम्पन्न मानते हुए ब्रह्मा को स्वयंभू कहा है -- "तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम् । तस्मिन् स्वयं वेदमयो विधाता स्वयम्भुवं यं स्मवदन्ति सोऽभूत् ।"[346]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण कमलासीन ब्रह्मा की दो मुद्राएं स्वीकार करता है --

1. ध्यानासीन

2. पद्मासन में बैठे हुए

ध्यानासीन ब्रह्मा जटाजूट युक्त, पिछली दो भुजाओं में अक्षमाला और कमण्डलु धारण किए हुए आगे की दाहिनी हथेली को बायीं हथेली पर रखे हुए प्रदर्शित किए गए हैं । इसका दूसरा रूप है - पद्मासन में बैठे ब्रह्मा को रथारूढ़ दिखाया जाना । रथ मे सात हंस जुते होते हैं ।[347] किन्तु, उल्लेखनीय है कि यह ब्रह्मा का हंसारूढ़ स्वरूप नहीं है इसे श्रीमद्भागवत तथा अग्निपुराण में दर्शाया गया है ।[348]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में ब्रह्मा के प्रजापति स्वरूप पर भी प्रकाश डाला गया है । प्रजापति का यह स्वरूप अन्य बातों में ब्रह्मा के ही सदृश्य है किन्तु उन्हें न तो चतुर्मुख दिखाया जाता है और न ही हंसारूढ़ --

हंसयाने न कर्तव्यो न च कार्यश्चतुर्मुखः ।
ब्रह्मोक्तपरं रूपं सर्वं कार्यं प्रजापतेः ।।[349]

ब्रहमा को निरूपित करने वाली प्रतिमाएं :-

1. दुदाही मंदिर की चतुर्मुखी, हंसारूढ़ प्रतिमा ।[350]
2. मद्रास संग्रहालय में संरक्षित कांस्य प्रतिमा [351] श्रीमद्भागवत् के मानदण्डों से भी प्रभावित मानी जा सकती है ।
3. ऐहोले से दो प्रतिमाएं उपलब्ध होती हैं जिनमे से एक हंसारूढ़ तथा दूसरी ऋषियों से परिवृत्त उनके ऋषि-स्वरूप को अभिव्यंजित करती है ।[352]
4. मथुरा संग्रहालय में संरक्षित मथुरा कलान्तर्गत निर्मित अनेक प्रतिमाएं ।[353]
5. राजशाही म्यूजियम की प्रतिमा ।[354]

सूर्य और नवग्रह :-

आदित्य और ग्रह के रूप में सूर्य उपासना अत्यन्त प्राचीन है। आलोचित पुराण का अध्याय सरसठ आदित्य के बारे में है। वैदिक साहित्य में सूर्य की गणना द्वादश आदित्यों में की गई है। ऋग्वेद में सूर्य को अग्नि का सहायक माना गया है।[356] इन्हें मित्र, वरूण तथा अग्नि का नेत्र कहा गया है।[357] अवेस्ता के अध्ययन के आलोक में भग और विवस्वान् सूर्य की विभिन्न अवस्थाओं के द्योतक प्रतीत होते हैं।[358] ऋग्वेद के सातवें मंडल में सूर्य को श्वेत और चमकीला अश्व बताया गय है जो ऊषा द्वारा लाया गया है। पुनश्च सूर्य को एतश नामक अश्व द्वारा खींचे जाने वाले रथ पर आरूढ़ दर्शाया गया है।[359] प्रथम और पंचम मंडल में सूर्यका रथ सात अथवा अगणित अश्वों द्वारा खींचे जाने का संदर्भ है। इसी प्रसंग से आगे चलकर सूर्य के रथ में जुते सात घोड़ों की धारणा बलवती हुई होगी। उल्लेखनीय है कि प्रकाश मे सप्तवर्णीय किरणें होती हैं।

सूर्य और उनके विविध स्वरूपों की उपासना उत्तरवैदिक काल में भी सुप्रचलित रही। महाकाव्यकाल में इसका और विकास हुआ। महाभारत में सूर्य को 'देविदेवेश्वर' कहा गया है। इसमें उनका वर्णपीत, बाहुएं विशाल, कवच-कुण्डधारी बताया गया है।[360]

पुराणों ने भी द्वादश आदित्यों के अस्तित्व को स्वीकार किया है। विष्णु पुराण का कथन है कि सूर्य का विवाह विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा से हुआ था और विश्वकर्मा को उनका प्रचण्ड तेज कम करना पड़ा।[361] कला की दृष्टि से सूर्य प्रतिमाओं के दो स्वरूप उत्तरी और दक्षिणी वेशभूषा, माने जा सकते हैं। प्रथम कोटि की प्रतिमाओं में सूर्य को पूर्ण विकसित कमल को धारण किए हुए दिखाया गया है। यह हाथ कंधे की ऊँचाई तक उठा हुआ होता है। पैरों मे मोजे की भांति आवरण होता है। इस कोटि की सूर्य प्रतिमाओं को सारथी अरूण और सौर-परिवार के अन्याय सदस्यों के साथ दिखाया जाता है। दक्षिणी वेशभूषान्तर्गत प्रतिमाओं में ऐसा नहीं होता।

विष्णु धर्मोत्तर में सूर्य के विस्तृत परिवार का उल्लेख है। सूर्य की दो रानियों के अतिरिक्त सारथी अरूण, ऊषा-प्रत्यूषा नामक सहचारियाँ यम-रेवन्तादि चार पुत्र दण्ड-पिंगल नामक अनुचर का समावेश किए जाने का निर्देश दिया गया है।[362]

आलोचित पुराण सूर्य और चन्द्र को अग्नि तथा वरूण का ही दूसरा रूप स्वीकार करता है । तद्नुसार सूर्य का रूप अत्यन्त आकर्षक और सिन्दूर के वर्ण का है --

रविः कार्यः .... संज्ञिता ।[363]

उपरोक्त श्लोक मे संदर्भित 'यावियाड.' करधनी ही है । गुप्तकालीन प्रतिमाओं मे इसे देखा जा सकता हे जो कुषाणकालीन परम्परा का ही निर्वाह प्रतीत होता है । चित्रसूत्रम् के अन्तर्गत भी दैवीय प्रतिमाओं को मेखलायुक्त दर्शाने के लिए निर्दिष्ट किया गया है ।

देशज एवं ईरानी प्रभाव से युक्त प्रतिमाओं में जूते नहीं दिखाये गए हैं । चूँकि भारतीय परम्परा मे जूतों को अपवित्र माना गया है । इसलिए इस समस्या का समाधान मार्कण्डेय तथा साम्ब पुराणों में मिथकीय आवरण में करने का प्रयास किया गया है । तदनुसार त्वष्ट्रा ने सूर्य के घुटने के निचले भाग को अपूज्य घाषित कर दिया । बृहत्संहिता ने और स्पष्ट कर दिया है । इसके अनुसार सूर्य प्रतिमा पैर से जंधा तक ढकी रहनी चाहिए ।[364]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण ने इसका समाधान इस प्रकार किया है -- सूर्य को रथ में बैठा हुआ दिखलाना चाहिए । असह्य तेजवान् होने के कारण सूर्य को गूढ़-मान दिखाना चाहिए ।[365]

समस्त तेजों का आश्रय और स्रोत होने के कारण उनकी संज्ञा सूर्य और वर्ण लाल है --

रक्तवर्णः स भगवांस्तेजसां धामकारणात् ।[366]

अरूण सूर्य का सारथी है जो सात अश्वों को हाँकता है । सात अश्व वस्तुतः गायत्री, त्रिष्टुप्, पंक्ति, बृहती, अनुष्टुप् आदि सात छन्द हैं । ध्वजा में अंकित सिंह धर्म का यावियाड. उनके द्वारा सकल जगत् को परिव्याप्त करने का बोध है । उनकी पत्नियाँ राज्ञी, निक्षुमा, छाया तथा सुर्च्चला क्रमशः भू, द्यौ, छाया तथा प्रभा की प्रतिरूप हैं --

मायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च .... पत्नयः ।[367]

कतिपय सूर्य–प्रतिमाएं :–

1. काबुल संग्रहालय मे सरंक्षित संगमरमर की प्रतिमा में सूर्य के चारों पुत्रो को दिखाया गया है ।[369]
2. भूमरा से उपलब्ध ।[370]
3. आशुतोष संग्रहालय की प्रतिमा, सारथी अरूण और दैत्यगाण के साथ प्रदर्शित है ।[371]
4. खजुराहों की प्रतिमा में सूर्य रथारूढ़ (सात अश्वयुक्त) रानियों, अप्सराओं, देव–देवियों, गन्धर्व एवं अनुचरों से परिवृत्त हैं ।[372]

सोम/चन्द्र :–

अमृत को धारण करने के कारण उनका वर्ण श्वेत है । उनकी भुजाओं में कुमुद पुष्प होते हैं जो हर्ष का प्रतीक है ।[373] चन्द्रमा को दो पहिए वाले रथ, [374] जिसे दस घोड़े खींचते हैं । अम्बर को चन्द्रमा के रथ का सारथी बताया गया है ।[375] चन्द्रमा के दाहिनी ओर कान्ति तथा बायीं ओर शोभा का मूर्ति बनानी चाहिए । वैसे चन्द्रमा की पत्नियों की संख्या अट्ठाईस बतायी गयी है ।[376]

बुध :–

बुध को चन्द्रमा का पुत्र और ग्रहपति स्वीकार किया गया है । विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार बुध का स्वरूप विष्णु के सदृश और रथारूढ़ बनाना चाहिए । रथ मंगल के रथ के ही सदृश प्रदर्शित करने का निर्देश है ––

विष्णुतुल्यो बुधः कार्यो भौमतुल्येतथा रथे ।[377]

भौम/मंगल :–

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार मंगल का वर्ण अग्नि के सदृश लालवर्ण होना चाहिए ।[380] 'लोहितांग [379] तथा' अंगारक [380] विशेषण इसकी पुष्टि करते हैं ।

<u>वृहस्पति</u> :–

विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार बृहस्पति का वर्णन सोने के सदृश पीतवर्ण है । पीताम्बर धारी और अन्यान्य आभूषणों से भूषित होना चाहिए । उनकी दो भुजाओं में से एक मे पुस्तक और दूसरी मे अक्षमाला प्रदर्शित हो । बृहस्पति कारथ बुध एवं मंगल के ही सदृश आठ अश्वयुक्त स्वर्णनिमित होना चाहिए ।[381]

<u>शुक्र</u> :–

विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार शुक्र (भृगुनन्दन) गौरांग, श्वेत वस्त्रधारी, दो भुजाओं वाले (ए में निधि, दूसरी में पुस्तक) हैं । दस अश्वों वाले रथ पर वे आरूढ़ होते हैं ––

शुक्रः श्वेतवयुः कार्य :..........
.........राजते भृगुनन्दन ।[382]

<u>शनि</u> :–

विष्णु धर्मोत्तर का कथन है कि कृष्ण–वर्ण शनि के वस्त्र भी काले होते हैं । वे लोहे के रथ पर आरूढ़ होते हैं, जिसे आठ सर्प खींचते हैं । उनकी दो भुजाओं में से एक में दण्ड तथा दूसरी में अक्षमाला होती है ––

"कृष्णवासास्तथाकृष्ण.......
.........कार्यस्तथैवाष्टभुजंगमे ।"[383]

<u>राहु</u> :–

विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार राहु का सिर दाहिनी भुजा में संलग्न रहता है । राहु का रथ चाँदी से निर्मित होता है और उसे आठ घोड़े खींचते हैं ।[384] उनके केश ऊपर खड़े हुए होते हैं ।[385]

<u>केतु</u> :–

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में केतु को अग्नि और मंगल के सदृश बताया गया है ––

भौमस्य च तथा कार्यं केतोः रूपं विजानता ।[386]

किन्तु उनके रथ में दस अश्व प्रदर्शित किए जाते हैं -- दशराज्ञस्तुरंगमाः ।[387]

प्रायः इन ग्रहों को सूर्य के साथ ही दिखाया गया है । कभी-कभी सूर्य के प्रभामण्डल के साथ-साथ [388] और नवग्रह पट्टों के रूप इन्हें रूपायित किया गया है । तंजौर, सारनाथ तथा खजुराहो आदि से अनेक नवग्रह पट्ट प्रकाश में आये हैं ।

इन्द्रादि अष्ट-दिक्पाल

अथर्ववेद , ग्रह्यसूत्र, स्मृतिग्रंथ, महाकाव्य आदि में दिशाओं के अधिपतियों - दिक्पालों, का वर्णन हुआ है । बौद्ध एवं जैन ग्रंथ भी इस विषय पर प्रकाश डालते हैं । किन्तु, इन ग्रंथों मे दिक्पालों की सूची और संख्या में थोड़ा बहुत परिवर्तन दृष्टिगत होता है ।

1. इन्द्र (शक्र) :-

इन्द्र को पूर्व दिशा का अधिपति माना गया है । विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार, स्वर्णिम आभा वाले इन्द्र नीले वस्त्र धारण किए हुए तथा समस्त अलंकारों से विभूषित होते हैं । उनके ललाट पर एक और नेत्र होता है जिसे तिरछा दिखाया जाता है --

नीलवस्त्रः सुवर्णाभः सर्वाभरणवांस्तथा ।
तिर्यग्ललाटगेनाक्ष्णा कर्तव्यश्च विभूषितः ।।[389]

श्वेत वर्ण और चतुर्दन्त ऐरावत पर आरूढ़ इन्द्र (चतुर्भुज) के वामभाग में द्विभुजी शची होती है । इन्द्र के दाहिने दोनों हाथों में कमल एवं अंकुश तथा बायें के एक हाथ में वज्र और दूसरा हाथ शची की पीठ पर रहता है --

शक्रश्चतुर्भुज .... वज्रसंयुतम् ।[390]

शची का दाहिना हाथ इन्द्र की पीठ पर और बायां सन्तानमंजरी से सुशोभित होता है --

गान्धार एवं मथुरा कला में भूमरा और परशुरामेश्वर (भुवनेश्वर), पहाड़पुर, चिदम्बरम् एवं खजुराहों से इन्द्र को रूपायित किया गया है ।[392]

2. **वरूण** :–

विष्णु पुराण में जलचरों के अधिपति वरूण को पश्चिम दिशा का दिक्पाल माना गया है । [393] वरूण का वर्ण वैदूर्यमणि के सदृश है । उनकी चार भुजाओं में से दाहिनी भुजाओं में कमल और पाश एवं बायीं में शंख और रत्नों का पात्र होता है ।[394] विष्णु धर्मोत्तर में उन्हें सात हंसों से युक्त रथ पर आरूढ़ [395] दिखाया गया है । एक अन्य स्थल पर उन्हें मकरारूढ़ [396] बताया गया हे । उनके पार्श्व गौरी (बायीं गोद में) दिखायी जाती है जिनका दाहिना हाथ वरूण की पीठ पर तथा बॉए हाथ में कमल पुष्प होता है । वरूण के सिर पर श्वेत छत्र का आवरण होता है––

छत्रं च सुसितं ... भार्या सर्वांगसुन्दरी ......
......गौरी तु द्विभुजा ...... । [397]

वरूण की आकृति के दाहिनी ओर मकरारूढ़ गंगा [398] और बायीं ओर कच्छपारूढ़ यमुना निर्मित की जानी चाहिए ।[399]

वरूण की प्रतिमाएं भुवनेश्वर, कांगड़ा तथा खजुराहों आदि से उपलब्ध हुई हैं ।[400]

3. **कुबेर** :–

कुबेर उत्तरी दिशा के अधिपति, यक्षों के राजा, धनपति कहे गये हैं । विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार कुबेर चार भुजाओं, बड़े उदर, पीले नेत्र, बड़ी–बड़ी मूछों वाले हैं । बायीं भुजाओं में शक्ति एवं गदा रहती है । कुबेर को कवच और हार पहनाए हुए दर्शाया जाना चाहिए । कुबेर की बायीं गोद में पत्नी ऋद्धि को दर्शाया जाता है जिनके एक हाथ में रत्नपात्र और दूसरा हाथ कुबेर की पीठ पर होता है । कुबेर के समीप शंख और पद्म नामक निधियाँ खड़ी होती हैं ।[401]

4. **यम** :–

यम दक्षिणी दिशा के अधिपति हैं । यमराज के शरीर का वर्ण मेघों के सदृश होता है ।

वे समस्त आभूषणों से अलंकृत एवं स्वर्ण वर्ण के वस्त्रों को धारण किए होते हैं । उन्हें भैंसे पर आरूढ़ दर्शाया जाता है --

सजलाम्बुदछायस्तप्तप्चामीकराम्बरः ।

महिषस्थश्च कर्तव्यः सर्वाभरणवान्यतः ।[402]

यम की पत्नी घूमोर्णा को वाम उत्संग में प्रदर्शित किया जाता है । यमराज की चार भुजाओं में विविध अस्त्र आयुध आदि होते हैं । आयुध की दृष्टि से दण्ड विशेष महत्व का है जो लोगों के लिए भय का कारण है ।[403]

यम के ही समीप उनके लिपिक चित्रगुप्त को कागज कमल धारण किए हुए प्रदर्शित किया जाता है ।[404]

5. <u>अग्नि</u> :-

विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार [405] अग्नि को चार भुजाओं, तीन नेत्रों, चार डाढ़ों श्मश्रु तथा ज्वालासमूहों से युक्त, धूम्र से चिन्ह्नित, सारथी वायु द्वारा चालित रथ पर आरूढ़ बनाना चाहिए । उनके दाएं हाथों में त्रिशूल एवं ज्वाला एवं बायें हाथ में अक्षमाला सुशोभित हो । चौथे हाथ के संदर्भ में स्पष्ट निर्देश नहीं दिया गया है । अग्निपुराण के आलेक में [406] में कहा जा सकता हे कि संभवतः चौथे हाथ में वे शक्ति धारण करते हैं ।[06] अग्निदेव के बाएं उत्संग में उनकी पत्नी स्वाहा अपने हाथ में रत्नपात्र धारण किए होती हैं । [407] अग्नि के रथ को चार तोते खींचते हैं और रथ की ध्वजा धुएं की होती हैं ।[408] इससे मिलते-जुलते वर्णन अपराजित पृच्छा [409] शिल्परत्न [410] आदि में भी मिलते हैं ।

6. <u>वायु</u> :-

विष्णु धर्मोत्तर का कथन है कि रूपवान् वायु अपने दोनों हाथों से वस्त्र के छोर पकड़े होते हैं । उनके मुख खुले तथा केश बिखरे हुए दर्शाए जाने चाहिए । वायु की पत्नी शिवा को बाँए

तरफ बनाना चाहिए । [411] वायु के स्वरूप, वाहन, आभूषाणि पर आलोचित पुराण कुछ विशेष प्रकाश नहीं डालता । इसलिए जो भी प्रतिमाएं उत्पन्न होती हैं उनपर शिल्परत्न, अपराजितपृच्छा, रूपमण्डन, महाभारत आदि का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है ।

7. **निऋति/विरूपाक्ष** :–

वैदिक देवता निऋति के विष्णु धर्मोत्तर पुराण ने विरूपाक्ष संज्ञा प्रदान की है । साथ ही निऋति को विरूपाक्ष की पत्नी बताया गया है ।[412] विरूपाक्ष को विस्फारित नेत्रों, ऊर्ध्वकेश, भूरी दाढ़ी, दो भुजाओं और भयंकर मुख से युक्त, सब आभूषणों से सुशोभित, दण्डधारी निर्मित करना चाहिए । उनकी बायीं ओर कृषांगी और कृष्णवदना, हाथ में पाश लिए निऋति को स्थापित करना चाहिए । विरूपाक्ष के शरीर का रंग कृष्ण है । ऊँट इनका वाहन है । कृष्ण वस्त्रधारी विरूपाक्ष के एक हाथ में दण्ड और दूसरे में लगाम होती है । विरूपाक्ष रोग काल का तथा निऋति को मृत्यु का प्रतीक माना गया है । जबकि उनके वस्त्र तमोगुण, वाहन ऊँट महामोह के सूचक हैं ।[413]

बनर्जी का अभिमत है कि निऋति को रूपायित करने वाली प्रतिमाओं का सर्वथा अभाव है ।[414] फिर भी कुछेक प्रतिमाएं खजुराहों, अहोविलम् से उपलब्ध हुई हैं ।[415]

8. **ईशान** :–

ईशान उत्तर–पूर्वी दिशा के लोकपाल माने गए हैं । मत्स्य पुराण, अग्नि पुराण तथा विष्णु धर्मोत्तर के आलोक में कहा जा सकता है कि शिव का गौरीवशर्व रूप ही [416] ईशान है । ईशान के एक मुख, दो नेत्र और चार भुजाएं होती हैं । अर्द्धवामभाग को पार्वती के सदृश निरूपित किया जाता है ।[417] दक्षिणी भुजाओं में अक्षमाला तथा त्रिशूल तथा बायीं भुजाओं में दर्पण और नीलोत्पल होता है ।[418] वस्तुतः ईशान गौरीशर्व और अर्द्ध नारीश्वर रूप के ही सदृश माना जाना चाहिए ।[419]

कुछेक अन्य देवी–देवता

लक्ष्मी :–

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में लक्ष्मी को जगज्जननी और विष्णु की पत्नी बताया गया है । उन्हें दो रूपों में प्रदर्शित किया जाने का विधान किया गया है ––

1. हरि के समीप और साथ में ।
2. लक्ष्मी की पृथक् प्रतिमा ।

प्रथम के अन्तर्गत लक्ष्मी गौरांग, श्वेत वस्त्र धारण करने वाली, सुरूपा, सर्वाभरणभूषित, अपने हाथ में कमल धारण किए दर्शायी जाती हैं ।[420] दूसरे में उन्हें चतुर्भुजी सिंहासनारूढ़ (कमलदलपुक्त) कमलनाल, अमृतघट, बिल्वफल, शंख धारण किए हुए दिखाया जाता है । उनके समीप राजश्री, ब्राह्मी लक्ष्मी, जय लक्ष्मी तथा स्वर्ग लक्ष्मी खड़ी होती हैं ।[421]

लक्ष्मी नारायण :–

विष्णु के साथ लक्ष्मी का संयुक्त रूपांकन लक्ष्मी नारायण रूप कहा जाता है । विष्णु धर्मोत्तर में संदर्भित इस कोटि की प्रतिमाओं को उमा–महेश्वर की भांति समझा जाना चाहिए । लक्ष्मी को कभी–कभी विष्णु की बायीं जांघ पर बैठा हुआ और कभी–कभी विष्णु के साथ गरूड़ारूढ़ दिखाने का विधान किया गया है ।[422]

भू–देवी :–

विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार पृथ्वी देवी श्वेत वर्णा, श्वेत वस्त्रधारी, आभूषणों से सुशोभित और चतुर्भुजी होती हैं । उनके हाथों में औषधि–पात्र, रत्न–पात्र, अस्य–पात्र तथा कमल पुष्प होता है ।[423]

सरस्वती :–

विष्णु धर्मोत्तर का अभिमत है कि सरस्वती का मुख सौम्य, गौरवर्ण होता है । समस्त आभूषणों से भूषित सरस्वती के चार हाथों में वीणा, कमण्डलु, पुस्तक तथा अक्षमाला होती हैं ।[424]

रूक्मिणी :–

श्रीमद्भागवत आदि में लक्ष्मी का जो रूप वर्णित है वही रूक्मिणी स्वरूप है । विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार लक्ष्मी का लावण्यमयी रूप जो विष्णु के मानव रूप में अवतीर्ण होने के साथ हुआ रूक्मिणी स्वरूप है । इसके अनुसार वे अपने हाथ में नीलोत्पल धारण करती है ।[425]

इसके अतिरिक्त मद्रकाली, नन्दा, गौरी, महिषासुर–मर्दिनी, महाकाली, ब्राह्मी, वैष्णवी, माहेश्वरी, इन्द्राणीी, कौमारी, वराही तथा चामुण्डा आदि देवियों के अन्यान्य रूपों को रूपायित करने का निर्देश विष्णु धर्मोत्तर पुराण में हुआ है ।[426]

विष्णु पुराण ने सिद्ध, गुध्यक, विद्याधार, राक्षस, सर्प, पिशाच, दक्ष आदि को देव–योनियों में परिगणित किया है । इन शक्तियों की स्थिति मानव से ऊपर तथा देवगण के नीचे होती है । आलोचित पुराणकार ने इन देवों के रूपायन पर प्रकाश डाला है । इस प्रकार हम देखते हैं कि विष्णु धर्मोत्तर पुराण मूलतः वैष्णव पुराण होने के बावजूद भी लगभग समस्त देवी–देवताओ के प्रतिमा–लक्षण विधान का निरूपण करता है इससे उनके महत्व एवं जनमानस में उनके प्रति ज्ञापित होने वाली श्रद्धा का आभास मिलता है ।

स्थापत्य :–

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में प्रासाद निर्माण सम्बन्धी विशद विवेचन हुआ है । प्रासाद हेतु उपयुक्त भूमि चयन से लेकर प्रासाद लक्षण–निर्माण सामग्री आदि इसके प्रमुख वर्ण्य विषय हैं ।

भूमि चयन :–

अध्याय 93–94 में प्रासाद हेतु उपयुक्त भूमि का चयन परीक्षण आदि संदर्भित है । क्योंकि शुभ–परिणाम हेतु उपयुक्त भूमि का होना परमावश्यक हे । पुराणकार के अनुसार भूमि का रंग भी वर्णानुसार होना चाहिए । तदनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के लिए भूमि का रंग क्रमशः श्वेत, रक्त वर्ण, पीला एवं काला शुभ परिणामदायी होता है । इसी प्रकार कतिपय अनुपयुक्त

भूमियों की भी चर्चा की गई है । इस कोटि की भूमियों में भूषक बिलों से आछन्न, जलासिक्त, कंकड़ों से परिपूर्ण, वधस्थल, बन्दीगृह, अग्निदग्ध, सूर्पाकार, त्रिकोणाकार, दक्षिणाभिमुख, ढालवाली, खनिज भूमि, दुर्गन्धयुक्त भूमि प्रमुख है ।[428]

अध्ययन 93 के श्लोक संख्या 44 से 45 में उपयुक्त भूमि का संदर्भ प्राप्त होता है । शुभ स्थल का चयन करते समय यदि शुभ–वस्तु के दर्शन हो जाय तो सम्बद्ध स्थल को तुरन्त प्रासाद--निर्माण हेतु चुन लिया जाना चाहिए । इसके विपरीत यदि अशुभ वस्तु का दर्शन हो तो उसे त्याज्य समझना चाहिए --

'श्रवणं वा तथैव स्यात्सा शुभा स्याद्वसुन्धरा ।
.........अमंगल्यं तथा दृष्ट्वा ....।'

अध्याय 94 में भूमि–शोधन का विधान दिया गया है । इस प्रक्रिया को शुभ दिन एवं मुहूर्त में संपादित करना चाहिए । भूमि को गाय के गोबर से लीप–पोतकर क्रमानुसार विनायक, विश्वकर्मा एवं स्थपति का पूजन अर्चन करना चाहिए । [431] शिलान्यास ईंट से ही करना चाहिए इसके बाद चयनित भूमि के मध्य में कुम्भ की स्थापना करने का विधान है । शिलान्यास स्थल को मंत्राभिषिक्त करना चाहिए --

नन्दे नन्दय वासिष्ठे...भद्रां गतिं मम् ।[432] तत्पश्चात्

इस प्रकार कामना करनी चाहिए – "इष्टके त्वं ..... मनुष्य पशु हस्त्यश्वधन वृद्धिकरी भव ।[433]

स्तम्भ द्वार आदि :–

तत्पश्चात द्वार स्तम्भ आदि का निर्माण निर्धारित ऊँचाई और परिमाप के अनुसार निर्मित किए जाने का विधान है । देवों के आयुध, लांछन एवं वाहन को आमलसारक पर निर्मित करना चाहिए जो निम्नवत् अनुसार हों --

विष्णु मंदिर	–	गरूड़
लक्ष्मी मंदिर	–	पद्म
दुर्गा प्रासाद	–	सिंह
शक्र (इन्द्र)	–	वज्र
स्कन्द	–	शक्ति
गणपति	–	परशु
अग्नि	–	ज्वाला[434]

देव–प्रतिमा स्थापना :–

देव–प्रासाद एवं प्रतिमा स्थापना के संदर्भ में विष्णु धर्मोत्तर का निर्देश है कि प्रतिमा की स्थापना दुर्ग अथवा उत्तम नगर में हों। इस हेतु अनुपयुक्त स्थलों की सूची निंम्नलिखित है ––

1. ग्राम के बाहर हिस्से में स्थित उपवन
2. सरिता–तट
3. वन
4. तड़ाग का तट
5. मनोहर उपत्यका का शीर्ष भाग
6. पर्वत कन्दरा

देव–प्रासाद के सम्मुख अथवा पार्श्व (बायें) में जल–कुण्ड अवश्य हो किन्तु दायें पार्श्व अथवा पृष्ठ भाग में जल–कुण्ड नहीं बनाना चाहिए।

अध्याय 86–87 के देव–प्रतिमाओं के प्रतिष्ठापन की व्यवस्था दी गई है। विष्णु अवतारों की प्रतिमा प्रत्येक देवालय में स्थापित की जा सकती है ––

विष्णोर्देवस्य कर्तव्यः सर्व एव विशेषतः ।[535]

इसी प्रकार हिमवत्, श्रृंगवत, आगार, गृह, श्वेत, विन्ध्य मंदिरों में सभी प्रकार की देव–प्रतिमाएं स्थापित की जा सकती हैं किन्तु आगार एवं इस कोटि के प्रासादों में केवल लिंग–विग्रह की स्थापना संभव है ।[436] इसी प्रकार श्लोक 26–30 में वलभी, त्रिगुण, तुरंग, कुंजर, भट्ट, अरूणोदय, गरूड़, गुहराज, महाभूत, दिग्बन्ध आदि देवालयों में स्थापित किए और न किए जाने वाली देव–प्रतिमाओं की सूची उपलब्ध होती हैं । इसी अध्याय में अन्य महत्वपूर्ण निर्देश संदर्भित हैं । जैसे विष्णु अवतारों को छोड़कर अन्य किसी देव विशेष की प्रतिमा निर्मित नहीं की जा सकती । चन्द्र और अर्क के साथ अन्य देवप्रतिमा नहीं स्थापित करनी चाहिए ।

सर्वतोभद्र प्रासाद :–

अध्याय 87 इस विषय में विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करता है । "चतुरात्मा हरिर्यत्र कर्तव्यो जगतीपते" के अनुसार सर्वतोभद्र प्रासाद जगत्पति हरि का निवास है । विष्णु की चतुर्मूर्ति प्रतिमा के ही अनुरूप वासुदेव, संकर्षण प्रद्युम्न एवं अग्निरूद्ध की प्रतिमाएं क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर दिशा की ओर अभिमुख होनी चाहिए । इसी प्रकार विभिन्न मण्डपों में स्थापित की जाने वाली देवी प्रतिमाओं का स्थान निर्धारित किया गया है । निर्देशानुसार अन्य देव–प्रतिमाएं स्थापित की जानी चाहिए । इसके अतिरिक्त दिग्पाल, ग्रह, गायत्री चारों वेद ऋषियों के स्थान भी निर्धारित किए गए हैं ।

सर्वतोभद्र प्रासाद के ऐहिक एवं पारलौकिक महात्म्य को श्लोक 48–54 में निरूपित किया गया है । यह भी कहा गया है कि इसे हानि पहुँचाने वाले घोर नरक के भागीदार होते हैं ।

उपरोक्त संदर्भित प्रासाद का विशद विवरण अध्याय 87 में हुआ है । यद्यपि इसके पूर्व एक सौ एक तरह के देव–प्रासादों का विवरण मिलता है किन्तु विशद विवेचन नहीं । इस प्रकार सर्वतोभद्र के अतिरिक्त अन्य सौ प्रकार के देव–प्रासादों की चर्चा उपलब्ध होती है जो हिम्वत् कोटि के ही भेद हैं जिनमें से कुछे निम्नवत् हैं –– त्रिगुण, मालयवत, भवन, विन्ध्य, वृद्धि, वृत्तिद, तुरंग, यथेष्ट, कुंजर, शर्व, गरूड़, ब्रह्माण्ड, गन्धमादन, सौम्य, विशाल, भद्र, लिंग–प्रासाद, सर्वकीट, मेघ, अम्बुद्ध, आकाश, पारियात्र, नन्दम, विमान, नन्दी, कैलाश, धरणीधर, आनन्द,

अध्याय 89 में प्रासाद निर्माण सामग्री का विवेचन किया गया है । विष्णु धर्मोत्तर का निर्देश है कि शुभ दिन और मुहूर्त में काष्ठ का चयन करना चाहिए । उल्लेखनीय है कि प्रतिमा निर्माण में जिन लकड़ियों को वर्जित और त्याज्य बताया गया था अथवा उपयुक्त निर्दिष्ट किया गया प्रायः उन्हीं को उपयुक्त–अनुपयुक्त बताया गया है । इसी प्रकार शिलापरीक्षण का आधार भी प्रतिमा निर्माण हेतु प्रयुक्त की जाने वाली शिलाओं के ही अनुरूप है । इस प्रकार हम देखते हैं कि देव–प्रासाद सम्बन्धी विशद विवेचन पुराणकार ने किया है ।

चित्रकला :–

अध्याय 35 के 1–3वें श्लोक में ही चित्रसूत्र की उत्पत्ति को निरूपित करने के लिए प्रतीकात्मक कथा का सहारा लिया गया है । नारायण मुनि ने अप्सराओं का मानभंग करने के लिए आम के रस से भूमि पर सुरूपा का अंकन किया । इस अंकन का आदर्श नृत्त था ––.

"यथा नृत्ते तथा चित्रे त्रैलोक्यानुकृतिः स्मृता ।"[437]

मार्कण्डेय ने ललित कलाओं की परस्पर सहबद्धता पर प्रकाश डालते हुए वज्र को बताया कि प्रतिमा लक्षण को चित्रसूत्र के बिना नहीं जाना जा सकता । इसी प्रकार बिना नृत्तशास्त्र के चित्रसूत्र को, गीत के बिना नृत्तशास्त्र को काव्यांग–ज्ञान के बिना गीत को नहीं जाना जा सकता ––

चित्रसूत्रं न जानाति यस्तु सम्यंनराधिपः ।
प्रतिमालक्षणं वेतुं न शक्य तेन कर्हिचित् ।।
....
....
बिना तु नृत्तशास्त्रेण चित्रसूत्रं सुदुर्पिदम् ।
जगतोअनुक्रिया कार्या द्वयोरपयितो नृप ।।[438]

पुराणकार ने अध्याय 41 में चित्रों का वर्गीकरण किया है ––

1. सत्य
2. वैणिक
3. नागर
4. मिश्र

जो चित्र के सदृश हो वही सत्य चित्र हैं –[439] यत्किंचिल्लोकसादृश्यं चित्रं तत्सत्यमुच्यते। दीर्घांग, सप्रमाण, सुकुमार एवं भूमियुक्त होता है ––

"दीर्घांगे सप्रमाणं च सुकुमारं सुभूम्किम् ।"[440]

तीसरे चौथे श्लोक में वैणिक और नागर चित्र को स्पष्ट करते हुए वैणिक को चौकोर एवं सुन्दर मुद्राओं से परिपूर्ण बताया गया है । जबकि, नागर वृत्ताकार होने के साथ–साथ मालाओं और अलंकरणों से सुशोभित किया जाता है । इन तीनों का समन्वित रूप ही 'मिश्र' है । यद्यपि इन तीनों की व्याख्या को लेकर विद्वानों में परस्पर मतैक्य नहीं है ।

अध्याय 43 के श्लोक 31–35 में अन्य दृश्यकलाओं का संदर्भ उपलब्ध होता है जो प्रत्यक्षतः चित्रकला से सम्बद्ध न होते हुए चित्र–लक्षणों की दृष्टि से सम्बन्धित मानी जा सकती हैं जो निम्नवत् हैं ––

1. खातपूर्व (यथाचित्रं तथैवोक्तं खातपर्वूं) :–
   सोने, चांदी पर किया जाने वाला चित्रकर्म
2. प्रतिमाकरण, शिला और लकड़ी, लोहे पर किया जाने वाला –– शिलादारूषु लौहेषु प्रतिमाकरणं ।
3. पुस्तकर्म – यह दो प्रकार की होती थी ।

पृष्ठभूमि और लेप :–

आलोचित पुराण में चित्र के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि का निर्माण, लेप और लेपन–विधि,

रंग (मूल और मिश्रित) आदि का विवेचन अध्याय 40 के अन्तर्गत किया गया हे, जिसे " रंगव्यतिकरो" नाम दिया गया है। चित्र–विधान की दृष्टि से इस अध्याय का विशेष महत्व है।

चित्र बनाने के पूर्व दीवार पर मोटा लेप (प्लास्टर) लगाना चाहिए। इस प्रकार का लेप बनाने के लिए तीन प्रकार की ईंटों का चूर्ण प्रयुक्त करना चाहिए। इस मिश्रण में गुग्गुल, मोम, कुन्दरूक, गुड़, कुसुम्भ मिलाना चाहिए फिर इसका तीन गुना पका हुआ चूना मिश्रित करना चाहिए त्रिप्रकारेष्टिकाचूर्ण ...... सुधायास्तत्र चूर्णयेत्।[441] इसके बाद बालू, कसौटी का चूर्ण आदि मिलाने और लेप तैयार करने का वृतान्त है। इसे एकसार लगाना चाहिए। पृष्ठभूमि चमकदार और चकिनी बन सके, घिसने और रगड़ने की विधि दी गई है। पुराणकार के अनुसार इस प्रकार की पृष्ठभूमि पर निर्मित चित्र की अवधि शतवर्षपर्यन्त होती है --

"वर्षशतस्यान्ते न प्रणश्येत्तु कर्हिचित्।"

उपरोक्त विधि से बनायी जाने वाली साधारण भूमि है। पुराणकार ने कुछेक विशिष्ट मणिभूमियों की चर्चा और निर्माण–निर्देश दिया है।

शुभाशुभ विचार :–

चित्रकार के लिए भी यह आवश्यक है कि वह चित्र निर्माण का श्री गणेश शुभ घड़ी में और शास्त्रोक्त विधि से करें। इस प्रकार का विधान मूर्ति निर्माण और प्रासाद निर्माण के प्रसंग में किया गया है। पुराणकार ने चित्र निर्माण का आत्म चित्रा–नक्षत्र में करना श्रेयस्कर माना है --

.... चित्रायोगे विशेषण ..... । वह श्वेत वस्त्र पहने, ब्राह्मण–गुरूजनों का आशीर्वाद ग्रहण करें। देवताओं का पूजा–ध्यानादि करें।[442]

मूल रंग :–

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अध्याय 27 और 40 में मूल रंगों की सूची दी गई है। जहाँ अध्याय 27 में रंगों की सूची अभिनय कर्मियों के अलंकरण एवं रूप सज्जा हेतु है वहीं अध्याय 40

में संदर्भित रंग चित्र के लिए हैं। आहार्यभिनय (अध्याय 27) के अन्तर्गत श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण और हरे रंग को मूल रंग (छवि) माना गया है --

श्वेतो रक्तस्तथा पीतः कृष्णो हरतिमेव च।[443]

किन्तु अध्याय 40 में मूल रंगों की सूची में श्वेत, पीत, विलोम, कृष्ण और नील हैं --

श्वेतः पीतो विलोमतः कृष्णो नीलश्च।[444]

भारत के नाट्यशास्त्र में भी रंगों का विभाजन उपरोक्त के सदृश ही है।[445] वैसे पुराणकार में चित्रकार को आवश्यकतानुरूप रंग बनाने के लिए स्वतंत्र किया है --

भावकल्पनया तथा स्वबुद्धया।

<u>रंग निर्माण एवं सामग्री</u> :-

रंगों के निर्माण में जिन द्रव्यों, वस्तुओं अथवा धातुओं के योग की आवश्यकता होती थी, उन द्रव्यों की सूची में कनक, रजत, ताम्र, अभ्रक, लाजवर्द, सिन्दूर, हरिताल, सुधा, लाक्षा, हिंगलुक, नील आदि की गणना की गई है। धातुओं से रंग निर्माण की पूरी विधि दी गई है। ऐसी मान्यता थी कि धातु से निर्मित रंग दीर्घ कालावधि तक बने रहते हैं। अजन्ता, एलोरा आदि के गुफाचित्रों के आलोक में यह तथ्य पूर्णतया सत्य भी है।

<u>वर्तना</u> :-

अध्याय 41 में वर्तना के तीन प्रकार बताए गए हैं -- पत्रजा, हैरिकजा, बिन्दुजा। यद्यपि वर्तना के अर्थ को लेकर मतैक्य नहीं हे, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि यह वातावरण की विधायिका है और इसका सम्बन्ध रंग से ही है।[446] मौलिक रंग थोड़ से हैं किन्तु मिश्रित रंगों की संख्या असीमित है और यह चित्रकार की कल्पना एवं बुद्धि-विलास का विषय है। जहाँ तक पत्र वर्तना का सम्बन्ध है इसका निर्माण रेखाओं से होता है। बिन्दु वर्तना स्तम्भनयुक्त है जबकि हैरिकजा अत्यन्त सूक्ष्म होती है।

गुण, दोष और चित्रादर्श :–

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अध्याय 41 के श्लोक 7–8 और 17–18 में चित्र सम्बन्धी दोषों का विवेचन किया गया है । तदनुसार अस्प्ष्ट (अविभक्तत्व), दुर्बल टेढ़ी–मेढ़ी और टूटी हुई रेखाएं नहीं होनी चाहिए । शरीर के विभिन्न अवयवों का सुन्दर, सप्रमाण निरूपण किया जाय । उनके पारस्परिक आनुपातिक अंशों में साम्य होना चाहिए । लोकमानस के प्रतिकूल किसी भी दृश्य अथवा विषय का चित्रांकन वर्जित किया गया है । चित्र के गुणों का परिगणन करते हुए पुराणकार ने यह मंतव्य प्रकट किया है ––[447]

स्थान प्रमाण भलम्बो मधुरत्वं विभक्तता ।
सादृश्यं क्षयवृद्धी च गुणाश्चित्रस्य कीर्तिताः

कामसूत्र की व्याख्या करते हुए यशोधर ने 'आलेख्य' (चित्रकला) के छः अंगों को बताया है ––

रूपभेदाः प्राभाणानि भावलायण्ययतोजनम् ।
सादृश्यं वर्णिकाभंग इति चित्रंषडंगकम् ।।

विष्णु धर्मोत्तर में संदर्भित चित्र के समस्त गुण यशोधर के उपरोक्त मानदण्डों के अनुरूप ही है । पुनश्च, पुराणकार ने चित्र के चार प्रमुख तत्वों को भी रेखांकित किया है ––

सुस्निग्धविस्पष्टसुवर्णरेखं विद्वान्यथादेशविशेषवेशम् । प्रमाणशोभाभिरहीयमानं कृतं भवेच्चित्रभतीव चित्रम् ।[448]

अर्थात् सुस्निग्ध, स्पष्ट, स्वर्ण, रेखाओं से पूर्ण देश–विदेश की वेश–भूषा से युक्त सप्रभाव, लावण्यमय, मानयसुक्त चित्र ही उत्तम एवं श्रेष्ठ है । इसके अतिरिक्त चित्र को यथार्थ एवं वस्तु के अनुरूप बनाना चाहिए अर्थात् जीवित वस्तुओं को ऐसा बनाया जाय जिसकी हर साँस और धड़कन चित्र में रूपायित हो और चित्र ऐसे लगते हैं जैसे बोलना ही चाहते हों । अजन्ता के चित्र इसी कोटि के हैं । पुराणका का कथन है ––[449]

तरंगाग्निशिखाधूमं वैजयन्त्यं वरादिकम् ।

वायुगत्या लिखोद्यस्तु विज्ञेय:स तु चित्रवित् ।।

चित्र–विषय :–

चित्रों को प्रदर्शित करते समय स्वभाव परिवेश आदि की अनुकूलता का ध्यान रखना चाहिए जैसे राजा का रूप निर्माण देवताओं का सदृश होना चाहिए । ऋषि, मुनि, ब्राह्मण आदि का वेश भद्र दिखाना उचित है । ब्राह्मणों आदि को श्वेत वस्त्रधारी, राजाओं, मंत्रियों को विविध आभूषणों से सुशोभित वैश्याओं को उद्धत एवं श्रंगारयुक्त, कुलस्त्रियों को लज्जाशील, दैत्यों का रूप भयावह प्रदर्शित करने का निर्देश पुराणकार ने दिया है । अर्थात् जो कुछ जैसा दिखायी दे उसे ज्यों का ज्यों रेखांकित किया जाय ––

दृष्टं सुसदृश्यं कार्य सर्वेषामविशेषतः ।

चित्रे सादृश्यकरणं प्रधानं परिकीर्तितम् ।।[450]

जहाँ तक प्राकृतिक उपादानों का प्रश्न है नदियों को नारी रूप में रूपायिक करने का निर्देश है, जो पूर्ण कुम्भ धारण किए हो । उनके वाहन भी रूपायित किए जाएं । इसे वास्तुकला के ही सदृश समझना चाहिए जैसे गंगा और यमुना के वाहन मकर और कच्छप बनाए जाते हैं ।

मान–प्रमाण :–

इसके अन्तर्गत स्त्री–पुरुष आकृतियों के आंगिक अनुपात का विशद विवेचन किया गया है जिसे 'मान–प्रमाण' की संज्ञा दी गई है । इसी के आधार पर पुरुषों की पाँच कोटियाँ बनायी गयी हैं ––

1. हंस
2. भद्र
3. मालत्य
4. रूचक
5. शशक

परिमाप की दृष्टि से इसके शशक सर्वाधिक छोटा (90 अंगुल) है और हंस पुरुष सबसे बड़ा । उल्लेखनीय है कि इनके समस्त आंगिक अनुपात निश्चित किए गए हैं । जहाँ तक नारी आकृतियो का प्रश्न है अध्याय 37 मे उपरोक्त पुरुषो के ही सदृश पॉच प्रकार की स्त्रियो की भी पॉच कोटियाँ निर्धारित करते हुए पुराणकार ने केवल इतना ही कहा है कि नारी आकृति पुरुष के कंधे की ऊँचाई तक होनी चाहिए । साथ ही उसे पुरुष के समीप बनाना चाहिए । अध्याय 36 में पॉचो प्रकार के पुरुषों के स्वरूप को भी निर्धारित किया गया है । साथ ही अन्य आंगिक अवयवों के भी मानदण्ड निर्धारित किए गए हैं । इसी प्रकार राजाओं, देवों आदि के भी स्वरूप बताये गये हैं ।

अध्याय 38 के श्लोक 22–23 में चित्रों के ऊपर लेप लगाने का निर्देश है क्योंकि इन्हें रूखा रखना शास्त्र सम्मत नही माना गया । जैसा कि अजन्ता के चित्रों में दृष्टिगत होता है ।

<u>रस</u> :–

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में रस में सम्बद्ध एक अलग अध्याय 43 दिया गया है । वैसे इसका निरूपण नाट्य विवेचन के संदर्भ में भी किया गया है किन्तु चित्र के संदर्भ में इसकी महत्ता को प्रदर्शित अभिव्यंजित करने के कारण 'श्रृंगारादिभावकथनं' नामक अध्याय की नियोजना की गई है । रस को काव्य की आत्मा माना गया है चित्र के संदर्भ में भी यही बात लागू होती है । अध्याय 40 के श्लोक 4–10 में इन रसों को रूपायित करने की विभिन्न विधियाँ दी गई हैं । जैसे श्रृंगार रस को निरूपित करने में सुन्दर रंग, लावण्यमय आकृतियाँ, मधुर मुद्राएं, अच्छे वस्त्र आभूषणादि सहायक बताये गए हैं ।

रसानुकूल रंगों का भी निर्धारण किया गया है जो नाट्य परम्परा के अनुकूल ही हैं । इन्हे निम्न तालिका अनुरूप समझा जा सकता है ––

श्रृंगार – श्याम

हास्य – श्वेत

वीर – गौर

रौद्र – रक्त

रसों के अधिष्ठातृ–देवों की भी सूची अध्याय 30 में दी गई है, जो निम्नवत् है --

श्रृगार – विष्णु

रौद्र – रूद्र

वीभत्स – महाकाल

अद्भुत – ब्रह्मा

स्थान :–

पुराणकार ने 'स्थान' का उल्लेख किया है जिसका तात्पर्य आकृति की विभिन्न मुद्राओं से है अर्थात् चित्र को किस स्थिति मे प्रदर्शित किया जाय कि चित्रकार का उद्देश्य यथावत् सिद्ध हो। इस दृष्टि से नौ 'स्थान' निर्धारित किए गए हैं --

1. ऋज्वागत
2. अनृजु
3. साचीकृत
4. अर्धविलोचन
5. पार्श्वगत
6. परावृत
7. पृष्ठागत
8. परिवृत
9. समानत

इसी प्रकार क्षयवृद्धि की दृष्टि से तेरह प्रकार के संस्थान निर्धारित किए गए हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विष्णु धर्मोत्तर पुराण ने मानसोल्लास, समरांगण सूत्रधार आदि ग्रंथों की भांति चित्रकला सम्बन्धी शास्त्रीय विवेचना को विशद आयाम दिया है।

संदर्भ

1 अध्याय 35 से 43 चित्रसूत्र, 44–85 प्रतिमालक्षण तथा 86–118 प्रासाद लक्षणो के विवेचन से सम्बद्ध है।

2. ऋग्वेद, दसवाँ मंडल 130,3

3. विभ्रद्दापिं हिरण्यं वरुणो वस्त निर्णिजम् । परि स्पशो निषेदिरे .... । ऋग्वेद, प्रथम मंडल 25, 13

4. क इमं दर्शमिर्भमेन्द्रं क्रीणाति धेनुभि । ऋग्वेद 4,24,10

5. ऋग्वेद 8,15

6. इन्द्राग्नि शुभतां नरः । ऋग्वेद 1,21,2

7. तिस्रो देवीः हिरण्यमयीः भारतीर्बृहति महीः

8. नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशीः प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, 1977, पेज –18

9. षडविंश ब्राह्मण, 10,5

पारस्पर गृह्यसूत्र, पेज – 69

10. आपस्तम्ब, 20,1,3

11. प्रतिमा विज्ञानः डा0 इन्दुमती मिश्र, 1977, पेज – 471

12. ऋग्वेद 10, 130, 3

13. अष्टाध्यायी 5, 3, 96

14. भौयैर्हिरण्यार्थिभि. अर्चा प्रकल्पिता

15. महाभारत 11/15–17

16. विष्णु धमोत्तर खण्ड 3, अध्याय – 46, 5–9

17. श्रीमद्भागवत 11, 5, 21

18. उपरोक्त 11, 5, 24

19. उपरोक्त 11, 5, 26

20. उपरोक्त 11, 5, 32

21. विष्णु धर्मोत्तर 43, 32

22. उपरोक्त 43, 31

23. उपरोक्त 91, 3–8

24. उपरोक्त 89, 3–7

25, उपरोक्त 91, 9–10

26. एन0के0 भट्टसाली

27. गोपीनाथ राव
 भाग – 1, भूमिका, पृष्ठ – 49, 1914–15

28. जे0एन0 बनर्जी

29. विष्णु धर्मोत्तर 90, 2
 शुक्ला शस्ता द्विजातीनां क्षत्रियाणां च लोहिता,
 विशां पीता हिता कृष्णा शूद्राणां च हितप्रदा ।

30. शुक्रनीति 5, 41–42

31. विष्णु धर्मोत्तर 90, 3–5

32. सर्ववर्णेषु शुक्लेषु प्रशस्तं हीरकं स्मृतम् । उपरोक्त 90, 24

33. उपरोक्त 90, 22–23

34. श्वेतश्च पद्मवर्णश्च कुसुमोषरसन्निभम् ।
 पाण्डुरो मुद्गवर्णश्च कापोतो भृंगसन्निभः ।।
 ज्ञेयाः प्रशस्ताः पाषाणाः अष्टावेते न संशयः ।
 विष्णु धर्मोत्तर 90, 21–22

35. जे0एन0 बनर्जी, उपरोक्त, पेज – 83

36. एन0के0 भट्टसाली, उपरोक्त, पेज – 11

37. विष्णु धर्मोत्तर 90, 25–28

38. या लौविमलैर्जुष्टा सा जनक्षयकारिणी ।
 कांस्याभविमलोपेता जनमानविनाशिनी ।।
 हेमेनयुक्ता दुर्भिक्षं तथा कुर्यादवग्रहम् ।

39. उपरोक्त 90, 11–13

सगर्भा तां विजानीयात् यत्नेन च विवर्जयेत्

भञ्जिष्ठवर्णसंकाशे गर्भे भवति

दर्दुर :............... भस्मवर्णे तु बालुका ।

40. विष्णु धर्मोत्तर 90, 15–20

41. विष्णु धमोत्तर 1, 6, 35–37

42. विष्णु धर्मोत्तर 45, 2–4

43. श्रीमद्भागवत 3, 21, 21

तुलनीय ––

(क) स एवसृज्यः स च सर्गकर्ता, स एव पात्यत्ति च पाल्यते च ।

ब्रह्माद्यवस्थामिरशेषमूर्ति विष्णुर्वरिष्ठो वरदो वरेण्यः ।

विष्णु पुराण 1, 2, 70

(ख) एकः स्वयं सञ्जगतः सिसृक्षया द्वितीययाऽऽत्मन्नधियोगमायया ।

सृजस्यदः पासि पुनर्ग्रसिष्यते यथोवर्णनाभिर्भगवान् स्वशक्तिमिः ।।

श्रीमद्भागवत 3, 21, 19

(ग) उपरोक्त 1, 2, 31–33

(घ) तिस्रः मूर्तयः प्रोक्ताः सृष्टिस्थित्यन्तहेतवः ।

कूर्म पुराण, 22, 26

44. वायु पुराण 3, 66 ,110

तुलनीय ––

यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रूद्रक्रोध समुद्रभवः ।

श्रीमद्भागवत, 12, 5, 1

45. विष्णु धर्मोत्तर, 173/5

46. उपरोक्त, 173/7

47. उमाकाभिकाग्रम् 38, 17–21

48. अंशुमद्भेदागम, अध्याय – 31

49. गोपीनाथ राव, उपरोक्त भाग ।
50. अमाकामिकागम 38, 22–23
51. गोपीनाथ राव, उपरोक्त भाग–1, पृष्ठ 43.45
52. जे.एस. बनर्जी, उपरोक्त, पृष्ठ 477
53. विष्णुधमौत्तर 85.5 ।
54. गोपीनाथ राव उपरोक्त, पृष्ठ– 383
55. जे.एन.बनर्जी, उपरोक्त, पृष्ठ–246
56. डा0 इन्दुमती मिश्र :प्रतिमा विान, 1972, पृष्ठ– 109
57. विष्णुधर्मोत्तर, 48,7
58. उपरोक्त, 44,5
59. उपरोक्त, 48,5
60. बृन्दावन भट्टाचार्य, इण्डियन इमेर्जेज़, पृष्ठ 17
61. गोपीनाथ राव, उपरोक्त, पृष्ठ 382–85
62. बनर्जी, उपरोक्त, पृष्ठ 475
63. सूर्यकान्त, वैदिक देवशास्त्र, पृष्ठ 85–86
64. डा0 सम्पूर्णानन्द, हिन्दू देव परिवार का विकास, 1964, 94
65. उपरोक्त
66. ऋग्वेद 1,23,21
67. विष्णुधर्मोत्तर (60.2)
68. उपरोक्त 104, 34
69. उपरोक्त 104, 35 । तुलनीय "प्रसादेनोपसंहर"
70. रामाश्रय अवस्थी, खजुराहो की देव प्रतिमाएं, 1967. पृष्ठ–79
71. विष्णुपुराण, 5,3,10

तुलनीय –

(क) गत्वा ध्रुवमुवाचेदं चतुर्भुजवपुर्हरिं ।

उपरोक्त, 1,12,41

(ख) जयेश्वराणां परमेशकेशव प्रभो गदाशंखधरासिचक्रधृक् ।

उपरोक्त, 1,2,35

(ग) सुदर्शनादिभिः स्वास्त्रैर्भूर्तिमदिभरुपसितम् ।

श्रीमद्‌भागवत, 8,6,7

(घ) चतुर्भुजः शंखगदाब्जचक्रः ।

उपरोक्त 8,18,1

72. मत्स्यपुराण, 258, 4–15

73. बृहत्संहिता 58,31

74. भागवत पुराण, 6,4, 36–38

75. अग्निपुराण, 49, 16–17

76. विष्णु पुराण, 1, 12, 45

77. एच0के0शास्त्री,

78. विष्णु पुराण, 85, 16–17

79. जे0एन0 बनर्जी

80. एन0के0भट्टसाली

81. उपरोक्त, पृष्ठ – 88

82. जे0एन0बनर्जी, उपरोक्त, पृष्ठ– 401

83. बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ 129

84. विष्णु पुराण 1,2,12

85. विष्णुधर्मोत्तर 85,2

86. उपरोक्त 85,3–4

87. उपरोक्त 65, 6–8

88. उपरोक्त 85, 11–14

तथा अग्निपुराण 48, 6 --

दक्षिण तु करे चक्रमधस्तात्पद्ममेव च ।

वामे शंख गदाधस्ताद्वासुदेवस्य लक्षणम् ।।

89. जे0एन0बनर्जी, उपरोक्त, पृष्ठ 400

90. बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय, पृष्ठ, 19

91. विष्णुधर्मोत्तर पुराण 85, 22

92. श्रीमद्भागवत 5,25,4

93. बृहत्संहिता, 58,36-39

94. अग्निपुराण, 49, 12

95. विष्णुधर्मोत्तर, 85, 30-31

96. उपरोक्त 85, 29-30

97. विष्णुधर्मोत्तर 103, 14-17

98. श्रीमद्भागवत 10,55, 1-2

99. उपरोक्त 10,55,33

100. उपरोक्त 10,55,27-28

101. देवमावहयिष्यामि प्रद्युम्नमपराजितम् ।

दूर्वाङ्कुरदलश्यामं शशाङ्कांशुसमाम्वरम ।।

काम कामप्रदं शान्तं कमनीयं कलेवरम् ।

चापयष्टिविनिर्मुक्तशराहतजगत्रय ।।

विष्णुधर्मोत्तर 106, 18-21

102. उपरोक्त 85, 23.24

103. श्रीमद्भागवत 10,62,31

104. विष्णुधर्मोत्तर 106, 22-24

105. उपरोक्त 118, 2-3

106. उपरोक्त 44, 11--12

107. उपरोक्त 44, 13–14

108. गोपीनाथ राव

भाग 1, पृष्ठ 263

109. जे0एन0बनर्जी

पृष्ठ 408–9

110. श्रीमद्भागवत 11,6–7

111. वैदिक देवशास्त्र, सूर्यकान्त, पृष्ठ 22.23

112. माहेश्वरी प्रसाद, भारती अंक–4, पृष्ठ 142

113. विष्णुधर्मोत्तर 83, 1–2

रुपेन केन कर्तव्यो विश्वरुपधरो हरिः ।

आदौ दैवस्य कर्तव्याश्चत्वारो वैष्णवा मुखाः ।

114. विष्णुधर्मोत्तर 83,11

वेक्तामूर्ति प्रकरण 5,94–97

अपराजित पृच्छा 219, 28–32

रुपमण्डन 3, 55–57

115. महेश्वरी प्रसाद, भारती अंक 4, पृष्ठ–147

116. विष्णुधर्मोत्तर, 83, 2–5

117. नानाविधानि सन्तवानी मुखैरन्यैस्तथैव च ।

ग्रसमानः स कर्तव्यः सर्वौ : सत्वभयङ्.रैः ।

कार्याण्युद्भवमानानि मुखाः कार्याश्च ते शुभाः ।

उपरोक्त 83, 6–7

118. द्रष्टव्य, ग्वालियर संग्रहालय की प्रतिमा

119. विष्णुधर्मोत्तर, 83, 8–10

120. मथुरा कला, पृष्ठ 65

121. वासुदेवसरण अग्रवाल, गुप्ता आर्ट, 9

122. यू0पी0 शाह,

फलक 50

123. बनर्जी, उपरोक्त, पृष्ठ 404–5

124. गीता, 11, 11–29

125. वासुदेवशरण अग्रवाल, उपरोक्त

126. विष्णुधर्मोत्तर, 83,11

127. उपरोक्त, 83,8

खजुराहो, फलक 66

128. रामाश्रय अवस्थी, खजुराहो की देव–प्रतिमाएं, 141–2

129. शिवराममूर्ति, फलक 33

130. अवस्थी, उपरोक्त, पृष्ठ 139

131. विष्णुधर्मोत्तर 81, 2–8

132. बी0सी0भट्टाचार्य भाग (1), 6

133. डी0डी0 कौशाम्बी, मिथक और यथार्थ

134. भट्टाचार्य, उपरोक्त पृष्ठ 6–8

135. श्रीमद्भागवत 10,39,39

तत्रोपस्पृश्य पानीयं मृष्टं मणिप्रभत् ।

वृक्षषण्डमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ।।

136. उपरोक्त 10,89, 53–58

137. शेषाहिभोगपर्यन्तविस्तीर्णशंयनाच्युत ।

तत्फणावलिरत्नांशुलवितानक कृतोन्तर ।।

तक्ष्मीसंवाह्यमानाङ्.प्रकमलद्वयराजित ।

विष्णुधर्मोत्तर 107,6

138. नारायणं सुदुष्पार देवं शार्ङ्.धनुर्धोन्तर ।

अतसीकुसुमश्यामं पीतावाससमच्युक्त ।।

बिबुद्धः पुण्रीकाक्षः शरणागतवल्सलः ।

उपरोक्त, 107, 4.5

139. एकः पादोऽस्य ....मधुकैटभौ ।

उपरोक्त 81, 1, 3–7

140. उपरोक्त, 81, 8

141. गोपीनाथ राव ने इसके विपरीत साधारण प्रतिमाओं का उदाहरण माना है ।

राव, उपरोक्त, पृष्ठ 217

142. अवस्थी, उपरोक्त, पृष्ठ 85

143. कर्निंवम्स आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट 10, पृष्ठ 52

144. अवस्थी, उपरोक्त, पृष्ठ 82–85

145. (क) विष्णुधर्मोत्तर 85, 49–51

(ख) इस पुराण में शयन और आसन दोनों मुद्राओं की स्वीकृति है––

देवमावाहयिष्यामि.......भोगिभोगशयंप्रभुम् ।

उपरोक्त 106, 82–83

(ग) इन्दुमती मिश्र ने इन्हें एक रुप मानते हुए भी भिन्न–भिन्न माना है ।

पूर्वनिदिष्ट, पृष्ठ 251

146 इन्दुमती मिश्र, पूर्वनिदिष्ट, पृष्ठ– 249–50

147. नृसिंह रुपं कथितं वाराहं कापिलं तथा

विष्णुधर्मोत्तर 85, 53

148. श्रीमद्भागवत, 8,5, 11–15

अपराजितपृच्छा, 219, 12–14

रूपमण्डन, अध्याय 53

149. श्रीमद्भागवत 6,4, 35–38

150. गोपीनाथ राव, पूर्वनिर्दिष्ट, फलक 79

151. केतुश्च मकरः कार्यः पञ्चबाणमुखो महान् ।

उपरोक्त 73, 22

154. वक्ष्ये मनझिजं ....नन्दनं वनम् ।

शिल्परत्न, 45, 11-18

153. गोपीनाथ राव, पूर्व निर्दिष्ट 278-79

156. एल0के0त्रिपाठी, भारती अंक 4, पृष्ठ 166

वी0एस0पाठक, सं0पृष्ठ-9

157. विष्णुसहस्रनाम

158. श्रीमद्भागवत 8,5,4-5

विष्णुपुराण 3,1,41

159. भाग 1, पृष्ठ 124

160. वी0एस0पाठक, राष्ट्रकवि मैथिलीशरणगुप्त अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ 932

161. एकमूर्तिधरः कार्यो बैकुण्ठेल्पभिशब्दितः ।

चतुर्भुखः स कर्तव्यः प्रागुक्तवदनः प्रभुः ।।

चतुर्मूर्तिः स भवति कृते मुखचतुष्टये ।

विष्णुधर्मोत्तर 85,43-44

162. उपरोक्त 47,9,10

163. उपरोक्त 44, 11-12

सौम्यं तु वदनं पूर्वं नारसिंह तु दक्षिणम् ।

कापिलं पश्चिमं वक्त्रमं वराहमुन्तरम् ।।

164. विष्णुधर्मोत्तर 85, 44-46

तुलनीय--

अनादि निधनं दैवं जगत्सृष्टारमीश्वरम् ।

....

....

वैकुण्ठं नारसिंहास्यं वाराहं कापिलावनम् ।।

165. विष्णुधर्मोत्तर 44, 12–13

166. उपरोक्त, 85, 45–47

167. भट्टाचार्य, पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ठ 18

168. कुमारस्वामी, बेलेटिन आफ दि म्यूजियम आफ फाइन आर्ट्स, बोस्टन, भाग 17, सं0 104, पृष्ठ 60

169. रामाश्रय अवस्थी, पूर्वनिर्दिष्ट, पृष्ठ 133

170. आर0सी0अग्रवाल, आडयार लायेब्रेरी बुलेटिन, भाग 18 फलक संख्या 3–4

171. उपरोक्त, पृष्ठ 262–62, राजस्थान भारती अंक 4, 1955, पृष्ठ 18–19

172. एम0आर0मजूमदार, इण्डियन हिस्तारिकल क्वार्टरली, कलकत्ता, भाग 16 सं0 3 पृष्ठ 531

173. रघुवंश, 13,8,13,1,13,5

174. मेघदूत 1,15

175. भागवतपुराण, 8,24; हापकिन्स ,218

176. अवस्थी, पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ठ 92

177. मत्स्यावतारिणं देवं मत्स्याकारं प्रकल्पयेत्, विष्णुधर्मोत्तर 85,60

178. उपरोक्त, 65, 59

179. भट्टाचार्य, पृष्ठ 19

180. गोपीनाथ राव, पूर्व निर्दिष्ट भाग 1, पृष्ठ 218

181. भट्टाचार्य, पूर्व निर्दिष्ट

182. रामाश्रय अवस्थी, पूर्व निदिष्ट, पृष्ठ 93

183. शतपथ ब्राह्मण 3,5,21 ; 7,4,3,5

184. श्रीमद्भागवत 8,7, 6–8

185. उपरोक्त 8,7,8 तथा 8,7,10

186. विष्णुधर्मोत्तर 106, 92

187. श्रीमद्भागवत 8,7,10 तथा विष्णुधर्मोत्तर 106, 94

188. अवस्थी, पूर्वनिदिष्ट, पृष्ठ 94–95

189. रामायण, 3,45,13

190. महाभारत वनपर्व 102, 32

वाराह वपुमाश्रित्य जगदर्थे समुद्धृता ।

इसी प्रकार 126, 12 के अनुसार ---

"वराहरूपभास्थाय हिरण्याक्षो निपातितः ।"

191. श्रीमद्भागवत 3,13,26

विनद्यूभयो विविधोदयाय,

गजेन्द्रलीलो जलमाविवेश ।

192. विष्णुधर्मोत्तर 79, 2-6

193. उपरोक्त 79, 7

194. समग्रकोंडरुपो वा बहुदानवमध्यगः ।

नृवराहो वा कर्तव्यः क्ष्मावधारणे ।।

विष्णुधर्मोत्तर 79,10

195. उपरोक्त 79,9

196. इन्दुमती मिश्र, पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ठ 200,

गोपीनाथ राव, पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ठ 130-42

बनर्जी जे0एन0, पूर्व निर्दिष्ट पृष्ठ 41-17

197. भागवत 2,7,14

198. मत्स्यपुराण 260, 31-35

199. अग्निपुराण 49,17 तुलनीय रुपमण्डन अध्याय 3,25

200. भागवत, पूर्वनिर्दिष्ट

201. विष्णुधर्मोत्तर 78,7

202. उपरोक्त 44, 11-12

203. उपरोक्त 106, 40-41

204. उपरोक्त 78,4

205. उपरोक्त 106, 41-43

206. वैखानस आगम, 42

207. शिल्परत्न, अध्याय, 25, 11

208. भट्टाचार्य बी0सी0 फलक आठ चित्र चौथा

209. गोपीनाथ राव, पूर्वनिर्दिष्ट, पृष्ठ 155–59

210. अवस्थी, पूर्व निर्दिष्ट पृष्ठ 101–4

211. डा0 सम्पूर्णानन्द, हिन्दू देव परिवार का विकास, पृष्ठ 93–94

मैक्डानेल, द वेदिक माइथोलॉजी पृष्ठ 41

सूर्यकान्त, वैदिक देवशास्त्र, पृष्ठ 92

212 राव, पृष्ठ 166–67

श्रीमद्भागवत 8,18,12–33

महाभारत 149,30, 149,69

रूपमण्डन 4,26

शिल्परत्न 25,15

अपराजित पृच्छा 219

213. विष्णुधर्मोत्तर 85, 54.55

214. तुलनीय —

(क) अग्निपुराण 49,5

(ख) दत्री दण्डी वामनः स्यादथवास्याच्चतुर्भुजः ।

अपराजितपृच्छा, 219

(ग) वामनस्सशिखश्यामों दण्डी पीनोम्बपात्रवान ।

रूपमण्डन 4,26

215. विष्णुधर्मोत्तर 85, 55–56

तुलनीय-----

(क) त्रिविक्रम वक्ष्ये वामपादेन मेंदिनीम् ।

आक्रामन्तं द्वितीयेन साकल्येन नभस्स्थलम् ।।

शिल्परत्न 25,18

216. अवस्थी, पूर्वनिर्दिष्ट पृष्ठ 106–8

217. गोपीनाथ राव, पूर्व निर्दिष्ट 174–76

218. कार्यस्तु भार्गवो रामो जटामण्डलुददृशः ।

हस्ते यः परशुः कार्यः कृष्णाजिन धरस्य ।।

विष्णुधर्मोत्तर, 85, 61–62

219. रामश्चापेषुहस्तस्सयात्खड्गी परशुनान्वितः ।

अग्निपुराण 49,50

220. जामद्ग्न्यरामं..........कारयेत् ।

तुलनीय---

"जटाजिनधरो रामो भार्गवः परशुं दधत् ।"

रूपमण्डन 3,26

221. बनर्जी जे0एन0 पूर्व निर्दिष्ट पृष्ठ 420–21

222. अवस्थी पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ठ 109–10

223. बनर्जी, पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ठ 422

224. विष्णुधर्मोत्तर 85, 62–63

225. उपरोक्त 85, 72–74

226. गोपीनाथ राव, पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ट 205, फलक 58

227. अग्निपुराण 49,9

तुलनीय--- (क) रूपमण्डन 4, 30, 31

बुद्ध पद्मासनो रक्तस्त्यक्ताभरणगूर्धजः ।

काषायवस्त्रोध्यनस्थो द्विभुजो कार्द्धपाणिकः ।।

(ख) वृहत्संहिता 56,36

228. विष्णुधर्मोत्तर 85,71

तुलनीय---

(क) कल्की सखउगोडश्वारूढ़ोहरेरवतराइमे ।

रूपमण्डन 4,34

(ख) कल्किनं.............भयानकमेव देवरुप ।

बैखानस आगम 53

(ग) धनुस्तूणान्वितः ....शंखचक्रशरान्वितः ।

अग्निपुराण 49,9

229. गोपीनाथ राव, पूर्व निर्दिष्ट फलक 35

230. बी0सी0भट्टाचार्य, पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ठ 13

231. अवस्थी रामाश्रय, पूर्वनिर्दिष्ट पृष्ठ 126–27

232. विष्णुधर्मोत्तर 85, 65–66

233. उपरोक्त, 42, 3–4

234. विष्णुधर्मोत्तर 85,65

235. अवस्थी, पूर्व निर्दिष्ट 127–29

236. सवै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसम्भवः ।

श्रीमद्भागवत 8,8,34

237. विष्णुधर्मोत्तर 73,41

238. श्रीमद्भागवत 8,8,41

सम्पूर्ण प्रसंगार्थ द्रष्टव्य यही 8,8,42–46 तथा 8,8, 16–18; 8,12,1–2;

8,12,12–13; 8,9,27

239. विष्णुधर्मोत्तर 85,60

240. भट्टाचार्य, पूर्व निर्दिष्ट फलक 8, चित्र 2

241. विष्णुधर्मोत्तर 78,1,5

242. अवस्थी, पूर्वनिर्दिष्ट पृष्ठ 59

243. विष्णुधर्मोत्तर 77,1,2–4

244. देवी भागवत

पृष्ठ 260

245. विष्णुधर्मोत्तर 80, 3–5

द्रष्टव्य यही 80,2–3; 73,42–43; 106,78–79

246. गोपीनाथ राव, पूर्व निर्दिष्ट पृष्ठ 261

247. अवस्थी, पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ठ 144

248. ऋग्वेद 1,164,46

249. महाभारत, आदिपर्व, 149,51

250. उपरोक्त 33,16

251. हाप्किन्स, एपिक माइथोलॉजी, 20,22

252. श्रीमद्भागवत 3,21,10–12

किरीटनं कुण्डलिनं शंखचक्रगदाधरम् ।

।व–तयत्पल ़ ़डन ़ ़ मनः स्पर्शस्मितेक्षणम् ॥

विन्यस्त चरणाम्भोज्मंसदेशे गरुत्मतः ।

दृष्ट्वा खेडवस्थितं वक्षः श्रियं कौस्तुभकन्धल् ॥

तुलनीय––उपरोक्त 8,10,54; 4,30, 5–7

253. विष्णुपुराण 5,32,21

254. अग्निपुराण 49,19–21

255. मानसार 61

256. विष्णुधर्मोत्तर 54, 1–5

257. (क) श्रीमद्भागवत उपरोक्त

(ख) अग्निपुराण, उपरोक्त

258. राव, पूर्व निर्दिष्ट, 287

मुखाकृति चन्द्रगुप्त द्वितीय की ताम्र मुद्राओं के अंकन अनुकूल ।

259. अवस्थी, पूर्व निर्दिष्ट, 146

260. बनर्जी, पूर्व निर्दिष्ट, 532

261. (क) गान्धार कलान्तर्गत ।

(ख) नालन्दा से उपलन्धर मुद्रओं पर –––राष्ट्रीय संग्रहालय कलकत्ता ।

(ग) गरूड़ को सर्पो का विनाशक माना गया है । देखिए, श्रीमद्भागवत 10,1,7

3,15,8

— पुराणों में संदर्भित पन्नगारि, पन्नयाशन स्वरूप ।

262.

263. वासुदेव शरण अग्रवाल, मथुरा कला, पृष्ठ 63–64

264. विष्णुधर्मोत्तर 104,46

265. विष्णुपुराण 5,22,6 ; श्रीमद्भागवत 11,30,32

तुलनीय----

खमुत्पपात राजेन्द्र साश्वध्वज उदीक्षतः ।

तमन्वगच्छन दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च ।

श्रीमद्भागवत 11,30, 44–45

266. विष्णुधर्मोत्तर 85,13–14

267. (1) अवस्थी, पूर्व विर्दिष्ट पृष्ठ 147–48

(2) द्रष्टव्य – खजुराहो संग्रहालय प्रतिमा संख्या 290

268.

269. ब्लाख, ऐनअल रिपोर्ट आफ दि आर्क्योलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया 1903, फलक 31

270. उपरोक्त, फलक 19

द्रष्टव्य, श्रीमद्भागवत (3,28,27)– जिसमें चक्र पुरुष को गाड़ी के पहिए के सदृश अलंकृत रूप में प्रदर्शित किए जाने की पुष्टि की गई है ।

271. बनर्जी ने चक्र पुरुष नहीं माना है किन्तु यह श्रद्धेय नही है ।

बनर्जी, पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ठ 539–40

272. विष्णुधर्मोत्तर, 104, 11–15

273. उपरोक्त 85–10

274. गोपीनाथ राव, पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ठ 105

275. ब्लाख, पूर्व निर्दिष्ट

276. अवस्थी, पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ठ 147

277. विष्णुधर्मोत्तर 104,46

तुलनीय उपरोक्त, 85, 11–12

........गदा देवी वनुमध्या सुलोचना......मुग्धा सर्वाभरण भूषिता.....।

278. कार्य तन्मूर्ध्निविन्यस्तं देवहस्तं तु दक्षिणम् ।
उपरोक्त 65,12

279. श्रीमद्भागवत 3,28,18

280. विष्णुधमोत्तर 104,46; 104,111–15

281. विष्णुधर्मोत्तर 47,3

282. विष्णु पुराण 5,8,36
तुलनीय (विष्णुधर्मोत्तर 85,9)
वनमाला च कर्तव्या देवजान्ववलम्बिनी ।
यज्ञोपवीतः कर्तव्यो नाभिदेशंमुपागतः ।।

283. ऋग्वेद 4,12,16; 9,13,3

284. उपरोक्त

285. बनर्जी, पूर्व निर्दिष्ट, 465

286. अपराजितपृच्छा 196, 61–62 ; 63–65

287. श्रीमद्भागवत 4,4,18–32

288. विष्णुधर्मोत्तर 74, 2–4
भोगोडस्य वृत्तः कर्तव्यो भागभष्टास्रमेव तु ।
चतुरस्रं तथा भागं कर्तव्य भूरिदक्षिणम् ।।
....
वृत्तं दृश्यन्तु कर्तव्य अष्टास्रं पिण्डिकागतभ् ।।
चतुरस्रं तु कर्तव्य ब्रह्मपीठगतं तथा ।
अधस्ताद् भद्रपीठस्य ब्रह्मीठं विदुर्बुधाः ।।

289. मयमतम् 33,21–27

290. अध्याय 44 महादेव, 48 उनके अभिज्ञानीय प्रतीक, 56 गौरीश्वर रुप, 59 भैरव रूप पर प्रकाश डालते हैं ।

292. श्रीमद्भागवत 8,7,30 में त्रिनेत्र को तीन गुणों ---सत्व, रज, तम; समीकृत किया गया है ।

292. विष्णुधर्मोत्तर 44, 14–15

293. विष्णुधर्मोत्तर 47,17

294. उपरोक्त 44, 15–16

295. गोपीनाथ राव, पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ठ 278

296. बनर्जी, पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ठ 295

297. विष्णुधर्मोत्तर 44, 20

वर्णास्तथा च कर्तव्यः चन्द्रांशुसदृशप्रभः ।

298. उपरोक्त 44, 17–19

299. राव, गोपीनाथ; पूर्व निर्दिष्ठ पृष्ठ 277

300. वासुदेव शरण अग्रवाल, इण्डियन आर्ट पृष्ठ 283

301. विष्णुधर्मोत्तर 105, 9–10

302. विष्णुधर्मोत्तर 105, 8–9

युग्मं स्त्रीपुरुषं कार्यमुमेशौ दिल्परूपिणों ।

अष्टवक्त्रं तु देवेशं जटाचन्द्र धर्मभूषितम् ।।

303. विष्णुधर्मोत्तर 105, 61

304. श्रीमद्भागवत 6,17,4

गिरिशं ददृशे गच्छन परीतं सिद्धचारणैः ।

आलिंगयांगकृतां देवी बाहुना मुनि संसदि ।।

305. रूपमण्डन 35, 16,20

306. खजुराहो, फलक 87

307. भट्टसाली, पूर्व निर्दिष्ट 129

308. वासुदेव शरण अग्रवाल, पूर्व निर्दिष्ट 258

309. श्रीमद्भागवत 4, 4,3

310. गौरीशर्ववर्णन, विष्णुधर्मोत्तर

प्रक्णाडत्नानो योऽर्धमदात्सतां प्रियः ।

311. अर्धनारीवपुः प्रचण्डोऽतिशरीरवान् ।

विष्णुधर्मोत्तर 1,7,13

312. वामार्धे पार्वती कार्या शिवः कार्यश्चतुर्भुजः ।

विष्णुधर्मोत्तर 55, 18–19

313. विष्णुधर्मोत्तर 55,8

314. विष्णुधर्मोत्तर, उपरोक्त अध्याय–2–3

315. उपरोक्त 55, 9–13

द्रष्टव्य मत्स्य पुराण 260, 8–17

316. खजुराहो, फलक 89

317. राव, पूर्व निर्दिष्ट, 278

318. गौरीशर्व रूप के अनुकूल

319. बनर्जी, पूर्व निर्दिष्ट 486–88

320. मत्तोऽविभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हसि शंकरः ।

योऽहं सतवं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ।।

मत्तो नान्यदशेष यन्तत्वं ज्ञातुनिहहिसि ।

द्रष्टव्य श्रीमद्भागवत 8,12,18–29

321. सुप्रभेदागम 34

322. विष्णुधर्मोत्तर 108,35

323. खजुराहो फलक 91

324. बनर्जी, पूर्व निर्दिष्ट, 467

325. श्रीमद्भागवत 4,6,33–38

ददृशुः शिवमासीनं.........तर्कमुद्रया ।

द्रष्टव्य ––(1) शिल्परत्न 49, 24–15

(2) उनाकामिकागम, अध्याय 30–

"दक्षिण पूर्व हस्तं तु ज्ञानमुद्रां तु धारयेत् ।"

326. विष्णुधर्मोत्तर 108, 15–17

327. राव, पूर्व निर्दिष्ट 255–56

328. लम्बोदरं तथा कुर्याद्वृत्तपिड़ललोचनाम् ।

दष्ट्राकरालवदनं फुल्लनासापुटम् तथा ।।

कपाल मालिनं रौद्र सर्वतः सर्पभूषणम् ।

329. व्यालेन त्रासयन्तं च देवी पर्वतनन्दिनीम् । सजला–

म्बुदसंकाशं ....भैरवस्य प्रकीर्तितम् ।।

विष्णुधर्मोत्तर 59,3–4

330. उपरोक्त 59,5–7

331. राव, पूर्व निर्दिष्ट, फलक 62

332. बनर्जी, पूर्व निर्दिष्ट, पृष्ट 482

333. विष्णुधर्मोत्तर पुराण 77,15–16

334. उपरोक्त 73,17

335. ऋग्वेद, दशम मंडल

336. "ब्रहमा देवानां प्रथमः विश्वास्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।" मूण्डकोपनिषद 3, 15

337. "सा इदं सर्वमाप्नोद् यदिदं किञ्च यदाप्नोत् तस्मादापः । शतपथ ब्राहमण 6,1,1,9

338. शतपथ ब्राह्मण 6,11,9

339. मारकण्डेय पुराण 46,17–19

ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् रूद्रत्वे संहरत्यपित ।

विष्णुत्वे चाप्युदान स्विस्रोडवस्थाः स्वयम्भुवः ।।

340. कुमारसम्भव 2,4–6

341. सृज्यते ब्रह्ममूर्तिस्तु रक्ष्यते पौरुषी तनुः ।

रौद्री भावेन शामयेत तिस्रोडवस्थाः प्रजापतेः ।।

महाभारत वनपर्व, 272, 47

342. श्रीमद्भागवत 10,12,24 ; 10.21,10

343. अग्निपुराण 149, 3–5

344 बृहत्संहिता (58.41) में ब्रह्मा की दो भुजाओं का ही उल्लेख है ।

345. श्रीमद्भागवत 3,8,15

346. विष्णुधर्मोत्तर 44,5–8

बद्धपद्मासनं ....ध्यानसंमीलितेक्षणम् ।

347. श्रीमद्भागवत 10,12,24 ; 10,21,10

तुलनीय (1) अग्निपुराण 149,3–5

चतुर्मुखश्चतुर्बाहुर्बृहज्जठरमण्डल ।

लम्बकूर्चो जटायुक्तो ....कुण्डिकाम् ।

(2) मत्स्य पुराण 249, 11–12

ब्रह्मा कमण्डलुधरः कर्तव्यः स चतुर्मुखः ।

हंसारुढः क्वचित् कार्यः क्वचिच्च कमलासनः ।।

348. विष्णुधर्मोत्तर 71,12

349. कर्निघम, पूर्व निर्दिष्ट, 93–94

350. राव, पूर्व निर्दिष्ट, 59

351. शिवमन्दिर (ऐहोले) से उपलब्ध और राव द्वारा उद्धत, पृष्ठ पूर्व निदिष्ट

352. वासुदवे शरण अग्रवाल, इण्डियन आर्ट, 254 तथा 333

द्रष्टव्य, वासुदेव शरण, हर्षचरित एक अध्ययन

353. बनर्जी, पूर्व निर्दिष्ट, 519

354. ऋग्वेद 1,115,1

355. उपरोक्त तथा 7,77,3; 6,51,1

356. सूर्यकान्त, वैदिक देवशास्त्र, 103

357. ऋग्वेद 7,63,2

358. महाभारत आदिपर्व 306, 7–9

359. विष्णु पुराण 3,2,9

360. उपरोक्त 76,11

361. उपरोक्त 67, 2–3

362. बृहत्संहिता 57,46

363. विष्णुधर्मोत्तर 66, 16

364. उपरोक्त 67, 15

365. उपरोक्त 67, 12–15

366. विष्णुपुराण 2,11, 16–17

367. बनर्जी, पूर्व निर्दिष्ट, 435

368. उपरोक्त, 436

369. भहसाली, पूर्वनिर्दिष्ट, फलक 53–3ए

370. रामकुमार दीक्षित, चन्हेलाज़ ऑफ जेजाक मुक्ति
ऐण्ड देअर टाइम्स, पृष्ठ–439

371. अपां.......चन्द्रहस्तयोः विष्णुधर्मोतर 68, 13–14

372. विष्णुपुराण (2,12,1) में रथ को तीन पहिए वाला बताया गया है ।

373. "दशाश्वे व रथः कार्यो द्विचक्रोम्बरसारभिः"
विष्णुधर्मोत्तर 68,4
तुलनीय– मत्स्य पुराण (125,8) यहाँ एक अन्तर यह है कि चन्द्रमा को चतुर्भुजी बताया गया है ।

374. अट्ठाईस नक्षत्रों का प्रतीक ।
विष्णुधर्मोत्तर 68,6

375. विष्णुधर्मोत्तर 96,2

376. उपरोक्त

"भौमोग्निनतुल्यः कर्न्तव्यश्चाष्टाश्र्वे काञ्चने रथे ।"

377. महाभारत, भीष्मपर्व 3,14

378. मत्स्य पुराण 125,8

379. विष्णुधर्मोत्तर 69, 3–4

शिल्परत्न, मत्स्यपुराण, विष्णुपुराण आदि बृहस्पति का स्वरूप कुछेक अन्तर के साथ संदर्भित करते हैं।

380. विष्णुधर्मोत्तर 69, 5–6

381. उपरोक्त 69, 7–8

382. उपरोक्त 6, 8

रौप्ये रथे..................विचक्षणैः ।

383. उपरोक्त 69, 8–9

"केवलं मस्तकं ....दक्षिणम् ।"

384. उपरोक्त 69, 10–11

385. उपरोक्त 69, 10

386. राव, पूर्वनिर्दिष्ट पृष्ठ–317 पर संदर्भित और जूनागढ़ संग्राहालय में संरक्षित ।

387. विष्णुधर्मोत्तर 50,3

महाकाव्यों मे संदर्भित "सहास्रदृक" तथा "सहस्रन्यन" विशेषणों के प्रतीक स्वरूप ललाट पर तीसरे नेत्र को दर्शाया गया होगा ।

388. विष्णुधर्मोत्तर 50, 4–5

तुलनीय– 1. बृहत्संहिता 58, 42

2. अपराजित पृच्छा 213, 9

3. रूपमण्डन 2, 31

4. मत्स्य पुराण 260, 67–70

389. विष्णुधर्मोत्तर 50, 6

390. रामाश्रय अवस्थी पूर्वनिर्दिष्ट, 206–8

391. विष्णुपुराण 5,2,18

392. विष्णुधर्मोत्तर 52, 2–3

पद्मपाशौ................शंखं च रत्नपात्रं........... ।

393. विष्णुधर्मोत्तर 52, 1

394. उपरोक्त 52, 3

395. उपरोक्त 52, 3–4

396. उपरोक्त 52,6

397. उपरोक्त 52, 7

398. रामाश्रय अवस्थी पूर्वनिर्दिष्ट 225–27

399. विष्णुधर्मोत्तर 53, 3–6

400. विष्णुधर्मोत्तर 51, 1

तुलनीय 1. पृत्संहिता 58, 9, 57

2. अग्निपुराण 56, 20

401. विष्णुधर्मोत्तर 51, 4–5 ; बृहत्सहिता 58,9,57

अग्निपुराण 169–28

402. विष्णुधर्मोत्तर 51, 5–6

403. विष्णुधर्मोत्तर 56, 1–4

404. अग्निपुराण

405. विष्णुधर्मोत्तर 56, 3

406. उपरोक्त 56, 2

407. शिल्परत्न 13, 9–10

408. अपराजितपृच्छा 213,1011

410. हेमाद्रि को भी यही मान्य है।

411. विष्णुधर्मोत्तर 57, 1–5

412 बनर्जी, पूर्वनिदिष्ट, पृष्ठ 526

413. अवस्थी, पूर्वनिर्दिष्ट पृष्ठ– 220–22

राव, पूर्वनिर्दिष्ट पृष्ठ–532

414. इसी पुस्तक में शिव रूप से सम्बद्ध विवेचन द्रष्टव्य।

415. विष्णुधर्मोत्तर 55. 2–4

416. उपरोक्त

417. उपरोक्त 55, 6

418. विष्णुधर्मोत्तर 82,3

419. उपरोक्त 82, 3–14

420. उपरोक्त 85–47

421. उपरोक्त 64, 1–3

422. उपरोक्त 106, 120; 106, 124–25

423. उपरोक्त 121–123

424. विष्णुपुराण

425. श्वेता रक्ता तथा पिता वर्ण क्रमान्विता।

426. विष्णुधर्मोत्तर 93, 34–40

427. उपरोक्त 46

428. उपरोक्त 94, 1–4

429. उपरोक्त 27–28

430. उपरोक्त 32

431. उपरोक्त 38–43

432. विष्णुधर्मोत्तर 86, 128

433. उपरोक्ता 15–17

434. विष्णुधर्मोत्तर 35, 5 (आयामोच्छ्रोयनान नामक अध्याय)

435. उपरोक्त 2, 2–4

436. उपरोक्त 41, 2

437. उपरोक्त

438. उपरोक्त 40, 1–2

439. उपरोक्त 40, 11–12

440. उपरोक्त 27, 8

441. उपरोक्त 40, 16

442. डी0एन0शुक्ल, भारतीय स्थापत्य 554

443. उपरोक्त 560–61

तथा प्रिय गलाशाह, विष्णुधर्मोत्तर पुराण भाग–2 126–27

444. विष्णुधर्मोत्तर 41, 9

तथा 43,19

445. विष्णुधर्मोत्तर (41,15)

446. उपरोक्त 43, 28

447. उपरोक्त 42, 48

448. विष्णु धर्मोत्तर पुराण खण्ड –3, अध्याय 42, 4–5

449. वही, – 3

450. वही, –2–5

पंचम अध्याय

आर्थिक जीवन

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में कृषि, पशु पालन, उद्योग, व्यापार एवं अन्य आर्थिक गतिविधियाँ

वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक भारत का ग्रामीण अर्थव्यवस्था से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और सभी समयों में अर्थव्यवस्था से संबद्ध चार बातों को बहुत महत्व दिया गया है – कृषि, पशुपालन, व्यापार एवं उद्योग । प्रस्थानत्रयी (गीता, उपनिषद् एवं ब्रह्मसूत्र) में गीता को सर्वप्रथम स्थान मिला है, क्योंकि गीता स्वयं भगवान के श्रीमुख से निकली है । उस गीता में भी कहा गया है – 'कृषि गोरक्ष्यवाणिज्यम्' (गीता 18/44) अर्थात् खेती, पशुपालन और वाणिज्य । वाणिज्य के अन्तर्गत व्यापार और उद्योग दोनों आते हैं । विष्णु धर्मोत्तर पुराण भी आर्थिक जीवन के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण सूचनायें देता है :

कृषि :–

'दारिद्रयं कृषिभिर्जितम् –– दरिद्रता को खेती से जीते' । संस्कृत में जैसे यह सूक्ति है वैसे हिन्दी में भी एक लोकोक्ति गूंज रही है –– "उत्तम खेती मध्यम बान, नीच चाकरी भीख निदान" । इससे कृषि का महत्व स्वयं सिद्ध है । इस कृषि का विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वर्णन तो नहीं मिलता है कि किस प्रकार खेती की जाय, उसके क्या साधन हों इत्यादि, किन्तु कई अध्यायों में आदर के साथ कृषि की चर्चा एवं प्रशंशा की गई है यथा – अध्याय 336 में फसल की हानि करने पर दण्ड का विधानपूर्ण रूप से वर्णित है । वह वर्णन भी हंस रूप में अवतीर्ण हंस भगवान के मुख से कराया गया है । हंस कहते हैं कृषि योग्य भूमि में खेत की सीमा में विवाद उपस्थित होने पर वृद्धसामन्तगण एवं गोपवृन्द जो कहें वह मान्य होना चाहिये । सभी निर्णायक लोग लाल फूलों की माला एवं रक्त वस्त्र पहनकर मष्तक पर पृथ्वी के रूप में मिट्टी धारण कर सीमा पर जायें । वहाँ सीमा निश्चित करके सीमा पर वृक्ष गाड़ दें । वृक्षों में सेमल, पीपल तथा पलाश होना चाहिये । भूसी का अंगार, कपाल, अस्थि, कंकड़ भी गाड़ दें । सीमा के मध्य जो वृक्ष रोपे जायें उनके फल आदि का उपयोग दोनों ओर के खेत वाले करें इसका भी निर्देश कर दें । उन वृक्षों की शाखायें जिस–जिस खेत के ऊपर जायें उन शाखाओं पर अधिकार उसी खेत के स्वामी का होगा ।

यदि कभी नदी के पेटे में पड़कर सीमा के चिन्ह बिगड़ जायें तो कालान्तर में नदी के हट जाने पर पुनः सीमांकन करें ।यदि कोई कृषक किसी का खेत अधिया बटाई पर लेकर समय पर बोआई न करें, खेत परती रह जाय तो उस कृषक को दंड में एक भैंस देनी चाहिये । आधे दंड मे एक बकरी और भेंड़ देनी चाहिये । भैंस के बराबर दंड में एक गधा और ऊँट दिया जा सकता है । फसल का नाश करने पर एक घोड़ा दंड देना चाहिये । यदि कोई कृषक अपने पशुओं से किसी के खेत की फसल चराकर बैठ जाय तो उसे दूना दंड देना चाहिये । पशुओं के चरवाहे से दंड दिलाना चाहिये । यदि चरवाहा न हो तो पशुओं का स्वामी दंड का भागी होगा । प्रसूतिका स्त्री के द्वारा छोड़े गये पशुओं से क्षति होने पर प्रसूतिका को दंड न दें । गर्भिणी स्त्री दण्ड के अयोग्य है । बटोही तथा गाँव के विनीत व्यक्ति से यदि भूलवश थोड़ा अपराध हो जाय तो उसे क्षमा कर देना चाहिये, किन्तु जानबूझ कर स्वेच्छाचारिता से कोई अपराध करे तो उसे निर्वासित कर देना चाहिये ।

उक्त अध्याय की पुष्टि का (समष्टि सूचक वाक्य) इस प्रकार पठित है --

इति श्री विष्णु धर्मोत्तरे तृतीय खण्डे
मार्कण्डेय वज्र संवा दे मुनीन्प्रति हंस गीतासु
सस्य हानि दण्डवर्णनो नाम सपृत्रिंशदधिक त्रिशततमोऽध्यायः ।।337।।

पुनः अध्याय 314 और 315 में कृषि के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले धान्य (फसल) एवं अन्न के दान की महती प्रशंसा हंस ने की है --

हंस बोले – धान्यों का दान करना उत्तम है । किन्तु धान्यों में रक्तशालि (लाल चावल, दाऊद स्वामी) धान्य परम श्रेष्ठ है । जो मनुष्य रक्तशालि धान्य का दान करता है वह सूर्यलोक में पूजित होता है । काष्ठशालि धान्य दान करने वाला व्यक्ति अलकापुरी (कुबेर की राजधानी) में आनन्द करता है । व्रीहि (रबी फसल) दान करने वाला नर स्वर्ग में जाता है । सुगन्धित धान्यों के दान से मनुष्य गन्धर्वों के साथ आनन्द मनाता है । कलमी धान्य (साठी चावल) दान करने से इन्द्रलोक की प्राप्ति होती है । महाशालि (लंबा खुशबूदार चावल) के दान से इन्द्रलोक की प्राप्ति

होती है। गोधूम धान्य (गेहूँ) दान करने से मनुष्य वसुओं के लोक मे जाता है। प्रियंगु (कंगनी नाम का अन्न) धान्य दान करने से मनुष्य लोकप्रिय होता है। जो श्यामाक धान्य (साँवा चावल) दान करता है उस पर देवगण प्रसन्न होते हैं। यव धान्य (जवा) दान करने से मनुष्य इन्द्रलोक मे पूजित होता है। अन्य शूक धान्य (टूँड़ वाले अनाज) दान करने में निरत रहने वाला मानव स्वर्गलोक में जाता है, इसमें सन्देह नहीं। मूंग धान्य दान करने वाला इन्द्रलोक और माष (उड़द) दान करने वाला यमलोक में पहुँचता है। तिल धान्य दान करने वाला नर यथेच्छ लोक में जाता है। चणक धान्य (चना) दान करने से बरुण लोक की प्राप्ति होती है। मसूर धान्य दान करने वाला वायुलोक और राजभाष धान्य दान करने वाला कुबोर लोक को प्राप्त करता है। अन्य शिंविधान्य (छीमी) दान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। गन्ना दान करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है। गुड़ दान करने से आरोग्य लाभ तथा चीनी दान करने से अभीष्ट सिद्धि होती है। खाँड़ देने वाला सौभाग्य एवं मधु देने वाला समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है। घी देने वाला दीर्घायु और तेल देने वाला आरोग्य लाभ करता है। सत्तू दान करने से तृप्ति मिलती है। इस अध्याय की पुस्तिका है --

इति श्री विष्णु धर्मोत्तरे तृतीय खण्डे मार्कण्डेय
वज्रसंवादे मुनीन्प्रति धान्यदान प्रशंसा नाम
चतुदशाधिक त्रिशततमोऽध्यायः ।।314।।[2]

अब 315वें अध्याय में अन्न दान की प्रशंसा द्रष्टव्य है –

हंस ने कहा – अन्न दान से बढ़कर श्रेष्ठदान न हुआ है और न होगा। इस दान में देश, काल, पात्र की परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। सदैव अन्नदान करना चाहिये। कुत्ता, भंगी, पतित, कृमि, कीट, पतंग सबको अन्न देना चाहिये। संसार में अन्न ही जीवन है, क्योकि प्राण अन्न पर आश्रित है। अतएव अन्नदाता प्राणदाता है और अन्नदाता सर्वदाता है। जिसका अन्न खाकर कोई सनतान उत्पन्न करता है, वह सन्तान उसी की समझनी चाहिये। सभी वर्णों को दान देना चाहिये। पेट में जिसका अन्न रहते ब्राह्मण मर जाता है, उसी की जाति में ब्राह्मण को जन्म लेना पड़ता है भक्ष्य देने वाला स्वर्ग प्राप्त करता है और भोज्य देने वाला इन्द्रलोक में जाता है।

जो लेघृ (चाटने योग्य) भोजन दान करता है वह अप्सराओं के लोक में पहुँचता है और चोष्टा (चूसने योग्य) भोजन देने वाला वसुओं के लोक में जाता है। पेय पदार्थ देने वाला मनुष्य वरूण लोक मे जाता है। खीर प्रदान करने वाले को शाश्वत तृप्ति प्राप्त होती है। जो मार्ग मे पूर्व मे अदृष्ट एवं श्रान्त व्यक्ति को बिना क्लेश के अन्न देता है उसे महान पुण्य फल मिलता है। जो एक भी भूख से पीड़ित व्यक्ति की क्षुधा मिटा देता हे, उसे मरणोपरान्त महान फल मिलता है।

इस अध्याय की पुस्तिका है --

इति श्री ....अन्नदान प्रशंसा नाम

पञ्चदशाधिकत्रिश ततमोऽध्यायः ।।315।।[2]

इसके आगे के अध्याय में भी हंस ने कहा है - 'विद्याध्ययन करने में आसक्त छात्रों को जो अन्नदान करता है, उसके पुण्य का अन्त नहीं है '।

खेती को नुकसान पहुँचाने वाले दुह उपद्रव ईति कहलाते हैं। वे ये हैं -- अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहों, टिड्डियों और पक्षियों का फसल खा जाना तथा दूसरे राजा की चढ़ाई। इन छहों उपद्रवों में पहला और दूसरा अतिवृष्टि और अनावृष्टि बहुधा संभव रहते हैं, जबकि अन्य उपद्रव कदाचित्क हैं। अतएव यदि कृषकों को फसल बोने से पहले संभाव्य अतिवृष्टि-अनावृष्टि का ज्ञान हो जाय तो वे सावधान हो जायेंगे और फसल की पूर्वसुरक्षा व्यवस्था कर लेंगे। इस संबन्ध में विष्णु धर्मोत्तर महापुराणकार ने कुछ लक्षण बताये हैं, जिनके द्वारा अतिवृष्टि-अनावृष्टि का पूर्व ज्ञान किया जा सकता है। यथा --

प्रस्तुत पुराण के अध्याय 85 में भगवान वेद व्यास ने लिखा है कि "यदि कृतिका नक्षत्र पर शनैश्चर और विशाखा पर वृहस्पति स्थित हों तो अतिवृष्टि से प्रजाओं को पीड़ा होती है। यदि एक या दो ग्रहों के साथ वृहस्पति या श्नैश्चर दिखाई पड़े तो दस वर्ष दुभिक्ष (अकाल) पड़ेगा। जब शुक्र और वृहस्पति सातवें नक्षत्र पर स्थित होकर पूर्व और पश्चिम दिशा में पहुँच जायें तो मेघ नहीं बरसता है (अनावृष्टि होती है)। जहाँ उदय और अस्तमय चन्द्रमा और सूर्य लाल परिवेष

(घेरा) वाले दिखाई दें वहाँ बादल नहीं दीखते, यह महाभय का लक्षण है। राहु के बिल्कुल नहीं दिखाई देने पर या बहुत दिखाई देने पर प्रजायें व्याधि, दुर्भिक्ष तथा चोरी से पीड़ित होंगी, ऐसा बताना चाहिये। जब परिवेष मे चन्द्रमा और सूर्य राहु से ग्रस्त होते हैं तब राहु को बादल ढक देते हैं और अतिवृष्टि होती है तथा देश पर संकट आता है, विनाशकारी युद्ध उपस्थित होता है। मघा नक्षत्र के मध्य में जब लाल रंग का बादल आवागमन करता है तब अनावृष्टि होती है। जब मंगत उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, श्रवण, ज्येष्ठा, मूल, कृत्तिका और मघा नक्षत्रों मे विचरण करता है तब घोर अनावृष्टि होती है। जब कार्तिक मास में चन्द्रमा और सूर्य उदय और अस्तमय हों तब नब्बे दिन पृथ्वी पर वर्षा नहीं होती है।[3]

पौराणिक काल में कृषि को बड़ा महत्व प्राप्त था। जो व्यक्ति खेती नहीं करता था, वह भूमिपति होना स्वीकार नही करता था। ऐसे ही एक राजा का उदाहरण प्रस्तुत पुराण में मिलता है। उसने कहा – 'हम खेती नहीं करते हैं, अन्तः हमारे लिये भूमि निष्प्रयोजन है – कृषिर्नास्ति यतोऽस्मांक ततो भूर्निरूप्रयोजना।[4] दूसरा उदाहरण एक शूद्र जातीय पुरुष का है। वह व्यापार करना छोड़कर खेती करने लगा –– 'तस्मिन् विपन्ने स कृषिं चकार नृपसत्तम।[5]

मनुष्य की प्राणरक्षा तथा यज्ञ–याजन आदि कर्मों के लिये भी कृषिकार्य की महती आवश्यकता है।[6] कलावन्नगतप्राणाः' 'कलियुग में अन्न में ही प्राण बसे हैं '। इस तथ्य के अनुसार यदि खेती के द्वारा अन्नोत्पादन न किया जाय तो अन्न गत प्राणों की रक्षा कैसे की जायेगी? दूसरी बात यह है कि इस पुराण में तथा अन्य पुराणों में भी उल्लिखित अश्वमेघ आदि यज्ञों एवं मनुष्यों के अन्नप्राशन संस्कार से लेकर अन्त्येष्टि क्रिया तक के सभी संस्कार लुप्त हो जायेंगे; क्योकि इन सबमें प्रचुर मात्रा में विविध प्रकार के अन्नों का उयोग किया जाता है या यों कहिये कि तिल, यव, अक्षत के बिना देव–पूजन एवं पितृ पूजन भी नहीं हो सकता। इस प्रकार अन्न की आवश्यकता जानकर ही छान्दोग्योपनिषद् ने कहा है – 'तस्मादन्नं ब्रह्म – अन्न ही ब्रह्म है।'

और भी, विष्णु धर्मोत्तर के तृतीय खण्ड के अध्याय 158 से 164 तक कई उपयोगी व्रत बताये गये हैं, जिनमें कई प्रकार के अन्नों की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है, यथा –

"एक वार्षिक सप्तमूर्तिव्रत होता है । उसमें चैत्रप्रतिपदा से आरंभ करके एक वर्ष तक प्रतिदिन अग्निस्पात आदि देवताओं का पूजन किया जाता है । उनको खिचड़ी का नैवेद्य देकर तिल से अग्नि मे हवन करना पड़ता है और स्वयं एक बार खीर भोजन करके रहना पड़ता है । इस व्रत के अनुष्ठान से सूर्यलोक की प्राप्ति होती है ।[6]

फिर एक दूसरा भी वार्षिक समुद्रव्रत है । इसमें भी एक बार हविष्य भोजन करके रहना पड़ता है और प्रतिदिन घी से होम करके सात प्रकार के अन्न का दान करना पड़ता है । यह परम विचित्र व्रत मंगलदायक एवं श्रीवर्धक है । इसके करने से आरोग्य, धर्म, यश तथा लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।[7]

फिर एक दिन सप्तक व्रत करने का अनुष्ठान वर्णित है । यह व्रत भी चैत्रशुक्ल से आरम्भ किया जाता है और एक वर्ष तक चलता है । इसमें ह्रादिनी आदि देवताओं के पूजन के उपरान्त जल में खीर की आहुति दी जाती है और दूध तथा जल में उत्पन्न होने वाला धान्य दान किया जाता है । इसका भी महान फल बताया गया है ।[7अ]

उक्त प्रकार के अनेक व्रत अनेक अध्यायों में यहाँ बताये गये हैं । इनका अनुष्ठान बिना अन्न के सम्भव नहीं है । अन्तोत्पादन कृषि पर अवलंबित है । अतः यह पुराण कृषि का भरपूर समर्थन करता है ।

पशु पालन :-

कृषि की तरह पशुपालन भी युग युगान्तर से चलता आ रहा है । पशुओं में गाय भैंस, बकरी, भेंड, हाथी-घोड़े, ऊँट आदि का पालन प्रसिद्ध है । इन पशुओं में भी गौ का पालन आर्य सभ्यता का प्रतीक है । गंगा-गीता-गायत्री और गौ ये चार भारतीय संस्कृति के मुख्य केन्द्र हैं, जिनमें गाय का सर्वाधिक महत्व इसलिये है कि इसके द्वारा संसार का प्रत्यक्ष हित होता है । साथ ही यह एक ऐसा पवित्र प्राणी है जिसमें धर्म की दृष्टि से अपने शास्त्रों के अनुसार तैंतीस करोड़

देवताओं का निवास है । इसीलिये ऋषि–महार्षियों ने अपनी सर्वोपरि श्रद्धा का केन्द्र मातृरूप में गाय को माना है । 'गौ माता' यह सम्बोधन या अभिधान प्रदान किया गया – 'गावो विश्वस्य माताः ।[8]

त्रेतायुग में भगवान श्री राम के पूर्वज राजा दिलीप ने गो–सेवा करके रघुवंश के प्रवर्तक राजा रघु के पुत्र रूप में उत्पन्न किया । द्वापर युग में भगवान् श्री कृष्ण ने गो पालन नहीं गोचारण भी किया । उनकी भावना थी – गौएँ मेरे अग्रभाग में रहें, गौएं मेरे पृष्ठभाग में रहें, गौएँ नित्य मेरे चारो ओर विद्यमान रहें और मैं गौओं के मध्य में निवास करूँ ––

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
गावो में सर्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाभ्यध्म् ।।[9]

प्रस्तुत विष्णु धर्मोत्तर पुराण में भी द्वितीय खण्ड के अध्याय 42 से 44 तक तक गौओं के पालन–चिकित्सा आदि का बड़ी अपूर्वता से वर्णन या निर्देश किया गया है यथा ––

"पुष्कर ने कहा – हे भृगुनन्दन ! गौओं का पालन अवश्य करना चाहिये । गायें पवित्र हैं, उनमें सभी लोक प्रतिष्ठित हैं । गायें यज्ञ का विस्तार करती हैं (क्योंकि उन्ही के दूध–घी से यज्ञ किया जाता है) । गायें विश्व की मातायें हैं । उनका मूत्र और गोसर अलक्ष्मी (दरिद्रता) का नाशक है । मूत्र–गोबर का प्रयत्त्न पूर्वक सेवन करना चाहिये । उनमें लक्ष्मी प्रतिष्ठित हैं । मूत्र–गोबर जानकर उद्धिग्न नहीं होना चाहिये । गौओं के मूत्र और गोबर पर थूकना आदि नहीं करना चाहिये । गाय की धूल परम पुण्यदायक तथा दारिद्रय एवं विघ्नों की नाशक हैं । गायों को खुजलाना समस्त पापों का विनाशक है । उनके सींगों से सम्पृक्त जल गंगाजल के समान है । गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी तथा गोरोचना – ये छहों चीजें मंगलकारक एवं पृथक–पृथक पवित्र हैं । गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुश सम्पृक्त जल स्नान–पान करने में परम पवित्र समझना चाहिये । यह राक्षसों का विनाशक, मंगल कारक एवं कलिदुःख विनाशक है । जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर अपना मुख गोघृत में देखता है उसकी दरिद्रता नष्ट हो जाती है और पाप नहीं बढ़ता है । गौओं को ग्रास देने से महान् पुण्य होता है । जितनी गौओं को सुखपूर्वक घर में रख

सकता है उतनी ही गौएँ रखे । गौओं को भूखी न रखे । जिसके घरमें गौएँ भूखी, दुःखी रहती हैं वह नरक में जाता है, इसमें संदेह नहीं । दूसरे की गौओं को ग्रास देने से महान् पुण्य मिलता है । जाड़े भर दूसरे की गौओं को ग्रास देने से महान् पुण्य मिलता है । जाड़े भर दूसरे की गौ को ग्रास देकर मनुष्य छः सौ वर्ष तक स्वर्ग में निवास करता है । दिन और रात्रि में मनुष्य को जो भोजन मिलता है उसमेंसे नित्य निरालस्य होकर एक वर्ष तक भोजन गौओं को दे दे और दूसरा भोजन स्वयं ग्रहण करे तो वह एक मन्वन्तर एक गोलोक में निवास करता है । जो गौओं के चारागाह में प्याऊ (पौसला) बना देता है वह दस हजार वर्षों तक वरुणलोक में क्रीड़ा करता है और जहाँ-जहाँ जाता है वहीं उसे परम् तृप्ति मिलती है । गौओं के चरने की भूमि को जो हल आदि से जोतना देता है, वह चौदह इन्द्रों के समय तक नरक में रहता है । गौओं के जल पीने में जो विघ्न डालता है, उसे भयंकर ब्रह्म हत्या का पाप लगता है । सिंह, व्याघ्र आदि के भय से त्रस्तों या कीचड़ में फंसी हुई गौओं का जो उद्धार करता है वह एक कल्प तक स्वर्गभाग करता है । गौओं को घास दानकरने वाला व्यक्ति रूपवान और भाग्यशाली होता है । जो अस्वस्थ गौओं को औषधि देता हे, वह स्वयं निरोग होता है । गौओं को औषध, नमक, जल तथा आहार देने वाला व्यक्ति विपत्ति में नहीं पड़ता, उसे पाप नहीं लगता और फांसी आदि की सजा नहीं मिलती ।

यदि वन में अपने झुंड में गाय चर रही हैं और अकस्मात् भेड़िया उसपर आक्रमण करके मार देता है तो उसके पालक को दोष नहीं लगता है । किन्तु बंधी हुई गायों में से जिस पर आक्रमण करके भेड़िया मार देता है, उसके पालक को दोष लगता है । गोवध के पाप से मनुष्य इक्कीस नरकों में जाता है । इसलिये सब प्रकार के प्रयत्नों से गौओं का पालन करना चाहिये । हे राम ! गौओं के बेचने से कल्याण नहीं होता है । गौओं का कीर्तन करने से मनुष्य पाप रहित हो जाता है । उनका स्पर्श करना धन्य है, सभी पापों का नाशक है । उनका दान करने से कुलों का उद्धार हो जाता है । जिस घर में एक भी गाय निवास करती है, वहाँ रजस्वला स्त्री का सूतिका दोष, भूमिदोष और अन्य दोष नहीं होते । गौओं के निःश्वास वायु से घर में बड़ी शान्ति रहती है । सभी स्थानों में गौओं की आरती उतारनी चाहिये । गोमूत्र, गोबर, दूध दही, घी, कुशसम्पृक्त जल और एक रात्रि का उपवास – ये चांडाल को भी शुद्ध कर देते हैं । सकल अशुभों का नाश

करने के लिये पूर्वकाल में ईश्वर ने ऐसा किया था (अर्थात गोमूत्र आदि का उपयोग किया था) । इनमें से प्रत्येक का तीन–तीन दिन अभ्यास करने से अतिसान्तपनव्रत होता है । हे राम ! इक्कीस दिन केवल दूध पर बिता देना कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत है । यह समस्त अशुभो का विनाशक है । तीन दिन उष्ण गोमूत्र पिये, तीन दिन उष्ण गोघृत पिये, तीन दिन उष्ण दूध पिये और तीन दिन वायु पीकर रहे । यह सकल–अशुभ–विनाशक तप्तकृच्छ्र नामक व्रत है । गोमूत्र से स्नान करे और गोरस (दूध–घी) पीकर जीवन निर्वाह करे । गाय की सेवा इस प्रकार करे कि जब गाय उठकर खड़ी हो जाय तो व्रती भी खड़ा हो जाय और जब वह बैठ जाय तो व्रती भी बैठ जाय । यदि गाय न खाय तब तक स्वयं भी न खाय और जब तक वह न जल पी ले तब तक स्वयं भी जल न पीये । गाय के संकटग्रस्त होने पर जब तक इसका उद्धार न कर ले तब तक अपनी भी रक्षा न करे, अर्थात् गाय की रक्षा में अपना प्राण भी छोड़ना पड़े तो छोड़ दे । इसको कहते हैं गोव्रत । एक मास तक ऐसा करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है और वह मनुष्य गोलोक में तब तक वास करता है, जब तक चौदह इन्द्रों का समय बीतता है । एक मास तक गाय के खाये हुये यवों का भोजन करने वाला व्यक्ति जो चाहता है वही उसको मिलता है ।

जो मनुष्य सायं प्रातः गोमती विद्या का जप करता है वह गोलोक प्राप्त करता है । गौओं का लोक बहुत ऊपर है, जहाँ आकाशगामिनी गौएँ सदा ऐसे विचित्र विमानों में निवास करती हैं, जिनमें अप्सरायें रहती हैं, किंकिणियों का जाल बिछा रहता है और वीणा, मुरज आदि बजते रहते हैं । वहाँ नदियाँ स्वेच्छानुसार जल, दूध और खीर बहाती हैं । जल शीतल एवं निर्मल होता है । बालु का – कण सोने के हैं । तालाब पवित्र और वैदूर्यमणियों एवं कमलों से शोभित है । उस लोक में मानसी सिद्धि होती है । गौओं की भक्ति से मनुष्य उस लोक में जाते हैं इसमें संदेह नहीं ।

सकलपापनाशिनी गोमती [10] विद्या के बारे में सुनिये । गौएँ नित्य सुरभि (सुगंधित) हैं । गायें गुग्गुल धूप की तरह सुगंध बिखेरती हैं । गौयें प्राणियों की प्रतिष्ठा हैं । गौयें परम् मंगल रूपा हैं । गौयें परम् अन्न हैं और देवताओं की उत्तम छवि हैं । ये सभी प्राणियों को पवित्र करती हैं । गोयें स्वर्ग की सीढ़ियाँ हैं । गौयें सनातन हैं, धन्य हैं । श्रीमती गौओं को नमस्कार है । सौरभेयी को नमस्कार है । ब्रह्मपुत्री को नमस्कार है । पवित्र को नमस्कार है । ब्राह्मण और गौयें एक ही

कुल के दो रूपों में स्थित हैं। एक (रूप) में मन्त्र रहते हैं और दुसरे (रूप) में छवि (घृत) रहती है। देवता, ब्राह्मण, गौ, साधु और पतिव्रता स्त्री सदा पूज्य है। जिस तीर्थ में सदा प्यासी गाये जल पीती हैं और जिस मार्ग से उतरती हैं वहाँ सरस्वती नदी की स्थिति समझनी चाहिये।[11] इसके बाद अध्याय 43 में गो-चिकित्सा का वर्णन किया गया है। यथा --

पुष्कर ने कहा- हे राम ! संक्षेप मे गायों की चिकित्सा का सारभूत वर्णन सुनो। धेनुओं की सींग की जड़ में नमक और तेल डालना चाहिये। श्रृंगी (काकड़ासिंघी), वीर (बाराही कंद), बला (बरियारा), मांसी (जटामांसी), कल्क (खलर) इनके काढ़े में सिद्ध किया हुआ मासिक (सोनामक्खी), सिमिचूर्ण तथा घी सबको मिलाकर तैयार किया हुआ लेप लगाने से श्रृंगमूल का रोग दूर हो जाता है। गौओं के कर्णमूल में रोग होने पर माञ्जिष्ठा (मजीठ), हींग तथा नमक को तेल में अथवा दूध में पकाकर लगाये। सोनामक्खी, नमक, शंखपुष्पी, तगर का फल, पिरामूल और कंटकारी को बकरी के दूध के साथ पीसकर वैद्य गोली बनाये। उसको घी तथा सोनामक्खी के साथ संयुक्त कर दें तो वह आँख का उत्तम अंजन बन जाता है। बेल की जड़, अपामार्ग (चिचड़ा) घातकी (धप का फूल), पाटला (पाढर) और कुटज (एक पहाड़ी वृाक्ष) की छाल को पीसकर दाँत की जड़ में लगाने से दन्तशूल रोग का नाश होता है। हे राम ! दन्तशूलनाशक द्रव्यों को घी में पकाकर बनायी गयी औषधि से समस्त मुख रोग का नाश समझना चाहिये। जिह्वा के रोग में नमक का प्रयोग करना चाहिये। अदरक, दो हल्दी और त्रिफला का प्रयोग गलग्रह (गले के रोग) में करना चाहिये। अदरक, दो हल्दी, कुटज की छाल, अपामार्ग और लवण मिश्रित बायाबिंडग का चूर्ण समस्त मुख रोग का नाशक तथा ज्वर दाह का विनाशक है। गौओं के हृदयशूल, बस्ति (पेडू) भूल, बात रोग तथा घाव मे त्रिफला मिश्रित घी पिलाना प्रशस्त है। सौंफ, पका हुआ तेल, कुटज और चित्रक (चीता नामक औषधि) से बना औषधि गौओं के हृदय रोग का नाशक है। अतिसार रोग में दो हल्दी और सोनापान खिलाना चाहिये। मलावरोध में घृतसंयुक्त पद्वाचारिणी लता देनी चाहिये। सभी कुष्ठ रोगों तथा शाखा रोगों में भी घृत युक्त पद्वाचारिणी लता खिलानी चाहिये। अदरक तथा दारू हल्दी कास रोग (खाँसी) मे देनी चाहिये। टूटे हुये को जोड़ने में नमक के साथ प्रियंगु लता देनी चाहिये। सभी वातरोगों में सौंफ के साथ पकाया हुआ तेल गौओं को देना चाहिये।

यह समस्त वातरोगों का नाशक है। कफ रोगों में मिश्रित जूस देना चाहिये। समस्त पित्त रोगों में मधुयष्टि (जेठीमधु) के साथ पकाया गया गाय का घी देना चाहिये, जो सकल पित्त रोगों का नाशक है। रक्तपित्त रोग मे शाखोटक (सिहोर का पेड़) का रस पिलाने से शमन हो जाता है। गायों के कष्टदायक रक्तस्रावों में गेहूँ का चूर्ण, उड़द, सरसों और गुड़ को दूध में फेंटकर खिलाना उत्तम माना गया है। गौओं के पैर के अस्थिभंग तथा घाव पर तिल, कमल, हरिताल तथा घी का लेप श्रेष्ठ माना गया है। बछड़ों के रुग्ण होने पर पाढ़ा (पाठा नामक लता) को पीसकर पिलाना चाहिये अथवा रोग शान्ति के लिये दूध में हल्दी मिलाकर पिलाये, अथवा उड़द, तिल, गेहूँ, पशु का दूध तथा घृत – इन सबके पिण्ड बनाकर नमक के साथ खिलायें। यह औषधि बछड़ों के लिये पुष्टिकारक और बैलों के लिये बलप्रद है। देवदारू, बच, जटामाँसी, गुग्गुल, हींग और सरसों इनमें चिञ्चित घी लगाकर धूप बनाये। उसे गुग्गुल से युक्त कर देने पर वह सभी ग्रहों का विनाश कर देता है। इस धूप से धूपित घण्टा गौओं के गले में बाँधने से भी शान्ति होती है। अश्वगंधा (असगंध), तिल चुक्र (चूका साग) गायों के वस्ति (पिचकारी) क्रिया में प्रशस्त माने गये हैं। अश्वगंधा युक्त तक्र तथा तिल भी प्रशस्त है। इससे गाय दुग्धवती होती है। हे भृगुनन्दन राम! गौओं के लिये खली ही रसायन है। गौओं के शीतल जल तथा गीली घास नहीं देनी चाहिये। गौओं के घर मे रात्रि में दीप जलाना चाहिये। गौओं के रोग के शान्ति के लिये सदैव आधे मास पर नमक खिलाना चाहिये। बकरी और भेड़ी को भी उक्त प्रकार से नमक खिलाने पर पेट फूलने के शूल रोग से उत्पन्न अरुचि का नाश होता है।[12]

उपर्युक्त गो शुश्रूजा तथा गो चिकित्सा आदि का वर्णन प्रस्तुत पुराण के द्वितीय खण्ड में पुष्कर मुनि ने परशुराम जी से किया है। अब इस पुराण के तृतीय खण्ड में भगवान हंस ने जो गो सेवा का उपदेश देते हुये गाय के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बातें बतायी हैं, वह परमोपादेय है। कहते हैं कि बिना ज्ञान के श्रद्धा नहीं होती बिना श्रद्धा के कार्य मे सम्यक् प्रवृत्ति नहीं होती, अतः पशुपालन के अंगभूत गोपालन कार्य में सम्यक प्रवृत्ति के निमित्त उसके महत्व का ज्ञान होना आवश्यक है। इस दृष्टि से भगवान हंस का उपदेश अवलोकनीय है --

हंस बोले – गौयें पवित्र एवं मंगलमयी हैं। उनमे सभी लोक प्रतिष्ठित हैं। गौ के मूत्र, गोबर, दूध, दही और पंचम घी पवित्र वस्तु है, ये मनुष्यों को शुद्ध करने में परम श्रेष्ठ बताये गये हैं। गायें मंगलकारिणी, पवित्र, राक्षसहन्ती तथा सुन्दर पालनीय पशु हैं। उनके सींग का जल गंगा जल के समान होता है। चाण्डाल के हाथ से गाय को खरीद कर गोयज्ञ का फल प्राप्त करता है।

गोमूत्र से स्नान करें, गोबर की खाद से उपजाये गये यव से अथवा गोरस से शरीर यात्रा (निर्वाह) करें तो यह गोव्रत है। एक मास तक ऐसा करने से पापों का नाश हो जाता है। गौओं के खुरों से उठी हुई धूल समस्त पाप नाशक है। वह मंगलकारक, पवित्र तथा दरिद्र निवारक है। गौओं के वास करने से भूमि शुद्ध हो जाती है। वह घर शुद्ध है जहाँ गाँयें रहती हैं। उनके निःश्वास वायु से परम शुद्धि होती है। उनका संस्पर्श पुण्यदायक एवं दुःस्वप्न और पाप का विनाशक है। उनकी ग्रीवा और मष्तक में गंगा प्रतिष्ठित हैं। गौएँ सर्वदेवमय एवं सर्वतीर्थमय हैं। उनके लोभ पुण्य स्वरूप एवं पवित्र हैं। गोबर से लीपी हुई भूमि शुद्ध बतायी गयी है। यज्ञशाला एवं देवालय को गोबर से लीपना चाहिये। गोबर में लक्ष्मी सदा स्वयं ही व्यवस्थित रहती हैं। गौ के मूत्र में गंगा, दही, दूध और घी में चन्द्रमा और रोचना (गोरोयन) में सरस्वती निवास करती हैं। विष्णु को यज्ञ रूप माना गया है और वह यज्ञ गौओं में प्रतिष्ठित हैं। इसलिये प्राचीन आचार्यों ने गौओं को विष्णु ही कहा है। अतः गौओं का पूजन, नमस्कार तथा कीर्तन करना चाहिये। उनको आहार देना चाहिये और सेवा करनी चाहिये। गौओं की सेवा से मनुष्य शोक रहित विमल लोकों को प्राप्त करता है। इसलिये धर्मपरायण मनुष्य प्रलत्नपूर्वक गौओं की सेवा करें।[13]

प्रस्तुत पुराण में पशुपालन के अंगभूत गोपालन, वृषपालन, अश्वपालन, गजपालन आदि के बारे में कहीं संक्षेप और कहीं विस्तार से वर्णन तो किया ही गया है, किन्तु गोपालन पर विशेष जोर दिया है। अतएव गो–सेवा, गोचिकित्सा आदि के साथ गोशान्तिकर्म भी यहाँ वर्णित हैं। यथा –

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में पुष्कर के द्वारा गायों के शान्तिकर्म का उल्लेख किया गया है।

पंचमी तिथि में धूप, दीप एवं भोजन सम्पदा से गोबर में लक्ष्मी की पूजा करने का विधान है। वन्य पुष्पों से भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। उसी दिन वासुदेव श्रीकृष्ण की भी पूजा करें। वासुदेव भगवान सर्वव्यापी हैं। क्षीर सागर में उनका निवास है। वे तीनों लोक के आधार हैं, विशेष रूप से गौओं के। आश्विन–शुक्ल–पंचदशी को गौओं वाला व्यक्ति इन्द्रयाग करे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेध अपर्न करके नमस्कार करें। धृत से ध्वन करने के बाद 'अस्भस्थ' इत्यादि मंत्र से नमक को अभिमंजित करने के उपरान्त 'दधिक्राष्णा' इस मंत्र से दही से संप्राशन करे। अनन्तर सौ धेनु वाला यजमान एक गाय दानकर दे। यदि उतनी सम्पदा न हो तो होता को यथाशक्ति केवल दक्षिणा ही दे। फिर गंध, माला आदि से गौओं को अलंकृत करके खूब खिलाकर बछड़ों को खोलकर अग्नि की प्रदक्षिणा करे। तदन्तर सिंहवाद, किलकारी, शंख वादन आदि के द्वारा गोपालों की कुश्ती तथा बैलों (साड़ों) की लड़ाई का आयोजन करे। दूसरे दिन गौओं, बैलों तथा बछड़ों को पूर्वोक्त अभिमंत्रित नमक खिलायें। ब्राह्मणों को गोरस बहुल भोजन कराये। स्वस्ति–वाचन के पश्चात् विसर्जन करें। यह गौओं का शान्तिकर्म नित्य है।

नैमित्तिक शान्तिकर्म का विवरण अग्रलिखित प्रकार से किया गया है – गौओं को महामारी हो जाय या रोग आदि का उपद्रव हो या दूध का क्षय हो जाय या अन्य कोई प्राकृतिक विपयर्य हो तो बुद्धिमान व्यक्ति तीन रात या एक रात उपवास करे। गौओं के बीच पवित्र स्थान में यज्ञीय भूमि की रचना करें। वहाँ कर्णिका (कमल का छत्ता) और केसर से युक्त अष्टपत्र कमल खिले। कर्णिका के मध्य में लक्ष्मी सहित वासुदेव की खिचड़ी से पूजन करें। क्रमशः अन्य देवताओं का भी पूजन करें। यथा–पूर्वभाग में सुभद्रा नामक दिग्धेनु का अचर्न करें। तदन्तर ब्राह्मण सुरभि, सूर्य बहुरूपा धेनू, पृथ्वी देवी, अनन्त, विश्वस्पाक्ष, दिग्धेनु, सिद्धि, ऋद्धि, शान्ति, रोहिणी नामक दिग्धेनु, चन्द्रमा, नन्दी और महादेव की अचर्ना करें। इन सोलह देवताओं को भी खिचड़ी चढ़ायें तत्पश्चात् कमल पत्रों पर दिक्पालों की पूजा करे हे राम। प्रत्येक देवता को गंध, माला, धूप, दीप, भोजन समर्पित करके नमस्कार करें। पश्चात् प्रत्येक को चावलों से भरा हुआ एक–एक घड़ा यथाशक्ति सुवर्ण के साथ समर्पित करके हवन करें। शास्त्रानुसार वेदि बनाकर अग्नि प्रज्वलित करके प्रत्येक देवता के नाम को चतुर्थ्यन्त पद बनाकर आदि में ओं तथा अन्त में 'नमः' पद

जोड़कर "ओं सुभद्रायै नमः" 'ओं ब्रह्मणे नमः' इस प्रकार उच्चारण करके हवन करे । हवन की समिधा दूध वाले वृक्ष की लकड़ी हो । अक्षत, तिल, सरसों और घी से भी प्रत्येक को आहुति दे । तदनन्तर 'रक्षोहणै.' यह मंत्र पढ़कर पीली सरसों की आहुति देकर अग्निकर्म विधिपूर्वक समाप्त करे । पुरोहित को सुवर्ण, कांसे की गाय और एक जोड़ा वस्त्र दे । ब्राह्मणों को गोरसबहुल भोजन कराये । पश्चात् स्वस्तिवाचन करके ब्राह्मणवृन्द 'रक्षोहण' मंत्र से गौओं पर जल छिड़के । तब यजमान गंध, माला, चन्दन आदि से गौओं का पूजन करके बछड़ो को खोल दे । सभी प्रकार के उपद्रवों की शान्ति के लिए गौओं का यह शन्तिकर्म करना चाहिये ।

भागर्व ! अब काम्य शान्तिकर्म सुनो । इसका कर्ता एक दिन उपवास करे । दूसरे दिन पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र का योग न हो, केवल उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में चन्द्रमा के रहते स्नान करके कर्ता गूलर के पत्ते, पञ्चगव्य (गोमूत्र, गोबर, दही, दूध, घी, कुश समपृक्त जल, गोरोचन तथा मजीठ दो घटों में डाले । उन घटों को गंध और माला से उज्जवल करें । पुनः स्नान करके गोपाल के वस्त्र पहनकर समाहित चित से शंकर, सूर्य तथा चन्द्रमा का गंध, माला, भोजन–सम्पदा, धूप, दीप, नैवेध तथा नमस्कार के द्वारा पूजन करें । तदनन्तर चौदह चावल एवं फलों से भरे पात्र अहिर्बुध्न्य रूद्र को समर्पित करें । खट्वांग [14] अस्त्र के द्वारा शिव को धूप दे । तदुपरान्त देवाधिपति चक्रधारी वासुदेव की पूजा करें । पश्चात् (काम्यकर्मोक्त) सभी देवताओं को घी से ओंकार पूर्वक सौ सौ आहुतियाँ दे और एक मणि को गाय के बाल, खुर तथा सींग से त्रिवृत करके कंठ, मस्तक अथवा भुजा में धारण करें । यथाशक्ति पुरोहित को दक्षिणा दें । फिर उत्तराभाद्रपद के रहे ही स्नान करले । जो ऐसा करता है वह शतायु होता है और उसके गौओं तथा धन की परम् वृद्धि होती है।[15]

वृषभ (बैल) पालन :–

पशुपालन नांगभूत "गोपालन" शब्द में "गवां पालनम् गोपालनम्" इस व्युत्पत्ति के अनुसार षष्ठी तत्पुरुष समास है । अर्थ होता है– गौओं का पालन तथा बैलों का पालन । कारण संस्कृत में "गौ" शब्द पुलिंग और स्त्रीलिंग दोनों है । दोनों लिंगों में इस शब्द के एक जैसे रूप चलते

हैं--गौः गावौ गावः इति प्रथभा, गाम्, गावौ गाः इति द्वितीय इत्यादि । किन्तु स्त्रीलिंग में गौः" का अर्थ है "गाय" और पुलिंग में इसका अर्थ होता है "बैल" सॉंड़" ।

प्रकृत में 'गोपालन' शब्द से गाय और बैल दोनों का पालन करना आवश्यक है । दोनों में अविनाभाव संबंध है । न तो बिना गाय के बैल – सॉंड़ हो सकता और न बिना बैल सॉंड़ के गाय हो सकती है । कृषि में भी दोनों की अपर्युपरि आवश्यकता है । जहाँ शरीर यात्रा के लिये गाय से गोरस, खाद के रूप में गोबर आदि मिलते हैं वहीं खेत जोतने के लिये, सवारी के लिये तथा गोबर आदि के लिये बैल की महती आवश्यकता है । अतएव वेदादि शास्त्र–पुराणों में वृषभ (बैल) का बड़ा महत्व वर्णित है ।

महाभारत में युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा-- जनार्दन ! तीनों लोक मे यह प्रसिद्ध है कि गौओं का स्वामी गोपति (वृषभ) गोविन्द स्वरूप है, अतः प्रभो ! ऐसे महनीय वृषभ–दान का फल बताने की कृपा करें ।

श्रीकृष्ण बोले-- राजन ! सुनिये । एक स्वस्थ, हृस्ट–पुष्ट वृषभ को दान का फल दान धेनुओं के दान से अधिक है । हृष्ट–पुष्ट, युवा, सन्दर, सुशील, रूपवान और ककुदमान् (डल्ले वाले) एक ही शुभलक्षण सम्पन्न वृष के दान से उस दान करने वाले व्यक्ति के सभी कुलों का उद्धार हो जाता है । पुण्य पर्व के दिन वृषभ की पूँछ में चॉंदी लगाकर तथा भलीभॉंति उसे अलंकृत कर दें । तदन्तर दक्षिणा के साथ उसः वृष का दान देकर इस प्रकार प्रार्थना करें --

> धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्द कारकः ।
> अस्तभूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन ।।[16]

इस विधि से वृषभ–दान करने वाले व्यक्ति के सात जन्म पहले के किये गये समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और अन्त में वह व्यक्ति वृषभयुक्त कामचारी दिव्य विमान में बैठकर स्वर्गलोक में जाता है । महीपते ! उस वृष के शरीर में जितने रोम हैं, उतने हजार वर्ष तक वह गोलोक में पूजित होता है ।

वृषभ के सम्बन्ध में इसी प्रकार की महत्वपूर्ण बातें विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी प्रतिपादित हैं। यहाँ भी युधिष्ठिर के ही प्रश्न करने पर भगवान मधुसूदन ने उनसे कहा राजन् ! सुनिये, मैं वृषभ का लक्षण बता रहा हूँ। समुद्र नामक वृषभ सतत वंशवर्धक होता हैं। मल्लिकापुस्व के समान चितकबरा बैल धन्य (प्रशस्ति) होता है। अतसी (आलसी) पुण्य के समान वर्ण वाला बैल धन्यतर (अतिशय प्रशस्त) होता है। यह तो तो धन्य वृषभों को बताया। अब अधन्य वृषभों को बता रहा हूँ। जिन बैलों के तालु, ओष्ठ और दाँत काले हो, जिनके सींग और खुर रूखे हों, जिनका वर्ण स्पष्ट न हो, जो छोटे हो, जो बाघ और राख के समान वर्ण वाले हों, जो कौए और गीध के समान वर्ण वाले हों, जो चूहे के समान वर्ण वाले हों, जो कुबड़े, काने, लंगड़े तथा ऐंची आँख वाले हों, जो विषम तथा उलजे पैर वाले हो, जिनकी आँखें घूमती हों, ऐस बैलों का प्रयोग नहीं करना चाहिये तथा बैलों को घर में नहीं रखना चाहिये।

अब किन बैलों को घर में रखना चाहिये तथा किन बैलों का वृषोत्सर्ग श्राद्ध में उपयोग करना चाहिये उनका लक्षण बता रहा हूँ। जिन बैलों के सींग स्वास्तिकाकार हों, जिनका शब्द मेघ समूह की ध्वनि के समान हो, जो विशाल हों, जो मतवाले हाथी के समान चलते हों, जिनका वृक्षः स्थल विशाल हों, जो गहरी साँस छोड़ते हों, जो महान बलशाली एवं पराक्रमी हों जिनके सिर, कान, ललाट, पूँछ, पैर तथा नेत्र प्रान्त भाग काले हों और जिनकी कान्ति चन्द्रमा की सी हों, वे बैल प्रशस्त माने गये हैं। यह चिन्ह प्रशस्त हैं। कृष्ण वृषभ के ये विशेष रूप से प्रशस्त है। जिनकी कतार शक्ति ध्वज और पताका के समान शोभित होती हों, वे बैल ऋद्धि, सिद्धि तथा जय देने वाले होते हैं। उन्नत सिर और ग्रीवा बाले बैल धन्य एवं खजाने को बढ़ाने वाले, जिनके सींग के अग्रभाग तथा नेत्र लाल हों, वर्ण श्वेत हों और खुर मूंगे के सदृश हों, वे प्रशस्ततर (अप्यन्त धन्य) वृषभ होते हैं। धन्य बैलों को घर में रखने से या उत्सर्ग करने से धन–धान्य की वृद्धि होती है। जिस वृषभ के चरण, मुख और पुच्छ श्वेत हों और उसका वर्ण लाक्षारस के समान हो, उसको नील वृक्ष कहते हैं। नील वृष वृषोत्सर्ग श्राद्ध के लिये बहुत ही उपयोगी हैं। इस संबन्ध में अधिकतर पुराणों में प्राप्य यह श्लोक नितान्त सुप्रसिद्ध है––

एस्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोडपिमयां व्रजेत् ।

अर्थात् किसी व्यक्ति के मोक्ष के लिये गयाश्राद्ध या अश्वमेघ यज्ञ या नीलवृष का उत्सर्ग करना चाहिये । अतः बहुत पुत्रों की प्राप्ति की कामना करें यदि कोई पुत्र गया श्राद्ध कर देगा तो मोक्ष अवश्य मिलेगा । उसी तरह अश्वमेघ यज्ञ वा नील वृष के दान से भी मोक्ष मिलता है, यह उपर्युक्त श्लोक का स्वारस्य है ।

नीलवृष चाहे अपनी गौ से उत्पन्न हुआ हो या खरीदना पड़े किसी भी प्रकार से श्राद्ध में उसका उत्सर्ग किया जाय तो उसके मोक्ष का विधान मैं (मधुसूदन) करता हूँ ।[17]

प्रस्तुत पुराण में वर्णित गाय–बैल पालने की आवश्यकता या महत्व बताने के उपरान्त अब हम एतत्पुरानवर्णित अश्व–गज आदि के पालन पर प्रकाश डालेगें ।

गोबर–गोमूत्र में अर्थ और ऊर्जा का प्रचण्ड स्रोत्र :–

भारतीय संस्कृति और अर्थव्यवस्था हजारों वर्षों से कृषि–गोपालन से जुड़ी हुई है । वृहद् उद्योगों की स्थापना एवं व्यापार की बढ़ोत्तरी के बावजूद भारत में आज भी 73 प्रतिशत जनता कृषि –गोपालन पर आश्रित है ।

भारत में इस समय लगभग 17/2 करोड़ गोवंश और 5/2 भैंस वंश बताये जाते हैं, जब कि देश की पूरी आवश्यकता के अनुसार 40 करोड़ होने चाहिये । एक प्राणी से नित्य प्रति 12 किलो (औसत) गोवर–गोमूत्र मिलता है । आज तो आधागोबर गोमूत्र का भी सही उपयोग नही हो पा रहा है । आधे गोबर के उपले (कंडा) निर्मित होकर जलावन में प्रयोग किये जाते हैं । 'सैंद्रिय' खाद एवं गोबर गैस संयन्त्र में बहुत कम गोबर का उपयोग हो पाता है । उपलों (कंडों) द्वारा देश को सिर्फ 11 प्रतिशत गरमी का लाभ मिल पाता है, बाकी नष्ट हो जाती हैं । यदि इस गोबर का 'सैद्रिय' कम्पोस्ट खाद और गोबर गैस–संयन्त्र द्वारा उपयोग हो तो उसका गरीब देशवासियों को 60 प्रतिशत लाभ मिलने लगेगा । पूरे गोबर–गोमूत्र का सही वैज्ञानिक ढंग से उपयोग हो तो कई अरब रूपयों का देश को फायदा होगा ।

1 किलो गोबर से 40 किलो उत्तम खाद :–

दिनांक 14 जुलाई 1983 को नयी दिल्ली से प्रकाशित 'टाइम्स आफ इंडिया' दैनिक समाचार पत्र में डा0 कुमारप्पा गोबरधन केन्द्र' पुसद (महाराष्ट्र) के गोबर पर सतत 16 वर्षों से शोध करने वाले महात्मा गाँधी के शिष्य कृषक वैज्ञानिक श्री पांढरी पाण्डे ने सिर्फ 1 किलो गोबर घोल (नामक) शुद्ध मिट्टी, वृक्षों की सूखी पत्तियाँ, भूमि पर बिखरी तमाम कचरा (वेस्टेज) आदि के सम्मिश्रण से 40 किलो उत्तम अन्नपूर्ण सौन्द्रिय खाद बनाने में सफलता प्राप्त कर ली है। अगरबती, धूप, कपड़ा धोने का चूर्ण आदि गोबर से सफलतापूर्वक निर्माण हो रहे हैं। ये वस्तुओं घरों की शोभा बढ़ा रही है।

मूल वैज्ञानिक श्री पांढरी पाण्डे गोबर से एक रंग बनाने में जुटे हैं। यह ऋतुराज रंग कम कीमत में लाखों घरों को सुखद सही तापमान देने में सक्षम होगा। उक्त रंग सिमेंट क्रॉक्रीट के बने मकानों को भी गरमी में ठंडा और जाड़े में गरम रख सकेगा।

कई असाध्य रोगों का पर गोबर का प्रयोग आयुर्वेद जगत ने माना है। क्या अब भी हम भारतवासी वरदान सिद्ध गोबर की अवहेलना करते रहेंगे ?

स्वास्थ्य और अर्थपुञ्ज गोमूत्र :–

अब तक गोमूत्र का पञ्चगव्य और ओषधियों में ही अधिकतर प्रयोग होता रहा है। लेकिन इधर के नवीन शोधकर्ताओं ने गोमूत्र को आर्थिक पहलू से जोड़ दिया है। गोमूत्र का बड़ा उपयोग कम्पोस्ट खाद बनाने में होगा। यह खाद टिकाऊ के साथ कीटाणुरहित होगी। गोमूत्र मिश्रित खाद जमीन की उर्वराशक्ति के बढ़ाने में उत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुई है। आयुर्वेद–जगत् में गोमूत्र को बहुत महत्व दिया है। कई असाध्य रोगों पर, विशेषतः विकृत रोग टी0वी0 रोग, कैन्सर रोग, कुष्ठरोग आदि में बड़ा लाभप्रद सिद्ध माना गया है। हैदराबाद के एक वैद्यराज गोमूत्र में वनोसधि मिश्रण करके टैबलेट और इन्जेकशन बनाने में सफलता की ओर बढ़ रहे हैं। उनकी मान्यता है कि कई असाध्य रोगों पर इससे फायदा होगा। लिखने का एकमात्र तात्पर्य यह है कि गोवंश के गोमूत्र का

सहीं ढंग से उपयोग किया जाय तो राष्ट्र के स्वास्थ्य के साथ इससे हर वर्ष करोड़ों रूपयों का लाभ प्राप्त हो सकता है ।

पुराणों मे ऐसी कथा आती है कि सभी देवताओं ने वृहस्पति से प्रार्थना की कि आप कोई ऐसा दिव्य प्राणी निर्माण कीजिये, जिसमें हम सब देवता वास कर सके । ब्रह्मा जी ने कहा–कल ब्राह्मा मुहूर्त में आप लोग पधारिये । दूसरे दिन ब्रह्मा जी ने एक–एक देवता को अंग–प्रत्यंग में बैठाकर जिस अलौकिक दिव्य प्राणी का निर्माण किया, वही विश्वधात्री हमारी कलयाणी गौ है । संयोग वंश देवता धनधिप कुबेर और स्वास्थ्य के देवता ओषधि प्रवर्तक धन्वन्तरि कुछ विलम्ब से पहुँचे । ब्रह्मा जी ने कहा-- आप दोनों देर करके आये ; अखिल ब्रह्माण्ड की अनूठी गौ की प्राण प्रतिष्ठा होकर उसमें अन्य सब देवताओं ने स्थान ग्रहण कर लिया है । दोनों देवता के गिड़गिडाने पर ब्रह्मस जी ने दया करके कुबेर को गौ के गोमय–गोबर में धन्वन्तरि को गौ के गौमूत्र में स्थान दिया ।[18]

वेद पुराण को न मानने वाले लोग भले ही उक्त कथा पर विश्वास न रके, किन्तु इस वैज्ञानिक युग में गोभय–गोमूत्र का अनोखा चमतकार आज वरदान स्वरूप प्रत्यक्ष सिद्ध हो रहा है । नैराबी ऊर्जा सम्मेलन में हमारे देश की स्वर्गीय प्रधानमंत्री इन्दिरा जी ने सगर्व बताया था कि भारत में बैल शाक्ति द्वारा 30 हजार मेगावाट बिजली के समकक्ष ऊर्जा प्राप्त होती है ।

अश्व पालन :–

यद्यपि इस यान्त्रिक युग में अश्व पालन की आवश्यकता धीरे–धीरे कम होती जा रही है ; क्योंकि विज्ञान के प्रभाव से अश्व की अपेक्षा तेज चलने वाली सवारियॉं–हवाई जहाज रेलगाड़ी, मोटर कार, स्कूटर आदि उपलब्ध हैं । फिर भी मेले–ठेले, भीड़–भाड़ आदि कई स्थानों में जहॉं यान्त्रिक सवारियॉं नहीं चल सकती, वहॉं घोड़े की सवारी से ही काम लिया जाता है । एक्के, टांगे आदि आज भी चल रहे हैं, जिनमें घोड़े ही जुतते हैं । इस प्रकार घोड़े की आवश्यकता आज भी है और

रहेगी। जब यान्त्रिक सवारियों के खतरे से लोग ऊब जायेंगे तब पुनः प्राचीन घोड़े आदि सवारियों को अपनायेंगें।

प्राचीनकाल में युद्ध भी मुख्यतः घोड़े पर चढ़कर ही किया जाता था। इसलिये किसी भी राजा की विजय प्रधानतया अश्वसेना पर निर्भर करती थी। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में अश्व की प्रशंसा और उपादेयता आदि पर कई अध्याय लिखे गये हैं। द्वितीय खण्ड के अध्याय 45 में इस प्रकार वर्णन किया गया है -- पुष्कर बोले-- हे भार्गव। राजाओं की विजय अश्वों के अधीन है। इसलिये सब प्रकार से अश्वों का अर्जन करना चाहिये। राजा को यत्नपूर्वक विशेषरूप से घोड़े का पालन करना चाहिये। उतने ही घोड़े रखने चाहिये जितने का पोषण सुखपुर्वक किया जा सके। घोड़े को दुःखी भूखा नहीं रखना चाहिये। दुखी घोड़े लोक मे श्री एवं विजय का नाश करते हैं। विधिपूर्वक घास खिलाकर शास्त्र सम्भत घोड़े घर में रखने चाहिये। ऐसे रक्षित घोड़े दोनों लोकों में जय दिलाते हैं। ऐसे घोड़े मंगलकारी तथा पवित्र होते हैं। उनकी धूल भी पवित्र होती है। वे ब्रह्मदेव के भक्त होते हैं। इसलिये अश्वमेध यज्ञ का अश्व एक ब्रह्म को ही समर्पित किया जाता है अमृत-मन्थन से उत्पन्न रत्नों में सर्वश्रेष्ठ रत्न तुरग ही हुआ था। इसलिये उच्चैः श्रवा अश्व सब रत्नों में श्रेष्ठ माना गया है। देवताओं के वाहन अश्वों के पक्ष (पंख) होते हैं और मनुष्यों के अश्व पक्षविहीन होते हैं। पहले शालिहोत्र ने वाहन के लिये अश्वों का उपयोग किया। बलशाली अश्व अपनी हिनहिनाहट से देशों की आरती करते हैं। श्रमजयी अश्वलक्ष्मी के पुत्र गन्धर्व बताये गये है। श्रेष्ठ अश्व सेना के प्रधान अंग तथा सुषमा होते हैं। युद्ध में दूर तक जाने में घोड़े उत्तम वाहन माने जाते हैं। जोर से हिनहिनाते हुये चामर और आभूषणधारी तुरंग पर चढ़कर पुरुष को जो तुष्टि मिलती है वह स्वर्ग मे भी नहीं मिलती। अत्यन्त तैयार अश्वों को देखते ही शत्रुसेना के हृदय दहल जाते हैं। घोड़ों के खुरों से उखड़ी हुई धूलि-राशि से निर्मित दण्ड जिसके छत्र का अनुकरण करता है उसके वंश में समग्र पृथ्वी हो जाती है।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में अश्वों की चिकित्सा के सम्बन्ध में इस प्रकार वर्णन मिलता है-- पुस्कर ने कहा-- अब मैं अश्वों की चिकित्सा के संबंध में कहूँगा। वृष नामक ओषधि, निम्ब पत्र, कन्टकारी, गुडू.च, जटामांसी ये ओषधियाँ घोड़े का नासिकामल तथा बलगम और सिर का पसीना दूर

करती हैं । सरसों, निर्गुण्डी, तुलसी, बच और निम्बपत्र को पीसकर उसकी वत्ती गुदामार्ग पर लगाने से शूल रोग का नाश होता है । हींग, पुस्कर मल (कमल की जड़) नागरमोथा, अमलतास, पिप्ली, नमक गरम जल के साथ दने से भी शूल का नाश होता है । नागरमोथा, अनिविषा (अनीस) मोथा, अनन्ता (अनंतमूल) तथा बिल्वमालका का काढ़ा एक मास तक पिलाने से घोड़े का अतीसार रोग नष्ट हो जाता है । प्रियंगुलता तथा शारिबा नामक ओषधि को बकरी के दूध में पकाकर पर्याप्त शक्कर के साथ पिलाने से अश्व का श्रम मिट जाता है । अनार, त्रिफला, त्रिकतु (सोंठ, पीपल और मिर्च) गुड़ –इन ओषधियों का पिण्ड बनाकर (अश्वों को देने से कास (खासी) रोग का नाश होता है । प्रियगु और लाध्र को मधु के साथ पीसकर दूध और बथुये के रस में मिलाकर पिलाने से घोड़े की सुस्ती (उत्साहहीनता) दूर हो जाती है । प्रसकन्न (घोड़े का एक प्रसिद्ध रोग) होने पर पहले सुखाने का उपचार करना चाहिए । पश्चात मालिश, उपटन, नस्य (सुंधनी) और वर्ति (बती), क्रमशः देने से प्रस्कन्न रोग का शमन होता है । यदि इससे शान्ति न हो तो छाती और बलगम की शिराओं को ढीली करे । ताप से पीड़ित अश्वों का भी यही उपचार करे, केवल नस्य न दे । लोध्र और करञ्ज (एक झाड़ क्रंजा) की जड़, मातुलुंग (चकोतरा नीबू) अग्नि (भिलावा) नागर (नागर मोथा), कुस्ठ (कुट), हींग बच, रास्ना (एक ओषधि, एलापर्नी, इन सबाक पीस कर लेप करने से घोड़े की सूजन कम होती है । शिरा को किञ्चित बेध दे अथवा जोंक लगादे और तीन–तीन दिन पर नस्य कर्म (सूंधनी की क्रिया) करे । मजीठ, मछुआ, दाख, कण्टकारी रक्त, चन्दन, त्रपुसी (खीरे) का बीज और मूल, श्रृंगारक (सिंघाड़ा), कशेरूक (केसौर, एक प्रकार के मोथे की जड़) इन सबको बकरी के दूध में पकाये बहुत शीतल करे, चीनी डालकर भूखे रहे घोड़े को पिलाये तो उसका रक्तमेह रोग दर हो जाता है । निशा (दारूहल्दी), ज्योतिष्मती (मालकंगनी) पाठा (पाठ नाम की लता), कृष्णा (काली दाख), कुष्ठा (कुट), बच, मधु, गुड़, इन सबको चूर्ण कर मूत्र में भिगोकर लेप लगाने से जिह्वारोग दूर हो जाता है । पीपल, गूलर, पाकर, महुआ, वट और कलक (खली) इन सबका अधिक जल में काढ़ा बनाकर मन्द गर्म हो जाने पर धोने से घोड़े का व्रण ठीक हो जाता है । गोबर, सर्जिका (सज्जीखार), कुष्ठ (कुट), दारू हल्दी, तिल, सरसों––इन सबको गोमूत्र में पीसकर मर्दन (मालिश) करने से घोड़े का कण्डु (खुजली) रोग नष्ट होता है । चीनी, मधु और वाशिका (अडूसा) का काढ़ा पिलाने से घोड़े का रक्तपित्त रोग दूर हो जाता है ।

बायबिंडग, पीपल, धनिया, लोध, सेंधा नमक – इन सबको पीसकर जाड़े में घोड़े को पिलाना चाहिये (इससे उसका स्वास्थ्य ठीक रहता है)। लोध, प्रियंगु, रास्ना, पिप्पली (पीपल) सोंठ और मधु – इन सबको पीसकर वसन्त ऋतु में पान कराने से कफ नष्ट होता है। गर्मी ऋतु में प्रियंगु, पिप्पली, रौद्रयष्टि नामक औषधि, गुड़ और मदिरा देनी चाहिये। वर्षा ऋतु में भद्रकाष्ठा (देवदारू), नमक, पीपल, विश्वभेषज (सोंठ) को पीसकर तेल में घोलकर पिलाना चाहिये। ग्रीष्म–ऋतु में पित्त के बढ़ जाने पर, वर्षा ऋतु में अधिक टट्टी करने पर घोड़े को घी पिलाना चाहिये। कफ और वायु अधिक हो जाने पर घोड़े को तेल पिलायें। चिकनाहट अधिक हो जाने पर अश्व को रूखा करना चाहिये। इसका उपाय यह है कि उसे तीन दिन जपसी नमक डालकर और मठ्ठा सहित भोजन दें, यही रूखा करने की विधि है। जो घोड़े तेल पीते हैं, उन्हें वस्ति न दिलायें। शरद और ग्रीष्म ऋतुओं में घी और शीत तथा वसन्त ऋतु में तेल देना चाहिये। वर्षा और शिशिर ऋतुओं में वस्ति दें। बहुत गला हुआ भात, व्यायाम, स्नान धूप, गुर्दा मार्ग में वस्ति क्रिया – यह सब घोड़े के लिये करें किन्तु चिकनाई से पीड़ित घोड़े के लिये न करें। वर्षा ऋतु में घोड़े को एक ही बार स्नान और पान (जल पिलाना) करायें। अत्यंत दुर्दिन (वर्षाक्रान्त समय) में एक ही बार का स्नान प्रशस्त है। शीत और धूप वाले समय में दो बार जल पिलाना तथा एक बार नमक खिलाना चाहिये। ग्रीष्म ऋतु में ती बार स्नान–पान कराना चाहिये। उसे देर तक नहलायें। यवों की भूसी चार अढ़ैये के परिमाण में खिलानी चाहिये। चन्द्रमास के एक दिन और एक रात में दस तुला (लगभग 5 सेर का एक परिमाण) घास–भूसा खिलाना चाहिये अथवा आठ तुला सूखी भूसी और चार तुला गीली भूसी देनी चाहिये। दूब पित्त को नष्ट करती है। भूसी कृशता और कफ–राशि को कष्ट करती है। अर्जुन वृक्ष के फल–पत्ते कास रोग का तथा उरद बल का नाश करते हैं। वात, पित्त तथा कफ से उत्पन्न होने वाले रोग दूब खाने–वाले घोड़े को पीड़ित नहीं करते हैं। दुष्ट घोड़ों को दोनों बगल से दो रस्सी बाँधनी चाहिये। पीछे से भी कील में लगाकर एक रस्सी बाँधनी चाहिये। मुख भाग के केश के अनुरूप पुच्छ के केशों की रचना करनी चाहिये। खुरों के बढ़ जाने पर काट देना चाहिये केवल कनीनिका (छिगुनी) को छोड़कर। घोड़ों को साफ सुथरे स्थान पर बसाना चाहिये। उनके पास घास रख दें और रात भर दीपक जलता रहे। अश्वशाला में वानर, मुर्गे तथा गायें भी रहें। रात्रि में शस्त्रधारी पुरुष उनकी रक्षा में नियुक्त रहें।[20]

अश्वों का शान्ति कर्म :–

अश्वों के शान्ति कर्म का वर्णन इस प्रकार है – पुस्कर बोले – अश्वों को नित्य, नैमित्तिक और काम्य शान्तिकर्म के बारे में सुनो । सभी पंचमी तिथियां में श्रीधर (विष्णु) तथा लक्ष्मी का पूजन करें । तदनन्तर हयराज उच्चैश्रवा, की गंध, चंदन, माला, धूप, दीप तथा नैवेघ अर्पित करके विधिपूर्वक पूजा करें । शरद और वसन्द ऋतुओं में गणेश का पूजन करना चाहिये । शान्तिकर्म के लिये प्रतिपदा, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी तथा द्वादशी ये तिथियाँ प्रशस्त हैं । दिन रविवार उत्तम है । अश्विनी, रोहिणी, स्नाति, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा और पूर्वा फाल्गुनी, कृत्तिका – ये नक्षत्र श्रेष्ठ हैं । शुक्ल पक्ष प्रशस्त है । विचित्र उद्यानों, नदियों के पुलिकों तथा देवालयों में शान्तिकर्म होना चाहिये । अघ, धूप, दीप, नमस्कार तथा नैवेघों से पूजन करना चाहिये । कुलथी की दाल तथा मनोरंजक भक्ष्य, मधु, मांस, मदिरा, भात, खीर तथा सामयिक फल नैवेद्य में चढ़ाने चाहिये । नृत्य, गीत, वाद्य तथा शंखध्वनि करनी चाहिये । अग्नि में गायत्री मंत्र से आहुति देनी चाहिये । ओंकारपूर्वक रेवन्त का पुनः पुनः पूजन करें । फिर माला, लड्डू तथा चन्दन से ब्राह्मण की पूजा करें और दक्षिणा दें । इस प्रकार पूजन करने पर पूजकको सैकड़ों घोड़े मिलते हैं और घोड़ों को बल, तेल और आरोग्य की प्राप्ति होती है ।

हे महामानव ! आश्विन–शुक्ल–पूर्णिमा को तुरंगों का शान्ति कर्म करना चाहिये । मनोरमा ग्राम–प्रान्त में ईशान–कोण में पूर्व और उत्तर की ओर ढालदार यज्ञीय भूमि की रचना करें । प्रातःकाल पवित्र होकर धूप, दीप, नमस्कार तथा भूमि भोजन के द्वारा दोनों अश्विनीकुमारों तथा वरूण देव का पूजन करें । तदनन्तर वेदी में रेखा खींचकर शाखाओं (टहनियों) से युक्त कर दें । वेदी के चारों ओर रसों से परिपूर्ण एवं आर्द्र वस्त्र समन्वित कलश दिशाओं और विदिशाओं में स्थापित करें । तदनन्तर देवताओं के सूचक मंत्रोच्चारण करके अग्नि में घृत से आहुतियाँ दें । इसके बाद गंध, माला आदि से अश्वों का पूजन करें । तब सुसज्जित अश्वों प्र चढ़े हुए सुसज्जित पुरुष आयुधधारी पुरुषों के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करें । तीन बार प्रदक्षिणा करके शंखध्वनि से मिश्रित सिंहनाद करते हुये घर को जायें । इस (दूध) वस्त्र, गौ, काँसे का पात्र और सुवर्ण दक्षिणा दें । हे परशुराम ! इस कर्म के करने से हृष्ट–पुष्ट एवं निरोग बहुत से वाहन मिलते हैं । यह नित्य शान्तिकर्म बतलाया । अवनैमित्तिक शान्तिकर्म का विवरण निम्न प्रकार से है ।

अश्वों को मारक रोग (हैजा) पकड़ ले अथवा अत्यन्त दारुण व्याधि हो जाय प्रकृति का विपर्यय हो जाय तो शुभ स्थान में यज्ञीय भूमि की रचना करें। वहाँ कमल का विन्यास करके उसके मध्य मे विष्णु एवं लक्ष्मी की पूजा करें। केसरों पर देवताओ–ब्रह्मा, शंकर, चन्द्रमा, सूर्य अश्विनीकुमारा तथा उच्चैः श्रवा का पूजन करें। कमलपत्रों पर दिक्पालों का भी पूजन करें। सबकों गंध, धूप, दीप, नैवेद्य, माला पुष्प फल–फूल तथा गोरस चढ़ायें। सबको गंध, माला आदि से अलंकृत पूर्णघट चावल, वस्त्र, कटिसूत्र तथा पताका समर्पित करें। उसके उत्तर विधिपर्वूक वेदी की रचना करके अगन्याधान करें तब उपयुर्क्त देवताओं के नाम से अलग–अलग आहुति डाले। ह्वन के बाद गाय सुवर्ण, जोड़ा वस्त्र पुराहित को दे। यह शान्तिकर्म सभी रोगों का नाशक है। यह कर्म उपवास करके ब्राह्मण को विधिपूर्वक कराना चाहिये। यजमान भी भूखा रहे। अब मैं काम्यकर्म बता रहा हूँ। सदा रेवती नक्षत्र में यजमान और पुरोहित उपवास रखें और अश्विनी नक्षत्र में स्नान करके अकाल और मूल नामक दो कलशों को महुए के फूल से भरकर असगंध नामक जड़ी उनमें रख दें। उनके जल से अन्त में यजमान स्नान करें। तदनन्तर श्वेत वस्त्र पहनकर अश्विनी कुमारों, चन्द्रमा, वरूण तथा हरि का गन्ध, माला, नमस्कार, धूप, दीप तथा नैवेध चढ़ाकर अर्चित करें। तब सर्वोषधि से युक्त मिट्टी से अश्वमिथुन (घोड़ा–घोड़ी) की मूर्तियाँ बनायें। विद्वान पुरुष प्रणामपूर्वक वे मूर्तियाँ अश्विनीकुमारों को अर्पित करें। यथोक्त देवताओं के पृथक–पृथक नामों को चतुर्थयन्त पद बनाकर आदि में 'ओं' और अन्त में स्वाहा पद जोड़कर मंत्र बना लें। उस मंत्र से प्रत्येक को सौ–सौ बार आहुति दें। अश्व का लोम और फल–फूल स्कज त्रिपुट करके मणि के साथ धारण करें। मनुष्य प्रयत्नपूर्वक अश्विनीकुमारों को सदैव प्रणाम तथा स्नान करें। ऐसा करने से हजारों कुलीन तथा वीर्य–बल से युक्त अश्वों को वह प्राप्त करता है।[29]

<u>गज पालन</u> :–

गज–पालन का वर्णन इस प्रकार किया गया है – पुष्कर बोले–हाथी शिविर और सेना की परम शोभा है। राजाओं की विजय हाथियों पर निर्भर करती है। इसलिये उनका सम्मार्जन (स्नानादि) और पालन यत्नपूर्वक करना चाहिये। जितने हाथियों का सुखपूर्वक पोषण हो सके उतने ही रखने चाहिये। हाँथियों को भूखा और दुःखी करके नहीं रखना चाहिये। दुःखी हाथी

मनुष्यों के कुल को नष्ट कर देते हैं इसलिये उन्हें सुख देना चाहिये । उनको सुखी रखने से विजय मिलती है । युद्ध में कवचधारी एक भी हाथी यदि वेग से आक्रमणकरने के लिये टूट पड़ा हो तो उसके सामने कोई नहीं ठहर सकता है । शत्रु यदि संघ बनाकर इक्कठें युद्ध करने के लिये आ जायें तो एक ही क्रुद्ध हाथी प्रेरित होने पर उनसे युद्ध कर लेता है । मद से गीले कपोल वाले, कुछ टेढ़ी आँख वाले और बहुत विशाल सूँड़ वाले हाथी की शोभा वर्णन करने में कौन समर्थ है ? सूँड़ उठाकर कानों को स्थिर करके वेग से दौड़ते हुये हाथी के आगे ठहरने में कौन समर्थ हो सकता है ? हाथी के फुफकार मात्र से सैकड़ों घोड़े इधर–उधर भाग जाते हैं । सेना वही है जिसमें हाथी है और राजा वही है जिसके पास हाथी हैं, हे परशुराम ! मदगर्वित हाथी मूर्तिमान विजय है । देवताओं के हाथी को पंख होते हैं और मनुष्यों के हाँथी पंखरहित होते हैं । पताकाओं से अलंकृत प्रबल गजराजों की सेना को देखकर शत्रुओं के हृदय शीघ्र दहल जाते हैं । इसलिये गजेन्द्र सतत् प्रधान हैं ।[22]

पुष्कर बोले – अब मैं हाथियों की चिकित्सा बतलाऊँगा । सभी कुञ्जरज्वरों में घी और तेल का छिड़काव करना चाहिये तथा निर्वात स्थान हाथी को रखना चाहिये । कंधे के रोग में भी यही क्रिया करनी चाहिये । पाण्डुरोग में गोमूत्र में दारूहल्दी डालकर छिड़कना चाहिये । पेट फूलने के रोग में तेल से सींचकर निर्वात स्थान में रखना चाहिये । पाँच प्रकार के नमक मिश्रित करके वारूणी मदिरा पिलानी चाहिये । बायकबिंडग, त्रिफला और त्रिकटु (सोंठ, पीपल, मिर्च) और नमक के साथ चारा खिलाना चाहिये । मूर्च्छारोग होने पर हाथी को चारा न दें और मधु के साथ जल पिलायें । सिर का मालिश करें, सुघनी (नास) दें । कड़वा तेल लगायें । कोमल और स्निग्ध भोजन करायें । जिस हाथी को कँपकपी का रोग हो, उसे मोर, तीतर और लबा पक्षी के मांस को पीपल तथा मरिच के साथ पकाकर रस खिलाना चाहिये । हाथी का अतीसार रोग दूर करने के लिये छोटा कच्चा बेल, लोध का फूल और धव का फूल सबको चूरकर पिण्ड बनाकर खिलाना चाहिये । सूंड़ के रोग में सुँघनी और नमक युक्त घी देना चाहिये । कान के रोग में पीपल, प्रचुर मरिच, दही के जल में बनी लपसी देनी चाहिये । वाराही कंद का रस भी दे सकते हैं । गले के रोग में सोंठ, मकोम, दशमूल ओषधि, कुलथीदाल, इमली – इन सबको तेल में पकाकर वह तेल लगायें । त्वचा

के दोषों में निम्ब या वृष नामक औषधि का काढ़ा हाथी को पिलाना चाहिये । कृषि दोषों में गौ का मूत्र तथा बायबिंडग प्रशस्त है । अदरक, जीरा, दाख और चीनी डालकर पकाया जल पिलाने से हाथी का क्षत–विक्षत अंगों मे बहुत लाभ मिलता है । माँस का रस भी अच्छा है । अरुचि होने पर मूंग, भात एवं जिक्तु देना उत्तम है । दूध वाले वृक्ष, नदी के किनारे के जम्बु वृक्ष और मालती वृक्ष की छाल को पीसकर पिलाने से हृदय रोग की शान्ति होती है । छोटे कच्चे बेल को पीसकर लेप लगाने से कमर रोग की शान्ति होती है । बायबिंडग, कुटज का बीज (इंद्रजी, हींग, सरल वृक्ष चीड़ का पेड़), हल्दी, दारुहल्दी – इनको पीसकर पिण्ड बनाकर पूवाहण में देने से सब प्रकार के शूल रोगों का शमन हो जाता है । भार के कारण हिलता हुआ हाथी का दाँत उखाड़ देना चाहिये । हाथी का उत्तम भोजन जेठी मधु, व्रीहि और चावल है । मध्यम भोजन यव और गेहूँ है । शेष उद्यम भोजन है । गन्ना हाथियों के लिये बलवर्धक है । हाथियों के लिये सूखी घास कफ और वात को कुपित करती है । मद चूने से क्षीण हुए हाथी दूध पिलाना उत्तम है । जीवनी शक्ति बढ़ाने वाली ओषधियों के साथ पकाये गये मांस का रस भी लाभदायक है ।

अब मैं मदवृद्धिकारक योगों को बताऊँगा । युद्धकाल आ जाने पर उन योगों का प्रयोग करना चाहिये । अगर, लाल फूल वाली कटसरैया, जीवंती ओषधि, रास्ना लता – इनको पीसकर मधु के साथ पिण्ड बनाकर खिलाया जाय तो सद्यः मद बढ़ने लगता है । विषाणी नामक पौधा, आक की जड़, कुंज (गुंजा) – इनके मूल, फल और फूल को पीसकर मधु के साथ पिण्ड बनाकर हाथी को खिलाने से मद में वृद्धि होती है । कटुमत्स्या ओषधि, बायबिंडग, आर, कोषात की ओषधि, दूध और हल्दी – इनका बनाया हुआ धूप हाथी के लिये जयकारक होता है । पीपल, श्वेत लशुन, हरिताल, मैनसिल – इनको अश्व के मूत्र से सिंचित करके धूप में सुखाकर कटुमत्स्या ओषधि, अंगूरीमध, कड़वी रोहिणी लता, काला अगर – इनका बनाया गया दूसरा शुभकारक है । पीपल, चावल, तेल, अंगूरी मधु तथा मधु – इनका नेत्रों में छिड़काव करने से आँखों की ज्योति बढ़ती है । बिच्छू और कबूतर की बीट, दूध वाले वृक्ष – गूलर, बरगद आदि, करीर – इनके बने हुये अंजन हाथी के नेत्रों में लगा देने से वह युद्ध में कहर ढा देता है । नील कमल, मोथा, तगर और चावल का जल – इनका अंजन नेत्रों को बड़ी शान्ति देता है । हाथी के सोने की जगह पर प्रतिमास एक बार तेल की सिंचाई करनी चाहिये । शरद ऋतु और ग्रीष्म ऋतु में घी से सिंचाई करना उत्तम है । 23

हाथियों का शान्तिकर्म :–

हाथियों के शान्तिकर्म का विवरण पुष्कर के द्वारा इस प्रकार से करवाया गया है – पुष्कर बोले अब हाथियों का शान्तिकर्म सुनिये । यहाँ भी शान्तिकर्म तीन प्रकार है – नित्य, नैमित्तिक और काम्य । शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को भगवान् वासुदेव, लक्ष्मी तथा ऐरावत का पूजन करना चाहिये । गंध, माला, नमस्कार, धूप, दीप तथा नैवेध से पूजा करें । कृष्ण पक्ष के अन्त में प्रत्येक मास भूत यज्ञ करे । यह यज्ञ सतत तिल, मांस, दूध, गुड़ मत्स्य, पकाये हुये मांस, भक्ष्य और फूलों से चौराहे पर, गलियों में, शून्य गृहों में एक वृक्ष के पास, श्मशानों में नगरद्वार पर, अटारियों पर, शून्य देवताओं में करना चाहिये ।

शुक्लपक्ष के अन्त मे देवता–यज्ञ करें । गज–स्थान उत्तरी भाग मे पूर्व और उत्तर तरफ शुभ स्थान में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र कुबेर, यज्ञ, चन्द्रमा, सूर्य, वरुण, वायु, अग्नि, पृथ्वी, गरुड़, नागराज शेष, पर्वत, हाथी, विरुपाक्ष, महापद्मा, भद्र तथा सुमनास का पूजन करें । फिर देवयोनि के आठ दिग्गजों की पूजा करें । आठ दिग्गज ये हैं – कुमुद, ऐरावत, पद्म , पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन और नील । गंध, माला, नमस्कार, धूप, दीप, नैवेध से उपर्युक्त देवताओं का अलग–अलग पूजन करना चाहिये । ओंकार उच्चारण से पवित्र किये गये घी से अग्नि में हवन करना चाहिये । हे राम ! पृथक्–पृथक् सबके नामों को चतुर्थ्यन्त पद बनाकर पूर्ववत् आदि में ओं तथा अन्त में स्वाहा पद जोड़कर हवन करें । तब दक्षिण देकर ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करायें । फिर 'रक्षोहण' मंत्र से शान्ति–जल को अभिमंत्रित करके हाथियों पर छिड़क दें और उनका भी पूजन करें ।

इसके बाद मैं आपको नैमित्तिक कर्म बताऊँगा । हाथियों को मारक रोग (हैजा) या दारुण रोग हो जाय या दन्तच्छेद या दन्त भंग हो जाय या कृष्ण पक्ष में हाथी मर जाय या हथिनी को मद हो जाय या प्रकृति–विपर्यय हो जाय तो नगर से पूर्वोत्तर सुन्दर दिशा में जाकर स्निग्ध और जल वाले जलाशय के पास जहाँ वृक्ष हो वहीं पूर्वोत्तर में ढालू भूमि पर स्थण्डिल यज्ञीय (पवित्र स्थान) की रचना करें । वहाँ कमल पुष्प का विन्यास करें । उसकी कर्णिका पर

विष्णु तथा लक्ष्मी को विन्यस्त करें। फिर (कमल के) केसरों पर ब्रह्मा, भार्गव, पृथ्वी, स्कन्द्र, अनन्त, आकाश, शिव सोम – इन सब देवों का पूजन करें। वहाँ दलों पर गजों सहित दिक्पालों का पूजन करें। दूसरे पत्रों पर अस्त्रों का भी पूजन करना चाहिये। इन्द्रपत्र के पीछे वज्र का पूजन करें। तदनन्तर चक्र, दण्ड, तोरण, पाश, तोमर, बाण सहित धनुष, गदा त्रिशूल का विन्यास करके भीतर के दल पर वृत्ताकार लेखनी से कमलपुष्प लिखें। तब पूर्व दिशा में सूर्य के साथ अश्विनी कुमारों को लिखें। अग्नि दिशा में वसुओं को याम्य दिशा में साध्यों को विन्यस्त करें नैर्ऋत – भाग में अंगिरस देवों का विन्यास करें। पश्चिम दिशा में मृत्यु का और बाराण्य कोण में मरुत् का विन्यास करें। पश्चिम में विश्वे देवों को और ईशानकोण में रुद्रों को विन्यस्त करें। इस प्रकार देवताओं का न्यास करके सूत्रकारों और ऋषियों का भी न्यास करें। हे राम् ! पूर्व और साम्‍ दिशा मे देवी सरस्वती का न्यास करें। पश्चिम दिशा में नदियों तथा उत्तर दिशा में पर्वतों का न्यास करें : वेदियों में महाभूतों का न्यास करें। पदम् चक्र, गदा, शंख को ईशान आदि दिशाओं मे विन्यस्त करें। वहाँ चौकोर तथा चार द्वार वाला मण्डल बनायें। विदिशाओं मे पूर्णपात्र युक्त पूर्ण कलसों का न्यास करें। सात हाथ के दण्डों में पाताकाओं का न्यास करें। पताका श्वेत, रक्त, पीत होनी चाहिये। दिशाओं मे तोरणों का विन्यास करें और तोरणों को दूध वाले वृक्षों के पत्तों, फूलों और फलों से वेष्ठित करें। तोरण का प्रमाण छह हाथ होना चाहिये। तोरण के ऊपर और मध्य में दानवों तथा आयुध–पताकाओं से युक्त देवगणों एवं छत्र सहित इन्द्र का विन्यास करें। दिग्गजों का विन्यास ओषधियों से करें। विद्वान् पुरुष लाबाओं से ऐरावत नामक दिग्गज का विन्यास पूर्व दिशा में कमलपत्र करें। पुष्पमय पभ नामक दिग्गज का अग्निकोण में कमलपत्र पर न्यास करें। दक्षिण दिशा में प्रियंगुओं से पुष्पदत्त गज का न्यास करें। नैर्ऋत भाग में पुष्प से वामन नामक गज का न्यास करें। वायण्य भाग में उड़द सेअंजन नामक गज का न्यास करें। उत्तर दिशा में सौंफ से नील नामक गज का न्यास करें। ईशानकोण में श्वेत चावलों से कुमुद नामक गज का न्यास करें। ईशानकोण में श्वेत चावलों से कुमुद नामक गज का न्यास करें। उसके बाद पूजन करें। पहले दिन उपवास रखें, सिर से स्नान करके जितेन्द्रिय रहें। शुक्लवस्त्र धारण करके पगड़ी बाँध रहें। सोने की अंगूठी पहने रहें। सभी देवताओं का अलग–अलग पूजन करें। अस्त्रों, कुञ्जरों तथा गरुण आदि का भी तोरण पर पृथक्–पृथक् पूजन करें। कुम्भों पर सागरों का गंध, माला, चन्दन, धूप, दीप, नमस्कार और वस्त्रों से पृथक्–पृथक पूजन करें।

पूजन के पश्चात् शंखध्वनि तथा महिलाओं के द्वारा नृत्य–गीत आदि करवाये । तदनन्तर अग्निहोत्री ब्राह्मण के घर से अग्नि लाकर रेखांकित वेदी में रखे । सभी देवताओं के नामों को पृथक्–पृथक् चतुर्थ्यन्त पद बनाकर आदि में ओं तथा अन्त में 'स्वाहा' जोड़कर बना हुआ मंत्र (यथा ओं इन्द्राय स्वाहा, ओं ताक्ष्र्याय स्वाहा इत्यादि) पढ़कर घी से सौ–सौ आहुतियाँ दें । हवन के उपरान्त अग्नि, देवगण तथा द्विजों की प्रदक्षिणा करके सब अपने–अपने घर को जायँ । निष्क (मिन्नी), धेनु, भूमि, अश्व तथा अन्य वस्तुयें शक्रमनुसार दक्षिणा में दें । इस प्रकार गजेन्द्रों का शान्तिकर्म समस्त बाधाओं का विनाशक है ।

एक बार जब भृगुवंशी च्यवन इन्द्र पर कुपित हो हो गये तब इन्द्र के नाश के लिंये मद नामक अत्यन्त दारूण दैत्य उत्पन्न हुआ । पश्चात् उसे प्रसन्न किया गया । तब उसने मद के अनेक भाग करके स्त्रियों में, जुए में, मद्यपान में, मृगया (शिकार) में, धन में, सभी विधाओं में, सभी शिल्पों में, सभी जीवों में, रूप में, बल में तथः कुल में बॉट दिया, क्योकि एक व्यक्ति उसे धारण कर सकता है, यह सोचकर उसने उपर्युक्त स्थानों में अधिक और मद्यपान मे किञ्चित निविष्ट कर दिया । प्राणियों में सबसे अधिक हाथी में दिया । अतएवं हे राम ! जब हाथी में मद अधिक हो जाय तब शान्ति करनी चाहिये ।

अब काम्य शान्ति सुनो । स्नानोपरान्त श्वेत वस्त्र पहनकर विष्णु, चन्द्रमा, सूर्य तथा वरूण का पूजन करें । गंध, माला, धूप, दीप आदि से हाथी की भी पूजा करें । तब हॉथी के दॉत से सूर्य को धूप देकर हवन करें । ऐसा करने से गजेन्द्रों की प्राप्ति होती है ।[24]

व्यापार :–

'कृषि गोरक्षवाणिज्यम्' यह अत्यन्त प्राचीन से विश्वजनीन मान्यता है । कृषि और गोरक्षा–पशुपालन पर विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है । अब वेद–पुराणों के ही अनुसार वाणिज्य–व्यापार पर प्रकाश डालना है । वाणिज्य , व्यापार और उद्योग – ये तीनों पर्यायवाची शब्द हैं, क्योकि शास्त्र पुराणों में इन तीनों का एक ही अर्थ में प्रयोग किया गया ।

ऋग्वेदीय युग में हम आर्य जाति को व्यापार–निरत देखते हैं। उन्होंने कपड़ा बुनना, हथियार बनाना और खेतीबारी करने में काफी शिक्षा पायी थी। वे लोग दव्यादि की खरीद–बिक्री भी जानते थे। उक्त ग्रन्थ से उसका परिचय मिलता है। उसी पूर्वतम् आर्य जाति के समय से ही भारत में व्यापार स्रोत प्रवाहित हो रहा है और उसी उद्देश्य से उनका स्थल मार्ग से विभिन्न देशों में गमन एवं उपनिवेश स्थापना हुआ था, उसे कौन अस्वीकार करेगा ?

आर्य जाति के उपनिवेश स्थापना से ज्ञात होता है कि वे लोग समुद्र पथ से भी गमनागम करते थे। ऋग्वेद के 'शतारिगां नाव' शब्द में शत्रपत्रयुकता समुद्रगामिनी नौका का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है। महाभारत के जतुगृह पूर्वाध्याय में यन्त्रयुक्त नावों का वर्णन मिलता है। नदी बहुल बंग राज्य में भी उस समय नौका निर्माण की परिपाटी का अभाव नहीं था। 'महावंश' ग्रन्थ में बंग वासियों के सिंहल विजय की कथा मिलती है। रघुवंश में रघु द्वारा नौबल गर्दित बंग भूपतियों की पराजय कथा का विवरण है।

ऐसा समझना गलत है कि उपर्युक्त नौकायें केवल युद्ध के लिये ही उपयुक्त थी। जो नावों की सहायता से नौ सेनाओं को लेकर राज्य जीतने के लिये आगे बढ़ते थे, वे एक समय नावों में सवार होकर व्यवसाय के दूर तक भी जा सकते थे। श्रीमंत की लंका यात्रा और चाँद, धनपति आदि सौदागरों की व्यापार यात्रा उक्त स्मृति की द्योतिका है।

पुराणों और स्मृति ग्रन्थो के अनुसार व्यापार वैश्य जाति की वृत्ति या वार्ता या जीविका है। वैश्य इस वृत्ति से जीविका का निर्वाह करें, किन्तु विपत्ति पड़ने पर ब्राह्मण भी वाणिज्य वृत्ति से अपनी जीविका चला सकता है। ब्राह्मण क्षत्रिय को आपत्तिकाल में किस वृत्ति का अवलम्बन करना चाहिये, इसके सम्बन्ध में मनु ने लिखा है–– ब्राह्मण और क्षत्रिय् अपनी धर्मनिष्ठा में व्याघात उपस्थित होने पर निषिद्ध वस्तुओं को त्याग कर व्यापार वृत्ति से अपनी जीविका चला सकते हैं।

निषिद्ध वस्तुयें–सब तरह के रस, तिल, प्रस्तर सिद्धान्त, नमक, पशु और मनुष्य का बेचना बहुत मना है । कुसुमादि द्वारा लाल रंग के सूत से बने सब तरह के वस्त्र सन और अलसी, तन्तुमय वस्त्र, भेड़ के रोयें के बने कम्बल आदि का भी बेचना मना है । जल, शास्त्र. विष, मांस, सोमरस, सब तरह के गन्ध द्रव्य, दूध, दही, घी, मोम, तेल, शहद, गुड़ और कुशन्ये सब चीजें नहीं बेचनी चाहिये । सब तरह के वन्य पशु विशेषतः बड़े दाँत वाले गजादि अखंडित खुर वाले अश्वादि और लोहा, चमड़ा आदि कभी नहीं बेचना चाहिये । तिल के विषय में विशेष बात यह है कि लाभ की आशा से तिल बेचना उचित नहीं है, किन्तु स्वयं पैदा किये हुये तिल को बेचने में कोई दोष नहीं है ।[25]

ब्राह्मण और क्षत्रिय उपर्युक्त वस्तुओं को छोड़कर वाणिज्य कर सकते हैं । ये दोनों जातियाँ आपस में मिलकर एक साथ वाणिज्य कार्य आरम्भ करें और उनमें यदि कोई प्रताड़ना करें या किसी के ध्यान देने से वाणिज्य में क्षति हो तो राजा उसे दण्ड दें ।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने लिखा है–– यदि कुछ व्यक्ति एक साथ मिलकर व्यवसाय करे (जैसे आजकल लिमिटेड कम्पनी प्रतिष्ठित होती है) तो उसमें जिसका जैसा भाग होगा, उसी के अनुसार उनको घाटा नफा सहना होगा । इन हिस्सेदारों मेंयदि कोई निषिद्ध कार्य करे या वह ऐसा करे जिससे व्यवसाय में हानि हो तो उसे ही उस क्षति की पूर्ति करनी होगी । यदि कोई विपित्ति की दुहाई दे तो वह साधारण लाभांश का दसवाँ अंश पाने का अधिकारी होगा । राजा की आज्ञा लेकर व्यवसाय आरम्भ करना होगा । राजा ही बेचने वाली चीज का मूल्य निर्धारित करता है इस लिये उसको कर रूप में लाभांश के बीस भाग का एक भाग दिया जाता है । राजा जिस चीज को बेचने की मनाही करे वह तथा अन्य राज्योचित चीजें बेचने पर राजा उसे अधिग्रहीत कर ले ।

यदि व्यापारी व्यापार करते समय शुल्कवञ्चना के लिये पण्यद्रव्य के परिमाण–विषय मिथ्या बोले, शुल्क ग्रहण स्थान से टल जाय और विवादास्पद द्रव्य खरीदे बेंचे तो उस व्यापार में उसका जो धन रहे राजा उसके उत्तराधिकारी को दिला दे । इसमें जो ठगे, वह लाभ से वञ्चित कर दिया जाय ।

राजा पण्य द्रव्य के प्रकृत मूल्य तथा लाने का किराया आदि का खर्च का हिसाब करके वस्तु का मूल्य निर्धारित कर दे, जिससे खरीदने और वेचने वाले दोनों की क्षति न होने पाये। राजा के द्वारा निर्धारित मूल्य से ही व्यापरी नित्य चीजे बेचा करे। व्यापारी खरीदने वालों से मूल्य लेकर चीज उसे न दे तो उसके रुपये का ब्याज जोड़कर या उस वस्तु को बेचकर जो लाभ हो उसे खरीददार (क्रेता) को चुकाना चाहिये। देशी क्रेता के प्रति यह नियम है। यदि क्रेता विदेशी हो तो खरीदी हुयी चीज विदेश में लेजाकर बेची जाने पर लाभ मिले, उसका हिसाब जोड़कर विदेशी क्रेता को दे दें। विक्रता के दे देने पर भी यदि क्रेता माल नहीं लेता है और दैवौपद्रव तथा राजोपद्रव से वह नष्ट हो जाय तो क्रेता का ही माल नष्ट समझा जायेगा। विक्रता उस माल का जिम्मेदार नहीं होगा। बेचने के समय यदि बुरी चीज को अच्छी कह कर बेचे और बाद में उसकी कलई खुल जाय तो बेंची हुयी चीज के मूल्य से दूने मूल्य के दण्ड का वह पात्र होता है। क्रेता वस्तु खरीदने के बाद उस वस्तु का मूल्य कम हुआ है या अधिक या विक्रता विक्रय वस्तु बेच देने पर वस्तु का मूल्य अधिक हुआ है या नहीं यह न जानकर माल के खरीद फरोख्त के सम्बन्ध में दुःख प्रगट करने के अधिकारी नहीं होगे। यदि वे ऐसा करें तो खरीद फरोख्त किये हुये माल के मूल्य के छठें अंश के दण्डाधिकारी होंगे।

जो व्यापारी राज्य निरूपित मूल्य से कम और अधिक जानकर गुटबन्दी करके लोगों के लिये कष्टकर मूल्यों की वृद्धि करता है। उसके लिये उत्तम साहस[26] दण्ड का विधान करे, जो देशान्तर से आये हुये माल को हीन मूल्य में लेने के लिये रोक रखें या एक मूल्य ग्रहण करके बहुमूल्य पर बेच तो उसका भी उत्तम साहस दण्ड होगा। जो व्यक्ति वजन करने के समय डन्डी में कम तौलता है उसको दो सौ पण दण्ड दें। औषध, धृत, तैलादि स्निग्ध पदार्थ, नमक, कुमकुमादि, गन्ध, द्रव्य, धान, गुड़, आदि चीजों में मिलावट करने वाले को सोलह पण दण्ड देना चाहिये।

माल का खरीदना, बेंचना तथा एक देश की उपजी हुयी चीज दूसरे देश में भेजना या दूसरे देश से मंगाना। इसी को व्यवसाय कहते हैं। प्राचीन काल में इन्हीं नियमों का पालन

करके भारत मे कारोबार होता था ।[27]

बहुत पुराने समय में भारत या एशियाई महादेश के सभी भूखण्डों या यूरोपादि भारन का बेरोक–टोक वाणिज्य–स्रोत प्रवाहित होता था । केवल स्थल पथ में या मैदान में ही नहीं चलता था भारतीय व्यापारियों ने उत्ताल तरंगों से भरे समुद्र की छाती पर तथा नदी के वक्ष पर बड़ी या छोटी नावों की सहायता से जातीय श्रीवृद्धि के मूल वाणिज्य को फैलाया था । इधर जिस तरह वे दक्षिण समुद्र के पूर्व और पश्चिम भू–भागो मे आते जाते थे, वैसे ही वे वन – संकुल भयावह गिरि संकटों को पार करके मध्य एशिया और वहां से यूरोप के प्रसिद्ध नगरों में जाते थे । वे अपनी चीजो को बेचते तथा आवश्यक विदेशी चीजों को खरीद लाते थे ।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार व्यापार का आरम्भ किसी शुभ दिन में करना चाहिये । अशुभ दिन में करने पर घाटा होता है । भरनी, अश्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्व–फाल्गुनी और पूर्वाषाढा आदि नक्षत्रों में वस्तु बेचना ठीक है, किन्तु खरीदना ठीक नहीं । रेवती, अश्विनी, चित्रा, शतभिषा, श्रवण और स्वाति आदि नक्षत्रों में खरीदना और बेचना अशुभ है ।[28]

यद्यपि मन्वादि स्मृतिग्रन्थों के अनुसार वाणिज्य व्यापार कर्म वैश्य जाति के लिये निर्दिष्ट है; किन्तु विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार प्रायः सभी जातियाँ वाणिज्य के लिये अधिकृत हैं । प्रस्तुत पुराण में एक शूद्र का वाणिज्य कर्म उल्लिखित है––

बभूव शूद्रजातीयः कश्चिद् भाग्यविवर्जितः ।
कृतवान् स तु वाणिज्यं धनशेषेन केनिचित् ।।
तस्मिन् विपन्ने स कृषि चकार नृपसत्तम ।[29]

फिर इसी पुराण में दूसरी जगह एक गन्धर्व जाति का पुरुष कह रहा है––मुझे खेती और वाणिज्य करने की आवश्यकता नहीं है––

न कृषिर्न च वाणिज्यं जनोऽस्मांक प्रयोजनम् ।[30]

प्रकृत पुराण में वाणिज्य सम्बन्धी क्रय–विक्रय आदि क विषय में भी निर्णय किया गया है ।

क्र0सं0	सन्दर्भ
1.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय – 337
2.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय – 314
2.(अ)	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय – 315
3.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, प्रथम खण्ड, अध्याय – 85
4.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, प्रथम खण्ड, अध्याय – 212, श्लोक 17
5.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, प्रथम खण्ड, अध्याय – 170, श्लोक 3
6.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय – 157
7.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय – 160
7.(अ)	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय – 163
8.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 42, श्लोक 2
9.	उत्तर पर्व, अध्याय – 159, श्लोक 33
10.	गोमती विद्या गौओं की स्तुति रूप में मन्त्र है। 42वें अध्याय के श्लोक 50 से 58 तक में यह निहित है।
11.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 42
12.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 43
13.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय – 291
14.	पाया जुड़ी हुयी पाटी, जो विश्व का अस्त्र बतायी जाती है।
15.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 44
16.	उत्तर पर्व अध्याय – 160, श्लोक 9
17.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, प्रथम खण्ड, अध्याय – 146
18.	'कल्याण' पत्रिका वर्ष 57, अंक 7, श्री किशन जी काबरा के लेख से साभार उद्धत।
19.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 45
20.	विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 46

क्र0सं0 **सन्दर्भ**

21. विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 47
22. विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 48
23. विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 49
24. विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय – 50
25. मनुस्कृति, अध्याय – 10
26. एक हजारा पण जुर्माने की सजा
27. याज्ञवल्क्य संहिता – 2 म0
28. ज्योति सार संहिता
29. विष्णु धर्मोत्तर पुराण, प्रथम खण्ड, अध्याय – 170, श्लोक 5
30. विष्णु धर्मोत्तर पुराण, अध्याय – 212, श्लोक 14

षष्ठम अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के गहन अध्ययन व सम्यक् अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि इसमें भारतीय समाज व संस्कृति के सभी पक्षों का बड़ा ही विस्तृत एवं विवेचना पूर्ण वर्णन प्राप्त होता है। पुराण धार्मिक ग्रंथ हैं। धर्म भारत में प्रदर्शन की वस्तु न होकर जीवन की आचार संहिता है जिसका उद्देश्य आदर्श जीवन व्यतीत करते हुये अन्ततः मोक्ष की प्राप्ति करना है। फलतः जीवन के सभी पक्ष धर्म संवलित हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण भी इससे अलग नहीं है। अतः धर्म की प्रधानता के साथ-साथ लोकजीवन से संबंधित राजनीति, कला, स्थापत्य, धार्मिक जीवन, ज्योतिष, भूगोल, आयुर्वेद, शिल्प, सामाजिक जीवन आदि का विवरण भी इसमें प्राप्त होता है। इन सभी क्षेत्रों का आधार तत्व धर्म हैं क्योकि धर्म के बिना नैतिक जीवन की कल्पना भारतीय दर्शन में नहीं की गयी है। विष्णु धर्मोत्तर यद्यपि महापुराण न होकर उपपुराण है तथापि इसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित आदि पुराणों के सभी पांच लक्षण इसमें प्राप्त होते हैं। नाम के अनुरूप ही विष्णु धर्मोत्तर पुराण वैष्णव धर्म से संबंधित है तथा विष्णु पुराण का पश्वर्ती भाग माना जाता है। इसका रचना काल छठी शताब्दी से दसवीं शताब्दी के मध्य निर्धारित होता है।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण तीन खण्डों में विभाजित है प्रथम खण्ड में 269 अध्याय हैं। उसमें मुख्य रूप से भौगोलिक वर्णन के साथ-साथ पूजा विधान, मन्वन्तर आदि का वर्णन प्राप्त होता है। द्वितीय खण्ड में 183 अध्याय हैं जिसमें मुख्य रूप से राजधर्म का वर्णन प्राप्त होता है। तृतीय खण्ड में 350 अध्याय हैं तथा वर्ण्य विषय मुख्य रूप से कला एवं स्थापत्य है। अन्य सभी पुराणों की भाँति इसकी रचना का श्रेय व्यास को दिया जाता है।

भारतीय हिन्दू समाज का संचालन किस तरह करना चाहिये, हिन्दू व्यक्ति को अपना जीवन यापन किस प्रकार करना चाहिये, इसका बड़ा ही विस्तारपूर्ण वर्णन विष्णु धर्मोत्तर पुराण में प्राप्त होता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण मूलतः वैष्णव मान्यताओं का पुराण है अतः समाज संचालन संबंधी मान्यताओं का आधार वैष्णव धर्म है। प्राचीन भारतीय मान्यता के अनुसार भारतीय समाज को

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णों में बाँटा गया है, इस पुराण में वर्ण विभाजन के आधार तत्वों के साथ–साथ इन वर्णों के कर्तव्यों का वर्णन भी प्राप्त होता है । इसके साथ ही साथ इसमे अनुलोभ व प्रतिलोभ विवाहो के परिणामस्वरूप उत्पत्र वर्ण शंकर सतानों का वर्णन भी प्राप्त होता है। उन्हें समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था । पुराणकार कहता है कि अनुलोभ विवाह से उत्पन्न संतान की जाति माता की जाति से निर्धारित होगी तथा प्रतिलोभ विवाह से उत्पन्न संतान की जाति का निर्धारण पिता की जाति से होगा । विभिन्न प्रतिलोभ व अनुलोभ विवाहों से उत्पन्न संतानों की जाति का नामोल्लेख भी प्राप्त होता है । वर्णों के सथ ही ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ आश्रमों का उल्लेख व उनमें किये जाने वाले कार्यों का उल्लेख भी मिलता है । ब्रह्मचर्य आश्रम में गुरू के यहां रहकर अध्ययन, गृहस्थ में विवाह व संतानोत्पत्ति तथा वानप्रस्थ त्याग की ओर उन्मुख होना ही मुख्य था । इस पुराण में भोजन–पान के उल्लेख के साथ–साथ खाद्य–आरताद्य तत्वों की लम्बी सूची प्राप्त होती है ।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में धर्म को सर्वाधिक महत्व दिया है तथा इसकी स्थापना व रक्षा का भार भगवान कृष्ण को सौंपा है । उन्हें भगवान विष्णु का अवतार माना है । इस सारी सृष्टि में भगवान विष्णु व उनकी पत्नी देवी लक्ष्मी को व्याप्त बताया है। सुख, समृद्धि तथा यश की प्राप्ति हेतु धर्म का पालन अनिवार्य है । धर्म के महत्व को ही आगे बढ़ाते हुये पुराणकार ने युद्ध के समय भी धम्र को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बताया है । उसने स्पष्ट कहा है कि युद्ध में विजय प्राप्ति हेतु राजा को धर्म की नीति व शक्ति का सहारा लेना चाहिये । युद्ध के लिये निकलने के पूर्व ज्योतिषीय गणना के आधार पर शुभ मुहूर्त का ध्यान रखने के लिये कहा है तथा विभिन्न मुहूर्तों का वर्णन भी प्राप्त होता है । युद्ध में विजय के पश्चात् पराजित राजा के साथ भी धर्मानुसार व्यवहार करना चाहिये ।

स्त्री के संबंध में प्राप्त विस्तृत विवरण को देखते हुये लगता है कि पुराणकार ने नारी को पाँचवें वर्ण के समान महत्ता प्रदान की है । इसमें स्त्री के आचार, व्यवहार, चरित्र आदि के बारे में व्यापक विवरण प्राप्त होता है । स्त्री के इस किये जाने वाला तथा स्त्री के प्रति किये जाने वाले व्यहार का विशाल वर्णन प्राप्त होता है । स्त्री के विवाह की आयु, पति व पत्नी का एक दूसरे के -

प्रति कर्तव्य, विशेष परिस्थितियों में दूसरा विवाह, विवाह के विभिन्न प्रकारों का विवरण पुराणकार ने दिया हे। कन्या बेचा जाना अत्यन्त ही निंदनयी कार्य पुराणकार ने बताया है। स्त्रीधन का भी उल्लेख मिलता है। चरित्र की दृष्टि से स्त्री को बहुत श्रेष्ठ न ही माना गया है। कुल मिलाकर पुराणकार ने स्त्री को हेय दृष्टि से देखा है।

भारतीय जीवन दर्शन का अंतिम लक्ष्य पाप से बचकर पुण्यार्जन करते हुये मोक्ष की प्राप्ति करना है अतः विष्णु धर्मोत्तर पुराण में पुराणकार ने पाप और पुण्य की विस्तृत मीमांसा की है। किन कार्यों के करने से व्यक्ति पाप का भागीदार होता है तथा किन कार्यों के द्वारा पुण्यार्जन किया जा सकता है इसकी लम्बी सूची पुराण में मिलती है। उसमें नदी व वनों का विनाश तथा पशु हत्या को भी पाप की सूची में रखा गया है। पुराणकार ने पाप की अंतिम परिणिति नरकगामी होना तथं पुण्यार्जन द्वारा स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति होना बताया है। नरक का बड़ा ही हृदयनिदारक वर्णन पुराणकार ने किया है। इसके विपरीत स्वर्ग का मनोहारी विवरण प्राप्त होता है। ऐतिहासिक रूप से भारतीय समाज में धार्मिक भावना का प्रादुर्भाव तो सैन्धव काल से ही हो जाता है परन्तु धर्म का क्रमबद्ध विवेचन वेदों से प्राप्त होता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वेदों की उत्पत्ति दिखाया है जिसमें उसे ब्रह्मा के विभिन्न मुखो से उत्पन्न बताया है।

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज के संचालन का दायित्व ब्राह्मणों व क्षत्रियों के हाथ में रहा है। ब्राह्मण यक्ष आदि कियाओं के द्वारा धार्मिक रूप से समाज पर अपना प्रभाव रखते थे तथा क्षत्रिय शारीरिक शक्ति के द्वारा समाज पर नियंत्रण रखते थे। ऐसी स्थिति में समाज में प्रथम स्थान पाने के नियं दोनों के मध्य विरोध होना अवश्यंभावी था। इसका निदर्शन स्थान-स्थान पर पुराण में हुआ है। परन्तु एक स्वस्थ समाज के लिये यह स्थिति हानिकारक थी, अतः पुराणकार ने ब्राह्मण क्षत्रिय के मध्य अच्छे संबंध होने पर बल दिया है। चूँकि ब्राह्मण का कार्य अध्ययन अध्यापन का तथा वह धार्मिक कियाओं के माध्यम से आध्यात्मिक शक्तियों का शत्ता ज्ञाता माना जाता था अतः बौद्धिक रूप से श्रेष्ठ होने के कारण उसे समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। अतः पुराणकार ने ब्राह्मणों के सम्मान पर बहुत जोर दिया है।

प्राचीन भारतीय समाज में धर्म में यज्ञ का बहुत अधिक महत्व था, अतः पुराणकार ने यज्ञ का व्यापक वर्णन किया है । उन यज्ञों का प्रतिपादन कैसे हो, कहाँ पर हो, क्यों हों तथा किन–किन वस्तुओ की यश मे आवश्यकता पड़ती है इन सभी का विवरण विष्णु धर्मोत्तर पुराण मं प्राप्त होता है । भारतीय धर्म में यज्ञ के साथ–साथ गाय को बहुत ही गोरवशाली स्थान प्रदान किया गया है । उस पुराण में तो गाय को ही धम्र का मूल स्रोत बताया है । गायों को किसी भी प्रकार का कष्ट होने पर गोपालक घोर पाव का भागीदार होता है । अतः गाय का कैसे पालन किया जाये, इन्हे कहाँ रखा जाय, क्या खिलाया जाय तथा अस्तष्य होने पर किन–किन औषधियों का प्रयोग किया जाय इन सभी का वर्णन विष्णु धर्मोत्तर पुराण में प्राप्त होता है । पुराणकार ने उन कार्यों को भी बताया है जिनके करने से गायों को कष्ट होता है तथा जो सेवा करने प्राप्त होने वाले सुखों का भी वर्णन प्राप्त होता है ।

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में वैष्णव धर्म के समानान्तर ही शैव धर्म भी पुष्पित पल्लवित होता रहा है दोनों ही धर्मों के अनुयायियों की संख्या विशाल तथा लगभग समान ही थी । ऐसी स्थिति में विचारों में टकराव अवश्यंभावी था । परन्तु कभी–कभी असहिष्णुता इतनी बढ़ जाती थी कि विरोध का स्वरूप हिंसक हो जाता था । यह सामाजिक व धार्मिक दोनों ही दृष्टियों से बहुत हानिकारक था । अतः स्थान–स्थान पर पुराणकार ने इन दोनों धर्मों के संख्यापक विष्णु तथा शिव के मध्य एकता की भावना को दिखाते हुये यह बाताने का प्रयास किया है कि मूलतः ये दोनों ही देवता एक तथा एक दूसरे के पूरक हैं ।

धर्म मानव जीवन के पारलौकिक पक्ष की ही पूर्ति करता है परन्तु इहलौकिक जीवन की पूर्ति हेतु अन्य क्रियाकलाप भी आवश्यक है । अतः पुराणकार ने शारीरिक व मानसिक इच्छाओं की पूर्ति हेतु आमोद–प्रमोद व इन्द्रियसुख का भी वर्णन किया है । इस प्रकार पुराण में विभिन्न क्रीणाओं, कीणाओं के संचालन हेतु वन, उपवन आदि का विवरण तथा शारीरिक सुखो की प्राप्ति हेतु कामदेव की उपासना का विवरण मिलता है । इस पसंग में उर्वशी पुरूरवा प्रसंग का विवरण मिलता है । वन,

उपवन का बड़ा ही विस्तृत वणन मिलता है । वृक्ष लगाने को पुराण में बहुत महत्व दिया है तथा साथ में वृक्षों को लगाया कैसे जाय तथा उसका पालन कैसे किया जाय इसका विस्तार से वर्णन मिलता है । वृक्षों की बीमारियों तथा उसकी औषधियों का भी उल्लेख है । वृक्ष लगाने को धर्म से जोड़कर पुण्य का कार्य बताया गया है । वन, उपवन के साथ ही साथ पुराण में नदियों को बहुत ही महत्व दिया गया है । वस्तुतः वन, उपवन, कृषि–पशु–पालन, व्यापार तथा पीने के पानी के स्रोत के रूप में नदियों का बहुत ही महत्व है । नदियों का धार्मिक महत्व भी है । मनुष्य के जीवन की अंतिम क्रिया श्राद्ध जब तक नदी के किनारे न की जाय तब तक उसका फल प्राप्त नहीं होता है । पुराणकार ने नदियों का भार्गोलिक वर्णन भी बड़ा ही सजीव किया है ।

मनुष्य द्वारा स्वान्तः सुखाय धर्म–कर्म तथा आमोद–प्रमोद के साथ–साथ अन्य व्यक्ति की सेवा के द्वारा भी नैतिक व धार्मिक कर्तव्य की पूर्ति करना चाहिये । इसके लिये पुराणकार मार्ग में निकले पथिक की सेवा संबंध में विस्तार से लिखता है । पुराणकार कहता है कि पथिकों की सुविधा हेतु मार्ग में वृक्ष लगवाना चाहिये तथा जल पीने हेतु पोशाला का निर्माण करना चाहिये । इसके साथ ही बाढ़ से बचने हेतु सेतु का निर्माण करना चाहिये साथ ही साथ संमल हो तो सराय का निर्माण कर भोजन–जलपान की व्यवस्था रकनी चाहिये । पथिकों क्री सेवा साक्षात् धर्म की उपासना होती है। दूसरों की सेवा के साथ ही साथ दूसरे व्यक्ति व प्राणियों द्वारा अपने प्रति किये गये उपकारों को सदैव याद रखना चाहिये । यह ही कृतज्ञता गुण है ऐसा न करने वाला व्यक्ति कृतघ्न होता है तथा नरकगामी होता है । पुराणकार ने कृतज्ञता गुण की अत्यधिक प्रशंसा की है । कृतज्ञ व्यक्ति स्वर्गलोग तथा ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है ।

राजशिक्षा के संदर्भ में पुराणकार भाग्य और कर्म की चर्चा करते हुये भाग्य पर कर्म की महत्ता को प्रतिपादित किया है । यद्यपि भाग्य की पुराण में महत्व दिया गया है तथापि पुराणकार ने स्पष्ट कहा हे कि कर्म के द्वारा भाग्य को परिवर्तित किया जा सकता हे । इसीलिये विष्णु धर्मोत्तर पुराण में आलस्य की निंदा की गयी है । आगे राजधर्म के अन्तर्गत पुराणकार ने समाज का सुचारू व शांति रूप से चलाने हेतु दण्ड की चर्चा की है । प्रत्येक समाज में अपराधी व उपद्रवी तत्व उत्पन्न होते रहते हैं अतः उन पर नियंत्रण हेतु दण्ड का प्रयोग आवश्यक है । परनतु दण्ड का

प्रयोग राजा करे सावधानी के साथ करना चाहिये क्योंकि निर्देष व्यक्ति का दण्डित होना राज्य का विनाशक होता है ।

मानव जीवन का अंतिम संस्कार अन्त्येष्टि है उसी से संबंधित श्राद्ध कर्म है । श्राद्ध कम्र के संबंध में यह मान्यता है कि इसके करने से मृतक की आत्मा को शांति मिलती है तथा उसे प्रेयोति से युक्ति मिल जाती है । इसको करने का विधि-विधान बड़ा ही आडम्बरपूर्ण है यह कैसे किया जाता है, किस दिन किया जाता है तथा इसमें दान पुण्य कितना व किसको किया जाय इन सभी विवेचन इसमें मिलता है । बालक, पुत्री, स्त्री, वृद्ध आदि के मरने पर शौच-अशौच कितने दिन का होगा, सभी का विवरण पुराणकार देता है । भारतीय जीवन दर्शन की एक मान्यता यह भी है कि जीवति अवस्था में मनुष्य को जितन वस्तुओं की आवश्यकता होती है मरने के बाद भी उनकी आवश्यकता होती है, अतः श्राद्धकर्म में जो भी दान आदि दिया जाता हे उसका मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के मरणोपरान्त जीवन को सुखी बताता है ।

किसी भी समाज में नैतिक व्यवस्था को स्थापित करने हेतु, मात्स्य न्याय से बचाने हेतु तथा साहित्य, कला, धर्म एवं दर्शन के विकास हेतु राज शंसन का होना आवश्यक है । विष्णु धर्मोत्तर पुराण में राजतंत्र एवं शासन संबंधी अनेक जानकारी प्राप्त होती है । पुराणकार ने वृहत्तर अर्थों में पौराणिक राजधर्म के अन्तर्गत सभी प्रकार के धर्म, आचरण वर्णाश्रम, त्रिवर्ग साधना तथा दृष्टार्थ एवं अदृष्टार्थ अभीष्ट कर्मों को समाहित माना है । राजा तथा राजत्व को महत्व देते हुये इनकी देवी उत्पत्ति को पहले से सशक्त ढंग से स्थापित करने का प्रयास किया है । पूर्व स्थापित परंपरा के अनुसार ही पुराणकार ने राजव्यवस्था का मुख्य उद्देश्य लोक कल्याण की भावना को ही प्रतिपादित किया है ।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में राज्य के सात अंग का उल्लेख प्राप्त होता हे जो कौटिल्य के अर्थशास्त्र के समान ही है ये इस प्रकार हैं राजा (स्वामी), अमात्य, जनवद या राष्ट्र दुर्ग (राजधानी), कोष, दण्ड तथा मित्र । अन्य ग्रंथों की भाँति ही विष्णु धर्मोत्तर पुराण में राजा को

सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है उसे विभिन्न शस्त्रों, शास्त्रों तथा कलाओं को अवश्य जानना चाहिये । प्राचीनकाल में राजा की उत्पत्ति नैतिक व्यवस्था की स्थापना तथा सामरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु हुयी थी । उसमें विभिन्न देवताओं के अंश पाये जाते हैं । राजा के लिये धार्मिक होना आवश्यक है । नास्तिक राजा शासन लिये योग्य नहीं है । राजा के लक्षणों का उल्लेख भी पुराणकार करता है इसमें राजा के शारीरिक, मानसिक व शैक्षिक लक्षणों का विवरण प्राप्त होता है । राजा को अपने पद की गरिमा के अनुकूल रहना चाहिये राजा के महत्व को प्रतिपादित करते हुये कहा गया हे कि राजा के रहने पर राजा का विनाश हो जाता है । राजा ही राज्य का प्रधान सेनापति होता है । उसका शास्त्रोक्त विधि से राज्याभिषेक होता है राजा का मुख्य कार्य प्रजा की रक्षा तथं उसका कलयाण बताया गया है ।

राजा के बाद राज्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान मंत्री का होता है । मंत्री के संबंध मे पुराणकार ने कहा है कि उसे ब्राह्मण, वेद तत्वज्ञ, विनीत, प्रियदर्शन, महाउत्साही, प्रियवादी, स्वामिभक्त तथा बुद्धिमान होना चाहिये । अनेक अन्य धार्मिक ग्रंथ इसकी पुष्टि करते हैं । उसे उच्च स्तर का कूटनीतिज्ञ तथा गुप्तचरों के प्रयोग में कुशल होना चाहिये । अर्थशास्त्र में मंत्री को राज्य का दूसरा पहिया कहा गया है । राजा व मंत्री एक दूसरे के पूरक होते हैं तथा राजा को अपने योग्य मंत्री को सलाह मानना चाहिये ।

प्राचीन भारतीय राजव्यवस्था में पुरोहित का महत्वपूर्ण स्थान है आलोचित पुराण में पुरोहित के लक्षणों का वर्णन करते हुये कहा गया है कि उसे अव्यंग, प्रियवादी, अपर्व एवं यजुर्वेदों का पूण विद्वान, पंचकपविधानक्ष, ब्राह्मण तथा सुदर्शन होना चाहिये । राजा को पुरोहित का आदर करना चाहिये । पुरोहित का मुख्य कार्य धार्मिक कार्यों का संपादन तथा राज्य को मानुषी व दैवी आपदाओं से बचाना है ।

श्रेष्ठ सेनापति राज्य का आधार स्तंभ है । आलोचित पुराण में कहा गया हे कि सेनापति का उत्तम जातीय, बलशाली, कृतज्ञ, रूपवान, सप्तगुणी, उदात्त, क्षमाशील, महाउत्साही, धर्मज्ञ,

तथा प्रियवादी होना चाहिये । उसे विभिन्न शस्त्रों, चिकित्सा, शकुन आदि का ज्ञाता होना चाहिये । उसे ब्राह्मण या क्षत्रिय होना चाहिये

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में अनेक प्रकार के दुर्ग व उनके लक्षणों का वर्णन प्राप्त होता है । राजा को आवश्यकतानुसार धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, तटदुर्ग, वार्क्षदुर्ग, अंनुदुर्ग तथा गिरि दुर्ग आदि को बनवाना चाहिये । इनमें गिरि दुर्ग को सर्वश्रेष्ठ कहा गया हे । समस्त कार्य व्यापार का अन्धकारकोष है अतः राजा को अपना कोष हमेशा समृद्ध रखना चाहिये तथा उसकी रक्षा करना चाहिये । आलोच्य पुराण में सप्तांगों में वर्णित मित्र के महत्व पर भी प्रकाश डाला गया है । उसमें स्पष्ट कहा गया है कि राजा धन से जितना समृद्धिशाली नहीं होता उतना बच्चे मित्र से होता है । मित्र को श्रेष्ठ गुणों से युक्त होना चाहिये ।

शोध–शीर्षक के लिए उपादेय सामग्री की दृष्टि से आलोच्य पुराण का तृतीय खंड ललित कलाओं से सम्बद्ध होने के कारण विशेष महत्वपूर्ण है । वैसे इस पुराण को वैष्णव पुराण के रूप में देखा जाता है जो कि विष्णु पुराण का ही एक अंग है ।

भारतीय परम्परा में कला, आयुर्वेद, राजशासन, विधि आदि स्वतंत्र विषय नहीं माने गए हैं वरन् उन्हें धार्मिक विषयान्तर्गत स्थान दिया गया है । इस दृष्टिकोंण के लिए धर्म की केन्द्रीय स्थिति का होना बहुत हद तक उत्तरदायी है । ललितकलाएं किस सीमा तक परस्पर सहबद्ध एवं अन्योन्याश्रित हैं, इसे मार्कण्डेय के उस तार्किक कथन के आधार पर रेखांकित किया जा सकता है जिसमें उन्होंने निष्कर्ष रूप से प्रतिभा लक्षण को समझने के लिए कात्यांग परिचय को अनिवार्य सा बताया है । यदि विपरीत दिशा में चला जाय तो काव्यांग परिचय दूरलोक और परलोक का हित साधन है । क्योंकि प्रकारान्तर से काव्यांग ज्ञान प्रतिमा लक्षण की बारीकियों को समझने में सहायक है । उल्लेखनीय है कि मार्कण्डेय ने प्रतिमा अर्चन को ही कलियुग में मनुष्य के कल्याण के लिए सबसे सहज उपाय बताया है । ऐसी अवस्था में मैंने सबसे पहले प्रतिमाओं के लक्षण और रूपायन विधि के विवेचन का विश्लेषण करने का प्रयास किया है ।

आलोचित पुराण के 80,90,91 आदि अध्यायों में प्रतिमा–निर्माण सामग्री की उपयुक्तता – अनुपयुक्तता तथा निर्माण कार्य आरम्भ की शुभ घड़ी पर गहन विचार विमर्श किया गया है । अध्याय 44, 48 त्रिदेववाद अवधारणा के प्रस्तुतीकरण, जो वैदिक परम्परा का ही विकास है, के लिए महत्वपूर्ण है । पौराणिक काल के आते–आते आदित्यों, रूद्रों एवं वसुओं में से विष्णु शिव और ब्रह्मा ने एकाधिपत्य स्थापित कर लिया जो ईश्वर की सात्विक, तामसी और राजसी प्रवृत्तियों के द्योतक हैं ।

त्रिमूर्तियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विष्णु के अनेकानेक स्वरूपों के विवेचन की दृष्टि से अध्याय 44, 47, 60, 85 महत्वपूर्ण हैं । एतद्विषयक पर्याप्त धार्मिक, दार्शनिक, कला–विषयक आधार होने के साथ–साथ लोक परम्परा का समावेश भी दृष्टिगत होता है । प्रमुख स्वरूपों का प्रतिमा लक्षण, रूपायन–विधि इन अध्यायों का वर्ण्य विषय है । चतुव्यूह, चतुमूर्ति, दशावतार, विशिष्ट स्वरूप (विश्वरूप, पद्मनाम, त्रैलोक्यमोहन, वैकुण्ठ आदि) अंश विशेष से अवतीर्ण स्वरूप (व्यास, कपिल, दत्तात्रेय, ह्यग्रीय, मोहिनी) वाहन एवं आयुध – पुरुषों का निरूपण शास्त्रीय कलेवर में प्रस्तुत किया गया है । आलोचित पुराणकार ने श्रीमद्भागवत तथा विष्णु पुराण की ही भांति बलराम की जगह बुद्ध को दशावतारों के अन्तर्गत माना है । यह तथ्य विशेषोल्लेखनीय है जो पौराणिक – बौद्ध अवतारवाद के परस्पर सामंजस्य–समन्वय प्रक्रिया का सूचक है ।

अध्याय 46 ब्रह्मा के प्रतिमा लक्षणों से समबद्ध है । अध्याय 74 में शिव के लिंग एवं मानवीय के समस्त प्रतिमा लक्षणों को वर्ण्य विषय बनाया गया है । शिव के सौम्य–शान्त (मंगलकारी) रूपों मे महादेव, महेश्वर, उमामहेश्वर, अर्द्धनारीश्वर, हरिहर आदि विवेचना के केन्द्र बिन्दु हैं । हरिहर स्वरूप वैष्णव–शैव सम्प्रदयों के समन्वय का बोधक माना जा सकता है । "एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति" के अनुकूल ही पौराणिक देववाद परस्पर सामंजस्य और 'एकसत्' की आधार शिला पर खड़ा दृष्टिगत होता है ।

शिव की 'अनुग्रह मूर्तियों' में उनकी दक्षिणामूर्ति विशिष्ट है । जहाँ तक उनके अमंगलकारी और रौद्र स्वरूप का प्रश्न है भैरव (महाकाल) के प्रतिमा लक्षण निर्दिष्ट किए गए हैं ।

अध्याय 67 सूर्य और नव ग्रहों के संदर्भ में है । अध्याय 50 इन्द्रादि अष्टदिक्पालों और अध्याय 42 व्यन्तर देवों (यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर, अप्सराओं, नागों आदि) के प्रतिमा लक्षणों को प्रस्तुत करता है ।

आलोचित पुराणा के अध्याय 61, 64, 82, 85, 106 आदि देवियों से सम्बद्ध हैं । इनमें लक्ष्मी, भू–देवी, सरस्वती रुक्मिणी, भद्रकाली, नन्दा, नुर्गा, गौरी, महाकाली तथा सप्मातृकाएं (ब्राह्मी, वैष्णवी, महेश्वरी, कौमारी, चामुण्डा आदि) मुख्य हैं ।

जहाँ तक उपलब्ध कलात्मक दृष्टान्तों का प्रश्न है, यह विनिश्चय कर पाना दुष्कर है कि प्रतिभा–विशेष आलोच्य पुराण में संदर्भित शास्त्रीय मानदण्डों के अनुरूप ही निर्मित की गई है । वस्तुतः 'विष्णु धर्मोत्तर में संदर्भित शास्त्रीय विधान आदर्श मात्र हैं और इनका यथार्थ रूपायन संभव भी नहीं है । क्योकि, मूर्किार शास्त्रीय मानदण्डों को आधार तो अवश्य बनाता है (जिनमें अन्य ग्रंथों के विधान भी सम्मिलित हैं) किन्तु उसका उद्देश्य दृष्टान्तों का सृजन–मात्र नहीं होता । साथ ही वह लोजीवन से सम्बद्ध परम्पराओं और विचारों से भी प्रभावित रहता है । ऐसी अवस्था में जिन प्रतिमाओं को साक्ष्य स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, आलोच्य पुराण में संदर्भित मानदण्डों की यथार्थ अभिव्यक्ति नहीं है । किन्तु, अधिकांश निर्देशों की अवहेलना भी नहीं है ।

अध्याय 1, 30, 35, 38, 40–43 चित्रसूत्र से सम्बन्धित हैं । पुराणकार ने चित्रसूत्र की उत्पत्ति, उपयोगिता, वर्गीकरण आदि को व्यापक संदर्भों में रूपायित किया है । अध्याय 40 चित्र निर्माण से सम्बद्ध है । चित्र के लिए पृष्ठभूमि (मणिभूमि), लेप कर्म, मूल एवं मिश्रित रंग, रंग–निर्माण विधि आदि इस अध्याय के प्रतिपाद्य विषय हैं । यद्यपि मूल रंगों की सूची अध्याय 27 में भी है किन्तु वह नृत्तशास्त्र के संदर्भ में हैं और संदर्भित रंगों का उपयोग अभिनेताओं के लिए है । अध्याय 40 में निर्दिष्ट रंग (कुछेक भिन्न भी हैं) चित्रों के लिए ही हैं ।

अध्याय 41 का विषय है – रंगवर्तना (पत्रजा, हैरिकजा, बिन्दुजा) । इसी प्रकार चित्र, दोष–गुण, चित्रादर्श भी निर्दिष्ट किए गए हैं । पुराणकार द्वारा संकेतित चित्रादर्श वस्तुतः यशोधर

अध्याय 42 चित्र–विषय के संदर्भ में है । चित्रों की भावानुकूल, पात्रानुकूल तथा परम्परानुकूल प्रस्तुती अनिवार्य मानी गयी है । जैसे राजा की वेश–भूषा देवत्व की बोधक होनी चाहिए । इसी प्रकार ब्राह्मण, मुनि, ऋषि, मंत्री, वैश्या, कुलस्त्री आदि की रूपसज्जा पर बल दिया गया है जिससे चित्र ग्राह्य हो सके । पुराणकार ने 'सादृश्य' पर विशेष ध्यान आकृष्ट किया है जो चित्र की जीवन्तता के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व हैं । पुराणकार का यह भी निर्देश है कि प्राकृतिक उपादान के मानवीय विग्रह चित्रित किए जाएं । जैसे, नदी को नारी रूप में ।

अध्याय 35 का विषय है, 'मान प्रमाण' । अर्थात् अंगों के बीच आनुपातिक संतुलन–सामंजस्य । इस आधार पर पुराणकार ने पाँच प्रकार के पुरुषों की कल्पना की है । जिनके आंगिक अवयवों का अनुपात स्थिर किया गया है ।

जिस प्रकार रस को कात्य की आत्मा स्वीकार किया गया है उसी प्रकार आलोच्य पुराण में मवरसों की अवतारणा करते हुए चित्र की आत्मा बताया गया है । अध्याय 30 में काव्य सम्बन्धी रसों का विवेचन है जबकि अध्याय 43 में संदर्भित रस चित्र के लिए हैं । अध्याय 39 चित्रस्थान तथा क्षयवृद्धि का उल्लेख करता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि पुराणकार ने चित्र निर्माण सम्बन्धी विशद एवं समग्र विवेचन प्रस्तुत किया है । इस दृष्टि से समरांगण सूत्रधार, मानसोल्लास जैसे कला–विषयक शास्त्रीय ग्रंथों की तुलना में इस पुराण का महत्व कदापित कम नहीं है ।

86–94 पर्यन्त अध्याय प्रासाद–लक्षण, निर्माण विधि आदि से सम्बद्ध हैं । 86–87 में शताधिक प्रासादों का विवेचन हे किन्तु सर्वतोभद्र कोटि के प्रासाद की विवेचना ही पुराणकार का उद्देश्य जान पड़ता है । प्रासाद निर्माण सम्बन्धी सामग्री का निर्देश 89–91 में है । काष्ठ (89), शिला (90) आदि के परीक्षण प्रतिमा निर्माण सामग्री के ही सदृश हैं । ईंट–निर्माण, लोहे, चूने एवं वज्रलेप आदि संयोजक सामग्री का भी वर्णन है । पुराणकार ने वज्रलेप बनाने की विभिन्न विधियाँ बताई हैं । प्रासाद निर्माण के लिए उपयुक्त भूमि का चयन और शोधन अध्याय 93–94 का वर्ण्य विषय है । अध्याय 86–87 में देव–प्रतिमाओं की स्थापना से सम्बद्ध विधि–निषेधों का निरूपण है ।

इस प्रकार पुराणकार ने स्थापत्यगत विवेचना को व्यापक रूप में प्रस्तुत किया है।

किसी भी समाज अथवा देश के अस्तित्व लिये उसका आर्थिक रूप से सुदृढ़ होना आवश्यक होता है। चूँकि विष्णु धर्मोत्तर पुराण एक सम्पूर्ण ग्रंथ है अतः इसमें जीवन की अन्य सभी आवश्यकताओं के साथ-साथ आर्थिक पर सभी प्रकाश पड़ता है। आर्थिक गतिविधयों के अन्तर्गत कृषि, पशु-पालन, उद्योग, व्यापार आदि क्रियाकलापों के संबंध में जानकारी प्राप्त होती है।

हमारे जीवन का आधार कृषि है अन्य ही जीवन है शायद इसी को आधार मानते हुये पुराणकार ने कृषि के संबंध में बहुत विसतार के साथ वर्णन किया है। कृषि हेतु भूमि कैसी होनी चाहिये, इसके बारे में बताया गया है यदि भूमि का चयन ठीक नहीं होगा तो उत्तम कृषि संभव नहीं है। ऊसर भूमि कृषि हेतु अनुपयुक्त मानी गयी हे। इसके पश्चात् खते तैयार करने के संबंध में जानकारी मिलती हैं जोताई, गोड़ाई आदि कब करनी चाहिये, यह बताया जाता है। बीज के प्रकार के बारे में भी पुराणकार मौन नहीं है। वस्तुतः अच्छी खेती के लिये उन्नत बीज का होना आवश्यक है। अधिक उत्पादन हेतु देशी खाद के प्रयोग का भी उल्लेख प्राप्त होता है। प्राचीन भारतीय ग्रामीण जीवन पर देवी-देवीताओं, टोना-टोटका, शकुन-अपशकुन का बहुत प्रभाव था। अतः कृषि के प्रारंभ के पूर्व किन-किन देवताओं को उपासना की जानी चाहिये, क्या टोना-टोटका किया जाना चाहिये तथा किन-किन लोगों को क्या-क्या दान आदि दिया जाना चाहिये, इस संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। ये परम्परायें आज भी भारतीय जीवन में चली आ रही है। उन दानादि के द्वारा उत्तम कृषि के माध्यम से इहलोक में तो फल मिलता ही है परलोक भी सुधरने का विवरण प्राप्त होता है। कृषि से उत्पन्न अन्न के दान से प्राप्त होने वाले पुण्यों का विस्तृत विवरण मिलता है। कृषि को नुकक्षान पहुँचाने वाले तत्व भी पुराण में 'आख्यात' हैं ये हैं -- अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहों टिड्डियों और पक्षियों का फसल खा जाना, विभिन्न प्रकार के रोग, राजा द्वारा आक्रमण आदि। अतः इन सभी से सुरक्षा के संबंध में पुराणकार विस्तृत निर्देश प्रदान करता है। अतिवृष्टि-अनावृष्टि के भी पूर्व लक्षणों का उल्लेख प्राप्त होता है। रोग आदि तथा उनके उपचार हेतु विभिन्न औषधियों का विवरण मिलता है।

प्राचीलकाल मे कृषि का मुख्य आधार पशु–पालन था और लगभग यही स्थिति आज भी है। अतः विष्णु धर्मोत्तर पुराण के पशु–पालन के संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती हैं। गाय, बैल, अश्वगज के पालन संबंधी सम्पूर्ण तथ्य इसमें उल्लखित हैं। सर्वप्रथम अच्छे पशुओं के लक्षण दिये हैं। जिस तरह इनका पालन–पोषण करना चाहिये, अस्वस्थ होने पर किस प्रकार इनका उपचार किया जाना चाहिये तथा कैसे इन जानवरों का प्रयोग किया जाना चाहिये, इन सब से संबंधित जानकारी इस पुराण में मिलती है। पशु–पालन के संबंध में विभिन्न देवी–देवताओं की पूजा आदि भी जाती है तथा विभिन्न पशुओं की सेवा करने से अनेक प्रकार के पुण्य फल भी प्राप्त होते हैं। ये सभी तथ्य विष्णु धर्मोत्तर पुराण में आख्यात हैं। गाय, बैल, गज तथा अश्वों के शांति कर्म का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त पशुओं के गोबर, मूत्र से प्राप्त होने वाली खाद, ऊर्जा तथा औषधि के संबंध में भी विष्णु धर्मोत्तर पुराणकार विस्तार से कहता है।

किसी भी देश वे समाज में सभी वस्तुओं का उत्पादन नहीं होना है। अतः व्यक्ति अपने आवश्यकता से अधिक उत्पादित वस्तुओं को बेंचता है तथा अपने आवश्यकता की वस्तुओं को बाहर से मंगाता है। अतः विष्णु धर्मोत्तर पुराण में भी व्यापार वाणिज्य संबंधी जानकारी मिलती है। वस्तुतः व्यापार व वाणिज्य का उल्लेख ऋग्वेद से ही प्राप्त होने लगता है तथा ये उल्लेख पुराण व उसके उपरांत भी मिलते हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में बताया गया है कि किन जातियों की व्यापार करना चाहिये तथा किनको नहीं करना चाहिये। इसमें वैश्यों को प्रमुखता दी गयी है। व्यापार हेतु आवागमन के लिये जल मार्ग की प्राथमिकता दी गयी है क्योकि उस समय स्थल मार्ग ठीक तथा सु क्षित नहीं होते थे। समुद्र में आवागमन हेतु बड़ी–बड़ी नावें व जहाज प्रयुक्त होते थे। किन–किन पदार्थों का व्यापार करना चाहिये तथा किनका नहीं करना चाहिये, सूची भी उपलब्ध होती हैं। व्यापार हेतु विभिन्न प्रकार के शुल्क भी देने पड़ते थे जो राजा प्राप्त करता था। वस्तुओं का मूल्य निर्धारण राजा करता था। क्रेता तथ विक्रता के प्रति एक दूसरे के उत्तरदायित्वों का भी विवरण मिलता है। व्यापार मे गलत विधियों का प्रयोग करने पर विभिन्न प्रकार का दण्ड देना पड़ता था।

उस प्रकार विष्णु धर्मोत्तर पुराण का सम्यक् अध्ययन करने के पश्चात उस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उसमें भारतीय संस्कृति की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति होती है तथा उसमें भंरतीय समाज,

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

प्राचीन ग्रन्थ सूची

अथर्ववेद (मूल)	स्वाध्यायमण्डल
अथर्ववेद (शौनक संहिता)	शंकर पाण्डुरंग पण्डित सम्पादित सायणभाष्य सहित, बम्बई
अथर्वपरिशिष्ट	शिक्षा संउग्रह में प्रकाशित, बनारस, संस्कृत सीरीज
अथर्ववेदीय दन्त्योष्ठविधि	रामगोपाल शास्त्री सम्पादित, लाहौर
अथर्ववेदीय पंचपअलिका	भागवद्दत्त सम्पादित, लाहौर
अथर्वप्रातिशाख्या	डॉ0 सूर्यकान्त सम्पदित
अथर्ववेपरिशिष्ट	बालिंग सम्पादित, विभिन्न परिशिष्ट
अथवेशिरम् उपनिषद्	अष्योत्तर शतोपनिषदन्तर्गत
अनुवाकसूचाध्याय	शुक्लयजुर्वेद संहिता के अन्तर्गत (निर्णयसागर)
अनुवाकानुक्रमणी	शौनकीय एशियाटिक सोसायटी संस्करण
अनेकार्य संग्रह–कोश	हेमचन्द्रकृत, चौखम्बा
अमर–कोश	भानुजिकृत व्याख्यासुधा टीका (निर्णय सागर);
	क्षीरस्वामिकृत अमरकोषाद्घटन, पूना
अर्थशास्त्र	कौटिल्यकृत, मैसूर
अष्टादशपुराणदर्पण	ज्वाला प्रसाद मिश्र कृत, वेंकेटश्वर
अष्टाध्यायी	पाणिनिकृत, काशिकागत सूत्र संख्या ही उद्धृत की गयी है
अष्टोत्तरशतोपनिषद्	(= ईशाद्यष्टोत्तर0) काशी
अर्विध्न्यसंहिता	अडयार संस्करण, श्रेडर सम्पादित
आगमप्रमाण्य	यामुनाचार्यकृत, काशी
आपस्तम्बगृह्यसूत्र	हरदत्तकृत, अनाकुलावृत्ति तथा सुदर्शनाचार्यकृत गृह्यतात्पर्यदर्शन
	टीका सहित, काशी संस्कृत सीरीज
आपस्तम्बधर्मसूत्र	हरदत्तकृत टीका सहित, कुम्भकोण संस्करक
आपस्तम्बमन्त्रपाठ	डॉ0 विण्टरनिट्ज सम्पादित

आपिशलिशिक्षा	युधिष्ठिर मीमांसक सम्पादित, "शिक्षासूत्राणि" के अर्न्तत, बनारस
आयुर्वेद का इतिहास	कविराज सूरमचन्द्रकृत, शिमला
आर्यविद्यासुधाकर	यज्ञेश्वर चिमण भट्टकृत, लाहौर
आर्षानुक्रमणी	एशियाटिक सोसायटी संस्करण
आर्षेय ब्राह्मण	माधवदाससांख्या तीर्थ कर्तृक सम्पादित तथा बंगला में अनूदित, श्री भारती ग्रन्थमाला, इसका सायण–भाष्यसत्यव्रत सामश्रीमिककर्तृ सम्पादित हुआ
आश्वलायन–गृह्यसूत्रपरिशिष्ट	उपर्युक्त आपस्तम्बगृह्य सूत्र के अन्त में मुद्रित
आश्वलायन–श्रौतसूत्र	गार्ग्यनारायणकृत टीका सहित
ईशाद्यष्टोतरशतोपनिषद्	काशी, अष्टोत्तरशतोपरिषद शब्द प्रायेण व्यवहृत हुआ है
ईशादिपञ्चोपनिषद्	दीपिका–आनन्दगिरि–टीका सहित शंकर भाष्य (ईशाकेनकठ प्रश्न–मुण्डक), बनारस
उपनिदानसूत्र	सरस्वती भवन टेक्स्ट, काशी
उपनिषद्	ईशाद्यष्टोत्तररशतोपनिषद् द्र0, जी0
उपलेखसूत्र	पर्टस सम्पादित
ऊनविंशतिसंहिता	अत्रिविष्णुहारीत आदि 19 स्मृतियं, वंगवासी संस्करण, कलकता
ऋग्वेद (मूल)परिशिष्टसहित	स्वाध्यायमण्डल
–सायण भाष्यसहित	वैदिक संशोधन मण्डल, पूना
ऋक्परिशिष्ट	स्वाध्यायमण्डल, वैदिक संशोधन मण्डल प्रकाशित ऋग्वेद का चतुर्थ भाग
–स्कन्द भाष्य वेंकटमाधव व्याख्यान सहित	अनन्त शयन संस्कृत ग्रन्थवली
–स्कन्द स्वामि भाष्य	मद्रास विश्वविद्यालय
ऋक्सर्वानुक्रमणी	षड्गुरूशिष्यकृत वेदार्थदीपिका सहित, मैक्डॉनल सम्पादित
ऋग्विधान	जगदीश शास्त्री सम्पादित

ऋग्वेद प्रातिशाख्य	शौनककृतः वर्गद्वयवृत्ति और उवटकृत टीका सहित, डॉ0 मंगलदेव शास्त्री सम्पादित
ऋग्वेदानुक्रमणी	माधव भट्ट कृत, मद्रास विश्वविद्यालय
ऋग्वेद की ऋक्संख्या	युधिष्ठिर मीसांसक कृत, अजमेर
ऋग्वेद पर व्याख्यान	भगवद्दत्तकृत, लाहौर
ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका	दायानन्दस्वामिकृत, अजमेर
ऐतरेय अरण्यक	सायण भाष्यसहित, आनन्दाश्रम
ऐतरेय उपनिषद्	शंकर भाष्य, गिरिटीका सहित, आनन्दाश्रम
ऐतरेय ब्राह्मण	सायण भाष्यसहित, आनन्दाश्रम तथा षड्गुरूशिष्य कृत, सुखप्रदा व्याख्या सहित, त्रिवेन्द्रम
कठोपनिषद्	ईकादिपञ्चोपनिषादन्तर्गत, शंकर भाष्य, गिरि-गोपालयतीन्द्रकृत टीकाद्वय सहिंत
कर्मप्रदीप	कत्यायनकृत, एशियाटिक सोसायटी संस्करण
कल्पतरू	अमलानन्दकृत, भामती टीका परिमल सहित, निर्णयसागर
कृत्य कल्पतरू	लक्ष्मीधरकृत (विभिन्न काण्डो में), वरोदा
काठक गृह्यसूत्र	सव्याख्या, कालेण्ड सम्पादित
काठक संहिता	स्वाध्याय मण्डल
काठकोपनिषद्	कठोषनिषद् द्रष्टव्य
कात्यायन श्रौतसूत्र	कर्किभाष्य सहित, चौखम्बा; वेवर सम्पादित देवयाज्ञिक व्याख्यासहित संस्करण
कामन्दकीय नीतिसार	बिब्लोथिका इण्डिका सीरीज
कामसूत्र	वात्स्यायनकृत, जयमंगलासहित, चौखम्बा, वाराणसी
काव्यमीमांसा	राजशेखरकृत, वरोदा
किरातार्जुनीय	भारविकृत, मल्लिनाथकृत टीका
कौशिक सूत्र	केशवकृत टीका सहित ब्लूमफील्ड सम्पादित
कौषीतकि-गृह्यसूत्र	चौखम्बा, वाराणसी
गोपथ ब्राह्मण	गास्त्रा सम्पादित, लीडन
गौतम धर्मसूत्र	मस्करिकृतभाष्य सहित, मैसूर

चतुर्वर्ग चिन्तामणि	हेमाद्रिकृत
छान्दोग्योपनिषद्	शंकर भाष्य गिरि टीका सहित, जीवानन्द
जैमिनीय गृह्यसूत्र	कालेण्ड सम्पादित
तन्त्रवार्तिक	कुमारिलकृत, आनन्दाश्रम
तैत्तिरीय ब्राह्मण	सायण भाष्य, आनन्दाश्रम
निर्णयसिन्धु	कमलाकरकृत, चौखम्बा
निरूक्त	आनन्दाश्रम
वृहदारण्यक उपनिषद्	शांकरभाष्य–गिरिकृत, टीका सहित, काशा
बौधायन गृह्यसूत्र	शामशास्त्री सम्पादित, मैसूर
बोधायन धर्मसूत्र	आनन्दाश्रम
मनुस्मृति	कुल्लूकभट्टकृत, मन्वर्थ–मुक्तावली टीका
महाभारत	गीता प्रेस, गोरखपुर
मानव गृह्यसूत्र	अष्टावक्रकृत टीका सहित, बरोदा
याज्ञवल्क्य स्मृति	विज्ञानेश्वरकृत, मिताक्षरा टीका और वीरमित्रोदय टीका चौखम्बा, वाराणसी
रामायण	निर्णय सागर
रूद्राध्याय	भट्टभास्कर सायण भाष्य सहित, आनन्दाश्रम
वंशब्राह्मण	सामवेदीय, सायण भाष्य सहित, सामश्रमि कर्तृक सम्पादित
विष्णु धर्मसूत्र	डॉ0 जाली सम्पादित, कलकता
वीरमित्रोदय	मित्रमिश्रकृत, चौखम्बा, वाराणसी
वैदिक कोष	हंहराजकृत, लाहौर
व्यास स्मृति	ऊनविंशति संहितान्तर्गत
शतपथ ब्राह्मण	कालेण्ड सम्पादित
शब्दकल्पद्रुम	बंगाक्षर, राधाकान्तदेव सम्पादित
शांखायन आरण्यक	आनन्दाश्रम
शाङ्खायन श्रौतसूत्र	डा0 हिलेब्रेण्ट सम्पादित

शाबराभाष्य	शबरकृत जैमिनि सूत्रभाष्य, आनन्दाश्रम
शुक्लयुजुर्वेद संहिता (माध्यान्दिन)	उवटकृत–भाष्य–महीधर कृत वेददीप–व्याख्या सहित, निर्णयसागर
श्वेताश्वर उपनिषद्	शांकर भाष्यसहित, गीताप्रेस, गोरखपुर
षड्विंग ब्राह्मण	सायण भाष्य सहित, जीवनान्दाश्रम
सांख्याकारिका	भाष्य सहित, चौखम्बा, वाराणसी
सूतसंहिता	सायणकृत–टीका सहित, आनन्दाश्रम
स्मृति चन्द्रिका	देवण्णभट्टकृत, घरपुरे–सम्पादित
स्मृति मुक्ताफल	वैद्यनाथ कृत, घरपुरे सम्पादित

मूल पुराण ग्रन्थ

अग्नि पुराण	आर0मित्र द्वारा सम्पादित, बिब्लोथिका इण्डिका, कलकता, सन् 1873–79
	आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, सन् 1900 ई0
	पंचानन तर्करत्न द्वारा सम्पादित, वंगवासी प्रेस, कलकता
कूर्म पुराण	नीलमणि मुखोपाध्याय द्वारा बिब्लोथिका इण्डिका, कलकता में सम्पादित, सन् 1890 ई0
	पंचाननतर्क रत्न द्वारा सम्पादित, वगवासी प्रेस, कलकता बं0सं0 1332
गरूड पुराण	पंचानन तर्करत्न द्वारा सम्पादित, बंगवासी प्रेस, कलकता, वं0सं0 1314
देवी भागवत	पंचानन तर्करत्न द्वारा सम्पादित, वंगवासी प्रेस, कलकता
(क) नारदीय पुराण	संस्कृत संस्करण, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बरई द्वा प्रकाशित
(ख) वृहन्नारदीय पुराण	बिब्लोथिका इण्डिका, कलकता में प्रकाशित ।
	पंचानन तर्करत्न, वंगवासी प्रेस, कलकता, वं0सं0 1316
(ग) पद्म पुराण	**मूल संस्करण**
	1. वी0एन0 माण्डलीक द्वारा सम्पादित, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज पूना; भाग 1–4; सन् 1893–94 ई0

2. वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सन् 1895, द्वारा पत्राकार प्रकाशित

(घ) भागवत पुराण — **(क) मूल संस्करण**

1. आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना

2. वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

3. श्री मद्भागवत, गीता प्रेस, गोरखपर

भविष्य पुराण — वेंकेटश्वर प्रेस, बम्बई, सन् 1910 ई0

मत्स्य पुराण — आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज पूना पंचानन तर्करत्न, वंगवासी प्रेस, कलकता वं0सं0 1361

मार्कण्डेय पुराण — के0एम0बनर्जी द्वारा सम्पादित, वि0ई0, कलकता सन् 1862

पंचानन तर्करत्न द्वारा सम्पादित, बंगवासी प्रेस, कलकता वं0सं0 1316

युग पुराण — काशी प्रसाद जायसवाल द्वारा सम्पादित, ज0वि0ओ0रि0सो, पटना भाग 14 पृ0– 397–421

लिंग पुराण — जीवानन्द विद्यासागर द्वारा सम्पादित, बिब्लोथिका इण्डिका कलकता सन् 1885

बह्मपुराण — आनन्दाश्रम, संस्कृत सीरीज, पूना सन् 1895 ई0

पंचानन तर्करत्न, बंगवासी प्रेस, कलकता, वं0स0 1316

ब्रह्मवैवर्त पुराण — जीवनान्द विद्यालसाग द्वारा सम्पादित, कलकता, सन् 1888 ई0

ब्रह्माण्ड पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई द्वारा प्रकाशित, सन् 1913 ई0

जावानीज भाषा में इसका अनुवाद

वामन पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

वायु पुराण — हरि नारायण आप्टे द्वारा आनन्दाश्रम, सस्कृत सीरीज, पूना से प्रकाशित, सन् 1905 ई,

आर0मिश्र द्वारा सम्पादित, भाग 1–2 बिब्लोथिका इण्डिका, कलकता, सन् 1880–88

बाराह पुराण — एच0पी0शास्त्री द्वारा सम्पादित बिब्लोथिका इण्डिका, कलकता, सन् 1893

पंचानन तर्करत्न, वंगवीस प्रेस, कलकता, वं0 सं0 1313

विष्णु पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

पंचानन तर्करत्न वंगवासी प्रेस, कलकता वं0सं0 1331

वृहद् धर्म पुराण — डॉ0 हर प्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित, बिब्लोथिका इण्डिका, कलकता सन् 1897 ई0

शिव पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

पंचानन तर्करत्न, बंगवासी प्रेस, कलकता वं0सं0 1314

स्कन्द पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई द्वारा पत्राकार रूप में प्रकाशित बगवासी प्रेस, कलकत्ता द्वारा सम्पादित, आ0सं0सी0, पूना, 1936 ई0

पंचानन तर्करत्न द्वारा नीलकण्ड की टीका के साथ सम्पादित, वंगवासी प्रेस, कलकता, वं0सं0 1312

आधुनिक शोध–ग्रन्थ

अग्रवाल, वासदेव शरण — हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्यय, भारतीय राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1953

पाणिनिकालीन भारतवर्ष, मोतीलाल बनासीदास, बनारस, प्रथम संस्करण, 2012 वि0

प्राचीन भारतय लोकधर्म, अहमदाबाद 1964

भारतीय कला, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, 1977

मार्कण्डेय पुराण : एक सांस्कृतिक अध्ययन, हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद

वामन पुराण : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, 1964

अली, एस0एम0 — द ज्यॉग्रफी द पराणाज, नई दिल्ली, 1966

अल्तेकर ए0एस0 — एजूकेशन इन एंशेण्ट इंडिया

हिस्ट्री ऑव बनारस, वाराणसी, 1937

पोजीशन ऑव वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, 1956

	स्टेट एण्ड गवर्नमेण्ट इन एंर्शेण्ट इंडिया, बनारस, 1958
	सोर्सेज ऑव हिन्दू धर्म, शोलापुर 1952
अय्यर, शिवस्वामी पी0एस0	इवोल्युशन ऑव हिन्दू मॉरल, लेक्चर, कलकता, 1935
आप्टे, के0 वी0 आर0	सोशल एण्ड रिलिजस लॉइफ इन द गृह्मसूत्राज
आयंड.र, के0वी0 आर0	ऑस्पेक्ट्स ऑव एंशेण्अ इंडियन इकॉनामिक थॉट
इलियट, सी0	हिन्दूइज्म एण्ड बुद्धिज्म, वाल्यूम–2, लंदन, 1921
उपाध्याय, बलदेव	अग्नि पुराणम्, चौखम्बा, वाराणसी
	कालिकापुराणम्, चौखम्बा, वाराणसी
	पुराण–विमर्श, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1965
	तथा द्वितीय संस्करण, 1978
	वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त, चौखम्बा, वाराणसी
उपाध्याय, भागवतशरण	इण्डिया इन कालिदास, इलाहाबाद, 1947
उपाध्याय, भरतसिंह	बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 2018
ओझा, मधुसूदन	पुराणनिर्माणाधिकरमणम् तथा पुराणोत्पति प्रसंग, जयपुर, सं0 2009
कनिंघम, ए0	एंर्शेण्ट ज्यॉग्रपुी ऑव इण्डिया
कर्मारकर, आर0डी0	भवभूति
कुमारस्वामी, ए0के0	यक्षाज, वाल्यूम –2
	हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड इंडोनिशियन आर्ट, लन्दन, 1927
काणे, पी0वी0	धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम–पचम भाग, हिन्दी समिति, लखनउ
कीथ, ए0बी0	द रिलिजन एण्ड फिलॉसफी ऑव द वेद एण्ड द उपनिषद
	हार्वर्ड ऑरियण्टल सीरीज, वालयूम–31832, 1925
	हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिट्रेचर, आक्सफोर्ड; 1941
कीथ, ए0बी0 एवं मैक्डॉनल, ए0ए0	वैदिक इण्डेक्स
केरफेल, डब्ल्यू	दस पुराण पंचलक्षण, बॉन, 1927
	ऐन इंट्रोडक्शन टु इंडियन हिस्ट्री, बम्बई, 1956

कोसम्बी, डी0डी0	द कल्चर एण्ड सिविलाइजेशंन ऑव एंशॅण्ट इंडिया इन हिस्टारिकल आउटलाइन, लंदन 1965
गुप्ता, परमानन्द	ज्यॉग्रफी इन एंशॅण्ट इण्डिया इंस्क्रिप्शंस (अपटु 650ई0) डी0के0 पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1973
गोण्डा, जे0	ऑस्पेक्ट्स ऑव अर्ली इण्डियन विष्णुइज्म
घाटे, वी0एस0	लेक्चर्स्र ऑन ऋग्वेद
घुर्ये, जी0एस0	कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया
घोषाल, यू0एन0	विगिन्गिस ऑव इण्डिया हिस्टोंरियोग्रफी एण्ड अदर एस्सेज
चकलादार, एच0सी0	सोशल लॉइफ इन एंशॅण्ड इडिया, कलकता, 1929
चतुर्वेदी परशुराम	वैष्णवधर्म, इलाहाबाद, 1953
जॉली, जे0	हिन्दू लॉ एण्ड कस्टम (जर्मन से अनुवाद, बी0के0घोष) कलकता, 1928
जिमर, एच0	फिलॉसफी ऑव इण्डिया, न्यूयार्क, 1951
जायवसाल, के0पी0	हिस्ट्री आर्फ इण्डिया (1950–25ई0)
टण्डन, यशपाल	पुराण विषय–समनुक्रमणिका
डे, एस0के0	हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिट्रेचर
लिंतक, बी0जी0	ऑर्कटिक होम आूव द वेदाज
दिनकर, रामाधारी सिंह	भारतीय संस्कृति के चार अध्याय
दीक्षितार, वी0आर0आर0	पुराण इण्डेक्स (3 वालयूम), मद्रास
नेगी, जे0एस0	सम इण्डोलॉजिकल स्टडीज, इलाहाबाद, 1966
पाटिल, डी0आर0	कल्चरल हिस्ट्री फॉम वायु पुराण, दिल्ली 1973 (पुनर्मुद्रण) प्रथम संस्करणख पुन, 1946
पाठक, वी0एस0	शैव कल्ट इन नार्दर्न इण्डिया, वाराणसी, 1960
पाण्डे, जी0सी0	बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, 1963
	स्टडीज इन द ओरिजिन्स आूव बुद्धिज्म, इलाहाबाद, 1957
पाण्डेय, आर0बी0	द ज्यॉग्रफिकल इनसाइक्लोपीडिया ऑव एंशॅण्ड एण्ड अर्ली मिडीवल, इण्डिया, वाराणसी, 1967
	पुराण–विषयानुक्रमणी

भारतीय नीति का विकास, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, 1965

हिन्दू संस्कार

पाण्डेय, वी — हरिवंश पुराण : एक सांस्कृतिक विवेचन, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1960

पार्जीटर, ए0ई0 — एंशेण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशान आक्सफोर्ड, 1922

पुसाल्कर, ए0डी0 — भासः ए स्टडी

स्टडीज इन द इपिक्स एण्ड पुराणाज, बम्बई, 1955

फकर्यूहर, जे0एन0 — ऐन आउटलाइन ऑव द रिलिजस लिटरेचर ऑव इण्डिया, लन्दन, 1920

फ्लीट, जे0एफ0 — कार्पस इंस्क्रिप्सनम· इंडिकेरम, वाल्यूम–2

बनर्जी, जे0एन0 — डेवेलपेट ऑव हिन्दू आइकनोग्राफी, कलकता, 1941

बुलके, फादर कामिल — रामकथा, इलाहाबाद, 1964

द स्टेट इन एंशेण्ट इंडिया, इलाहाबाद, 1928

द थिवरी आूव गवर्नमेन्ट इन एंशेण्ट इण्डिया विद ऐन इंट्रीडक्शन बाई प्रो0 ए0डी0 पन्त, इलाहाबाद 1978

वाशम, ए0एल0 — द वण्डर दैट वाज इण्डिया, लन्दन 1954

भट्टाचार्य, रमाशंकर — अग्तिपुराणस्य विषयनुक्रमणिकी, वाराणसी, 1953

इतिहास–पुराण का अनुशीलन, वाराणसी, 1963

पुराणगतवेदीविषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1965

भण्डारकर, डी0आर0 — सम ऑस्पेक्ट्स ऑव एंशेण्ट हिन्दू पॉलिटी, कार्माइकेल लेक्चर्स, 1968

भण्डारकर, आर0जी0 — वैष्णविज्य, शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजस सिंस्टम्स, स्ट्रासबर्ग, 1913

मजूमदार, आर0सी0 — कारपोरेट लॉइफ इन एंशेण्ड इण्डिया, कलकता 1922

(सम्पा0) हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑव द इण्डियन पीपुल, वाल्यूम 1–6, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1951–1962

मनकड, डी0आर0 — पुराणिक क्रोनोलॉजी

मार्शल, सर जॉन — टैकिशला

मित्र, आर0एल0 — ए कैटलॉग ऑव संस्कृत मैनुनिस्क्रप्टस, कलकता, 1880

मित्र, एस0के0 — द इपिक्स ऑव द हिन्दूज,कलकता, 1925

ग्यारहवीं सदी का भारत, वाराणसी, 1968

मिश्र, बी0बी0 — पॉलिटी इन द अग्निपुराण, कलकता, 1965

मिश्र, योगेन्द्र — ऐन अर्ली हिंस्ट्री ऑव वैशाली, मोतीलाल बनारसी दास, पटना, 1962

मिश्र, वी0डी0 — सम आूस्पेक्ट्स ऑव इण्डियन आर्क्यालॉजी, इलाहाबाद, 1977

मीज, जी0एच0 — धर्म सोसाइटी, लंदन, 1935

चन्द्रगुप्त मौर्य ऐण्ड हिज टाइम्स, मद्रास, 1943

मुकजर्भ, आर0के0 — हिन्दू सिविलाइजेशन, लंदन, 1936

मैक्रिंडल, जे0डब्ल्यू0 — एंशेंण्ट इण्डिया ऐज डेस्क्राइब्ड बाई मेगस्थनीज एण्ड ऐरियन, बम्बई, 1877

मैक्डॉनल, ए0ए0 — ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, लन्दन, 1925 इण्डियाज पास्ट

मैती, एस0के0 — इकॉनामिक लाइफ ऑव नादर्न इण्डिया, कलकता, 1957

मोती चन्द्र — प्राचीन भारतीय वेश–भूषा, भारती भण्डार, प्रयाग, सं0 2007

मोर्ले, (विस्कॉण्ड) — नोट्स ऑन पॉलिटिक्स ऐण्ड हिस्ट्र, लन्दन, 1914

यदुवंशी — शैवमत

यादव, बी0एन0 एस0 — सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इन द ट्वेल्फ्थ सेंचुरी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1973

रसेल, बी0 — फिलॉसफी, न्यूयार्क, 1927

राइस डेविड्स, टी, डब्ल्यू0 — बुद्धिस्अ इण्डिया, लन्दन, 1917

राधा कृष्णन, एस0 — द हिन्दू व्यू ऑव लाइफ, लन्दन, 1927

रानाडे, आर0डी0 — कंस्ट्रक्टिव सर्वे आूव उपनिषदिक पिुलॉसफी, पूना, 1933

रामस्वामी, टी0एन0 — इसेंशियल्स ऑव इण्डिया स्टेट क्रॉफ्ट, एशिया पब्लिशिंग, हाउस, 1962

राय, उदयनारायण — गुप्त सम्राट और उनका काल (बृहत्संस्करण) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1976

प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, 1965

स्टडीज इन एंशेंण्ट इण्डिन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, वाल्यूम–1, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969

शालभञ्जिका, लोकभारतीय प्रकाशन, 1980

हमारे पुराने नगर, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1969

राय, बी0पी0 — पॉलिटिकल, आइडियाज एण्ड इंस्टीट्यूशंस इन द महाभारत, कलकता, 1975

राय, सिद्धेश्वरी नारायण — पौराणिक धर्म एसं समाज, पंचनद पब्लिकेशंसन, इलाहाबाद, 1968

हिस्टॉरिकल एण्ड कल्चरल स्टडीज, पुराणिक पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, 1978

राय चौधरी, एच0सी0 — पॉलिटिकल हिस्ट्री आूफ एंशेंण्ट इण्डिया, कलकता, 1953

मैटिरियल्स फॉर द स्टडी ऑव द अर्ली हिस्ट्री ऑव वैष्णव सेक्ट, कलकता, 1936

स्टडीज इन इंडियन ऐटीक्विटीज, कलकता, 1958

राव, टी0ए0 गोपीनाथ — इलिमेंट्स ऑव हिन्दू आइक्नोग्राफी (दो भागों में), मद्रास, 1914–1916

रैप्सन, ई0जे0 — (सम्पा0)कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इंडिया, वाल्यूम–1, दिल्ली, 1962

रोज, एच0जे0 — माडर्न मेथड्स इन क्लासिकल माइथॉलजी, सेण्ट एण्ड्रयूज, 1930

रोजेनफील्ड, जे0	द डाइनेस्टिक आर्ट ऑव द कुषाणाज, कैलीफोर्निया प्रेस, बर्कले ऐण्ड लाओस ऐंजेल्स, 1967
रोमेन, एच0ए0	स्टेट इन द कैथलिक थॉट, लन्दन, 1945
ला, एप0एन0	ऑस्पेक्ट्स ऑव एंशेण्ड इंडियन पॉलिटी, आक्सफोर्ड, 1921, पुनर्मुद्रित 1960
	स्टडीज इन एंशेण्ड हिन्दू पॉलिटी, लंदन, 1914
लिंगत, आर0	द क्लासिकल लॉ ऑव इण्डिया (अनुवादक जे0डी0 एम0डेरेट), नई दिल्ली, 1973
विअरनित्ज, एम0	ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर, कलकता 1950
विर्जी, ए0जे0	एंशेण्ट हिस्ट्री ऑव सौराष्ट्र, बम्बई 1955
बिल्सन, एच0एच0	इंट्रोडक्सन टु द इंग्लिश ट्रासलेशन ऑव द विष्णु पुराण पुराणाज ऑर ऐन एकाउन्अ ऑव देयर कण्टेंट एण्ड नेचर
विट्फोगेल, कार्ल0ए0	ओरियण्टल डेस्पॉटिज्म : ए कम्परेटिव स्टडी ऑव टोटल पावर, याले, 1957
वेबर, ए0	हिस्ट्री आूव इण्डियन लिटरेचर, लंदन 1882
वेस्टरमार्क, ई0	र ओरिजिन एण्ड डवलपमेंअ ऑव मॉरल आइडियाज (2 वाल्यूम्स), लंदन, 1906
वैद्य, सी0वी0	हिस्ट्री ऑव मिडीवल हिन्दू इण्डिया, वयल्यूम–1 पूना 1921
शर्मा, डी0	राजस्थान थ्रू द एजेज
शर्मा, आर0एस0	ऑस्पेक्ट्स ऑव पालिटिकल इाइडियाज एण्ड इ्स्टीट्युशंन इन एंशेण्ट इण्डिया, दिल्ली, 1959 (प्रथम संस्करण), 1968 (द्वितीय संस्करण)
	इण्डियन फ्युडलिज्म, कलकता, प्रथम सस्करण 1965, द्वितीय संस्करण 1981
	लॉइट ऑन अर्ली इंडियन सोसाइटी एण्ड इकानमी, बम्बई, 1966
	शूद्राज इन एंशेण्ट इंडिया, दिल्ली, 1958, द्वितीय संशोधित संस्करण 1980

शर्मा, जी0आर0 — द एक्सकैवेशन्स एट कौशाम्बी, इलाहाबाद, 1960

कुषाण स्टडीज, यूनिवर्सिटी ऑव इलाहाबाद, 1968

बिगिनिंग्स ऑव एग्रीकल्चर, इलाहाबाद, 1980

हिस्ट्री ट प्री–हिस्ट्री, इलाहाबाद, 1980

रेह इंस्क्रिप्शन एण्ड इनवेजन ऑव मिनाण्डर, इलाहाबाद, 1980

आक्योंजली ऑव द विध्याज एण्ड गंगा वैली, इलाहाबाद, 1980

शानशास्त्री, आर0 इवोल्यूशन ऑव इंडियन पॉलिटी, कलकता, 1920

शास्त्री, के0ए0एन0 — द थियरी आूव प्री–मुस्लिम इण्डियन पॉलिटी, मद्रास, 1912

शास्त्री, जे0एल0 — पॉलिटकल थॉट इन द पुराणाज, लाहौर, 1944

शास्त्री, एस0राव — विमेन इन वेदिक एज, बम्बई

शाह, के0टी0 — एंशॅण्ड फाउण्डेशंस ऑव इकॉनमिक्स इन इण्डिया, बम्बई 1954

सखाऊ, ई0सी0 — अल्बेरूनीज इण्डिया, (2 वाल्यूम्स), लंदन, 1888

सरकार, डी0सी0 — सेलेक्ट इंस्क्रिप्शस, कलकता, 1942

स्टडीज इन द ज्यॉग्रफी ऑव एंशॅण्ट ऐण्ड मिडीवल इण्डिया, दिल्ली, 1966

सरकार, के0एल0 — मीमांसा रूल्स ऑव इंटरप्रेटेशन, कलकता, 1909

सरकार, बी0के0 — द पॉलिटिकल इंस्टीट्यूशंन एण्ड थियरीज ऑव द हिन्दूज, लीपाजिग, 1922, कलकत्ता, 1939

सालेतोर, बी0ए0 — एंशॅण्ट इंडियन पॉलिटिकल थॉट एण्ड इंस्टीट्यूशंन न्यूयार्क, 1963

सालेतोर, आर0एन0 — लॉइफ द गुप्ता एज, बम्बई 1943

सिन्हा, बी0पी0 — डेक्लॉइन ऑव द किंगडम ऑव मगध (सरकार 444–1000 ई0)

सिन्हा, जी0पी0 — पोस्ट गुप्ता पॉलिटी, कलकता, 1972

सिन्हा, एच0एन0 — सॉवरेनटी इन एंशॅण्ट इंडियन पॉलिटी, लंदन, 1938

सिंह, एम0आर0 — ए क्रिटिकल स्टडी ऑव द ज्यॉग्रफिकल डॉटा इन द अर्ली पुराणाज, कलकता, 1972

सिंह, रणजीत	धर्म की हिन्दू अवधारण, इलाहाबाद, 1977
सेन, ए0के0	स्टडीज इन हिन्दू पॉलिटिकल थॉट, कलकता, 1926
सेन, बी0सी0	स्टडीज इन द बुद्धिस्ट (ट्रेडिशन एण्ड पॉलिटी) कलकत्ता, 1947
सेन गुप्ता, एन0सी0	इवील्यूशन ऑव एंशेण्ट इण्डियन लॉ, कलकता, लंदन, 1953
	सोर्सेज ऑव लॉ एण्ड सोसाइटी इन एंशंण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1914
सैबाइन, जी0	ए हिस्ट्री ऑव पॉलिटिकल थियरी, लंदन, 1956 (पुनमुद्रित, भारत, 1973)
सैगममैन, जे0 डब्ल्यू	पॉलिटिकल थियरीज इन एंशॉण्ट इण्डिया, आक्सफोर्ड, 1964
स्टर्नवक, एल0	जुदिड़िकल स्टडीज इन एंशंण्ट इण्डियन लॉ, वाराणसी, 1965–67
श्रेडर, एफ0ओ0	ऐन इंट्रोडक्शन टू द पंचरात्र एण्ड द अहिर्बुधन्य संहिता, आययार, मद्रास 1916
शुक्ल, बदरीनाथ	मार्कण्डेय पुराणः एक अध्ययन, चौखम्बा विद्या भवन, काशी, 1960
ह्वाइटहेड	सांइस एण्ड द माडर्न वर्ल्ड, न्यू यार्क, 1926

कोश

द स्ट्डेण्ट संस्कृत–इंगलिश डिकशनरी, वी0एस0 आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास वाराणसी, 1963

द स्टूडेण्ट इंगलिश–संस्कृत डिक्शनरी, वी0एस0 आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1963

संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी, वी0वी0 गाइड संस्कृत–इंगलिश डिक्शनरी, मोनियर विलियम्स

वैदिक शब्दकोशं, सूर्यकान्त वैदिक रिसर्च सोसाइटी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी, 1963, यजुर्वेद पदानुक्रमणिका, बम्बई, 1908 द इनसाइक्लोपिडिया ऑफ रिलिजन एण्ड इथिक्स, 1, 2